भारतीय साहित्य

भारतीय भाषाविज्ञान तथा साहित्य का शोधपरक त्रैमासिक

जुलाई-अक्टूबर १९६२
[वर्ष ७, अंक ३-४]



सम्पादक
डा० विश्वनाथ प्रसाद

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

प्रकाशक

संचालक,

क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,

आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

वार्षिक मूल्य १२) रु०

इस अंक का मूल्य ५) रु०



भारतीय साहित्य

वर्ष ७, अंक ३, ४ ।

मुद्रक—

हरिकृष्ण कपूर

आगरा यूनिवर्सिटी प्रेस,

आगरा ।

विषय-सूची

डा० मुरारी लाल उप्रैति :

हिन्दी में प्रत्यय-विचार

यह अनुसंधान हिन्दी व्याकरण के प्रत्यय-पक्ष को प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से संबलित नही, अपितु विवरणात्मक दृष्टि पर अवलंबित है। यह दृष्टि भारतीय तथा अधुनातम भाषा-वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अध्ययन से प्राप्त हुई है। इस में पूर्वाग्रह या पूर्वधारणा को किसी भी प्रकार का प्रश्रय अथवा व्यायाम नही मिला है। जो बातें इस अध्ययन में सामने आई हैं उनकी व्यवस्था करना बाद का कार्य रहा है। पहले के निर्मित साँचे में उन्हे फिट करना इस अध्ययन की प्रवृत्ति नही है। इस प्रकार हिन्दी का प्रत्यय-विवेचन हिन्दी के रास्ते से है, न कि संस्कृत के रास्ते से। हाँ, जहाँ पर हिन्दी की प्रस्तुत व्यवस्था का संस्कृत की व्यवस्था से मेल पाया गया है उसे सहज ही स्वीकार किया गया है। यह स्वीकृति विशेषकर पारिभाषिक शब्दावली के संबंध में समझनी चाहिए। मै ऐसा कहकर संस्कृत भाषा के विस्तृत, सूक्ष्म एवं पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए अध्ययन की अवहेलना नही कर रहा अपितु भाषा-विश्लेषण के धुर-मूल-सिद्धान्त की रक्षा के प्रति विनम्र अनुरोध मात्र है।

यह प्रबंध हिन्दी भाषा के प्रत्ययों तक ही सीमित है। जहाँ तक पहुँच हुई है संस्कृत के तत्सम प्रत्ययों को छोड़कर हिन्दी के प्राय: सभी प्रत्ययों को प्राप्त किया गया है तथा उनका सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया गया है। फिर भी, मेरा यह दावा कदापि नही कि हिन्दी में जितने भी प्रत्यय प्रयुक्त होते है उन सभी को पूर्णत: प्राप्त किया गया है। यह संभव है कि कुछ प्रत्यय सामग्री-संकलन में रह गए हों; क्योंकि हिन्दी का प्रसार एवं प्रचार द्रुत गति से हो रहा है। इस दशा में पूर्णता का दावा कैसे संभव है! पूर्णता तो प्रत्येक दशा में असंभव है, फिर भी इसके लिए प्रयास अवश्य है।

सस्कृत तत्सम प्रत्ययों को छोड़ने का एक मात्र कारण यही है कि इनका सम्यक् निरूपण संस्कृत ग्रन्थों में संस्कृत की व्यवस्था के अनुसार उपलब्ध है। हाँ, कुछ संस्कृत प्रत्ययों का व्यवहार हिन्दी तद्भव तथा विदेशी शब्दों के साथ भी देखा गया है; इस प्रकार इनकी प्रवृत्ति में कुछ व्यापकता आई है। ऐसे प्रत्ययों को इस निबन्ध के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। इन संस्कृत तत्सम प्रत्ययों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी संस्कृत

आगरा विश्वविद्यालय, १९६१ ई०

शब्द है जो हिन्दी में आते-आते अपनी अर्थवान् स्वतंत्र सत्ता खो बैठे है और वे प्रत्यय-मात्र रह गए है। ऐसे शब्दो को तत्सम शब्द मानकर छोड दिया गया है। हिन्दी-प्रत्ययो के अन्तर्गत ऐसे प्रत्यय भी शामिल है जिन्हें विदेशी कहा जाता है।

इस प्रबंध की सामग्री के संकलन में मैंने स्वयं को हिन्दी-वक्ता के रूप में स्वीकार किया है। साथ ही, मै आगरे के साहित्यकारो, क० मु० हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ के शिक्षक वर्ग तथा हिन्दी-साहित्य तथा भाषा-विज्ञान में भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रो के अनुसंधान करने वाले अनुसंधित्सुओ एवं मित्रो के संपर्क में बराबर रहा हूँ। इस संपर्क से यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि मै अपने हिन्दी-उच्चारण को मिलाता तथा जाँच करता रहा हूँ। इस सहयोग के अतिरिक्त हिन्दी कोशो, व्याकरणो, साहित्यिक पुस्तको पत्र-पत्रिकाओ आदि से सामग्री प्राप्त की है, परन्तु साधन रूप में, ध्यान सदैव भाषा के उच्चरित रूप पर ही रहा है। इस प्रकार उपलब्ध सामग्री को पोस्टकार्ड साइज़ के लगभग २००० कार्डों पर स्वनिमात्मक प्रतिलेखन (Phonemic transcription) में आलेखित करते हुए विश्लेषण सहित प्रस्तुत किया गया है। जहाँ विश्लेषण एवं प्रयोग तत्संबंधी कार्ड में नही आ सके है वहाँ उनके साथ बडे-बडे कागज नत्थी किए गए है। इन कार्डों में समाहित शब्दो की संख्या १५००० से ऊपर तक पहुँची है। इस निबंध में मै उन सभी को प्रस्तुत नही कर पाया हूँ। सामान्य सिद्धान्त तथा नियम ढूंढ कर उनके उदाहरण-भर प्रस्तुत कर सका हूँ।

इस अध्ययन में हिन्दी से मेरा अभिप्राय उस आदर्श, प्रामाणिक अथवा परिनिष्ठित हिन्दी से है जो वर्तमान साहित्यिक भाषा के रूप में, मनीषी संस्थाओं में, शिष्ट बोलचाल मे, शिक्षणसंस्थाओ मे, भारतीय गण-तंत्र-विधान की राज्य-भाषा के रूप मे तथा पत्र-पत्रिकाओ की भाषा के रूप में प्रबुद्ध वर्ग द्वारा व्यहृत होती है तथा स्थानीय बोलीगत लक्षण उसमे नही रह पाते। इस प्रामाणिक स्वरूप का स्थिरीकरण प्रबंध मे प्रस्तुत मानचित्र से भली भांति स्पष्ट किया गया है।

आगामी अध्ययन की सुविधा के लिए अत्यन्त संक्षिप्त रूप मे हिन्दी की ध्वनि-प्रक्रियात्मक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी मे प्रत्यय-विचार के स्तर पर ११ मूल स्वर, २ संध्यक्षर, ४१ व्यंजन, २ स्वर संबद्ध स्वनिम (अनुस्वार तथा अनुनासिकता) तथा संक्रमण (transition or juncture) स्वनिम स्थिर किए गए है। संक्रमण हिन्दी मे सार्थक है क्योंकि जहा स्वनिमो के बीच मुक्त संक्रमण (Open transition or open juncture) रहता है वहाँ भाषायी रूप का अर्थ उस रूप के अर्थ से भिन्न होता है जहाँ स्वनिमो के बीच युक्त संक्रमण (Close transition or close juncture) रहता है। इस संबंध मे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए गए है।

यद्यपि हिन्दी की लिखावट सामान्यत उच्चारण के अनुरूप कही जा सकती है, तथापि ऐसे अनेक स्थल है जहाँ पर उच्चारण तथा लिखावट मे भेद परिलक्षित होता है। इस दशा मे हिन्दी के स्वनिमात्मक प्रतिलेखन संबंधी नियमो की स्थापना प्रस्तुत वैज्ञानिक निरूपण मे परमावश्यक जानकर की गई है। यह व्यवस्था ऐसी नही जो हिन्दी की लिखावट के विपरीत हो उसी के अनुकूल ही की गई है। इसके अतिरिक्त हिन्दी का

अक्षर-विधान तथा अक्षर-निर्धारण, प्रकृति-प्रत्यय संबंधी विवेचन में आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। इस प्रकार ध्वनि-प्रक्रिया के अन्तर्गत हिन्दी अक्षर व्यवस्था को रखा गया है।

हिन्दी प्रत्ययों के ऐतिहासिक निकास-विकास को प्रस्तुत करने का साहस इस प्रबंध में नही किया गया है। हाँ, प्रस्तुत अध्ययन की जानकारी एवं सुलभता के रूप में एक विहंगम दृष्टि से हिन्दी में व्यवहृत प्रत्ययों के स्रोतो का ऐतिहासिक परिपार्श्व के रूप में, निर्देशन-मात्र अवश्य किया गया है। सामान्यतः ये प्रत्यय अपनी सहजातीय प्रकृति से सबद्ध होते हैं परन्तु कतिपय स्थल ऐसे भी है जहाँ कुछ प्रत्यय किसी भिन्न स्रोत वाली प्रकृति से संबद्ध होकर भी अपनी सार्थकता उद्दिष्ट करते है। कुल मिलाकर हिन्दी में हिन्दी तद्भव प्रत्ययों की संख्या सर्वोपरि है। इसके पश्चात् विदेशी प्रत्ययों की।

हमारे अध्ययन का प्रारम्भ वाक्यान्तर्गत ध्वनि-समूहों से होता है जब किसी ध्वनि-समूह में व्यावहारिक अथवा व्याकरणिक प्रयोग के अनुसार अर्थ-बोध कराने की क्षमता पाई जाती है तब उसे शब्द कहा जाता है। शब्द की ध्वनि-वैज्ञानिक परिभाषा से हमारा यहाँ प्रयोजन नहीं है। जिसे ध्वनि-विज्ञानी एक ध्वन्यात्मक शब्द स्वीकार करता है; उसमे रूप-विज्ञानी कई शब्द पा सकता है। इसके विपरीत ध्वनि-विज्ञानी जिन्हें अनेक शब्द कहता है, उन्हें रूप-विज्ञानी एक शब्द स्वीकार कर सकता है। शब्द की इस परिभाषा को समझ लेने के उपरान्त हम प्रकृति-प्रत्यय संबंधी विवेचन में समर्थ होते है। जब हम शब्दों का विश्लेषण करते हैं तो उनके अन्तर्गत दो तत्वों की संस्थिति पाते है :—प्रकृति तथा प्रत्यय। प्रकृति-तत्व भाषा के आधार-भूत अंग हैं जिनसे भिन्न-भिन्न अर्थों—अभिधेय वस्तुओं, भावों अथवा व्यापारों—का बोध होता है। जिस तत्व मे वस्तु अथवा भावों के व्यक्त करने की क्षमता नहीं तथा जिनकी सार्थकता प्रकृति-तत्वों के पूर्व या पश्चात् लगकर ही परिलक्षित होती है उसे प्रत्यय-तत्व कहते है। दूसरे शब्दों मे यों कहा जा सकता है कि प्रत्यय-तत्व प्रकृति पर आश्रित रहने वाले वे वंश है जिनमे स्वतंत्र अर्थ ज्ञापित करने की क्षमता नहीं होती; अपितु प्रकृति के आश्रय से अपनी सार्थकता उद्दिष्ट करते है। हिन्दी मे प्रकृति-तत्वों के अन्तर्गत, प्रातिपदिक तथा पदों का अन्तर्भाव हो जाता है। सत्व-प्रधान आधारभूत तत्व को प्रातिपदिक कहते है और क्रियार्थक आधारभूत तत्व को धातु कहते है। धातु तथा प्रातिपदिक नाम वाक्य मे व्यवहृत होने के पूर्व की अवस्थाओं के है तथा अपनी इस विशेषता के अनुसार ये सदैव आबद्ध दशा में रहते है। जब धातु तथा प्रातिपदिकों को वाक्य मे प्रयोगार्ह शक्ति मिलती है तब उसे पद कहते हैं। दूसरे ढंग से यों कहा जा सकता है कि शब्द की विभक्ति रहित अवस्था का नाम, धातु अथवा प्रातिपदिक है तथा विभक्ति सहित अवस्था का नाम, पद है। इन आधारभूत अंगों के पूर्व अथवा पश्चात् प्रत्ययों का व्यवहार होता है। प्रत्ययों के इस यौगिक-विधान की दृष्टि से हिन्दी मे तीन प्रकार की प्रकृति परिलक्षित होती है :—(१) मूल-प्रकृति (२) व्युत्पन्न प्रकृति तथा (३) पद-प्रकृति। मूल-प्रकृतियों से तात्पर्य उन चरम रूपों से है जिनका अर्थ की दृष्टि से आगे विभाजन संभव नही, ये भाषा की अविभाज्य इकाइयाँ है। इन मूल-प्रकृतियो को मूल-प्रतिपादिक तथा मूल धातु भी कहते है। व्युत्पन्न प्रकृतियों से तात्पर्य उन रूपों से है जो मूल-प्रकृति अथवा व्युत्पन्न प्रकृति में प्रत्ययों के योग से व्युत्पन्न होती है। हिन्दी मे व्युत्पन्न प्रकृतियों के अन्तर्गत

हिन्दी के कुछ विद्वान् स्त्रीलिंग सूचक विभक्तियो को विभक्तियाँ स्वीकार नही करते, वे उन्हें व्युत्पादक प्रत्यय मानकर प्रातिपदिक-रचना के अन्तर्गत विचार करते हैं। परन्तु यह दृष्टिकोण तर्क की कसौटी पर ठीक नही कहा जा सकता। वस्तु स्थिति यह है कि हिन्दी मे लिंग-भेद व्याकरणिक अथवा वाक्यात्मक स्तर पर विद्यमान है। उदाहरणार्थ लडका जाता है/, लडकी जाती है/, वाक्यो मे कर्त्ता तथा क्रिया की अन्विति वाक्यात्मक स्तर पर है, न कि अर्थ के स्तर पर। यदि /लडकी जाता है/ ऐसा प्रयोग होता तो लिंग-भेद वाक्य स्तर पर नहीं होता अर्थ-स्तर पर होता तथा स्त्रीत्व-सूचक चिन्हक (markers) व्युत्पादक रचना के विषय होते। इस दशा मे स्त्रीलिंग अथवा पुलिंग सूचक चिन्हक विभक्तियो के अन्तर्गत आते हैं। प्रत्ययो का वर्गीकरण एव परिभाषाएँ स्पष्ट करते हुए विभक्तियो तथा व्युत्पादक प्रत्ययो के पार्थक्य को भली भांति स्पष्ट किया गया है। इस प्रसग में यह शका की जा सकती है कि जिन व्युत्पादक प्रत्ययो—/-आइन, -इन -नाई/ इत्यादि को व्युत्पादक रचना में रखा गया है उन्हें पद रचना के अन्तर्गत क्यो नही स्वीकार किया गया, क्योकि इनके द्वारा भी लिंग बोध होता है? बात यह है कि व्याकरणिक लिंग एक अलग चीज है और प्रकृत-लिंग-भेद एक अलग चीज। उदाहरणार्थ /तमोलिन बैठी है/ वाक्य में /तमोलिन/ का अर्थ तमोली की स्त्री से है। इस प्रकार /तमोल-/ प्रातिपदिक के पश्चात् /-इन/ प्रत्यय स्त्री-सबध को व्यक्त करता है। परन्तु लडकी का लडके से ऐसा सबध घटित नही होता जिसे व्युत्पादक रचना में स्वीकार किया जा सके। अत स्त्री-प्रत्यय तथा स्त्रीलिंग सूचक विभक्तियों की अलग-अलग प्रकृति है।

हिन्दी में पूर्वप्रत्यय तथा परप्रत्यय ही व्युत्पादक प्रत्यय हैं। मध्य-प्रत्यय वाली व्यवस्था हिन्दी की सहज एव स्वाभाविक प्रवृति नही है। अत हमने मध्य-प्रत्यय हिन्दी में स्वीकार नही किए हैं। अरबी-शब्दों में भले ही मध्य-प्रत्यय हो पर वे अरबी भाषा की दृष्टि से हैं, न कि हिन्दी की दृष्टि से। हिन्दी में जो भी अरबी के शब्द आए हैं उनमें हमने ऐसे कोई आवद्ध अश स्वीकार नही किए हैं जो उनके मध्य में निक्षिप्त होते हो। यह कहा जा सकता है कि /कत्ल/ से व्युत्पन्न /कातिल/ रूप है और /–आ–'–इ–/ मध्य-प्रत्यय है, जैसे, /क↓त↓ल/ परन्तु हमने इन्हें रूप-प्रतिबधित ध्वनि-–विकारो के अन्तर्गत

आ इ

स्वीकार किया है। उक्त उदाहरण में /अ—आ/ स्वर-परिवर्तन तथा /इ/ का आगम समझना चाहिए।

हिन्दी की परम्परागत व्याकरणो मे /ने, को, से/ इत्यादि प्रत्ययो को विभक्तियाँ स्वीकार किया जाता है तथा कर्त्ता, कर्म, करण, अपादान इत्यादि कारक स्वीकार किए जाते हैं। हमारा यह दृष्टिकोण कदापि नही है। स्थिति यह है कि ये प्रत्यय परसर्ग हैं, परसर्ग और विभक्तियो का अन्तर भली भाति स्पष्ट किया गया है। जिन्हें कर्त्ता, कर्म इत्यादि कारक कहा गया है वे नाम वास्तव में नामपदो की कार्यकरिता के आधार पर हैं, रूपरचना के आधार पर नही। रूप-रचना के आधार पर तो केवल तीन ही कारक—प्रत्यक्ष, तिर्यक तथा सबोधन—हैं। इनके अन्तर्गत हिन्दी का समस्त रूपात्मक कारक-विधान समाहित

हो जाता है। प्रत्यक्ष कारक (direct case) वह है जिसके पश्चात् कोई परसर्ग नहीं आता, तिर्यक कारक (oblique case) वह है जिसके पश्चात् परसर्गों का व्यवहार होता है। तिर्यक नाम वस्तुतः एक सामूहिक नाम है क्योंकि स्वरूप की दृष्टि से एक ही रूप कर्त्ता, कर्म, करण आदि कारकों में विद्यमान रहता है। संबोधन इन सबसे भिन्न है, जिसमें संबोधन का भाव तथा उसके रूप भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी में दो वचन—एक वचन तथा बहुवचन—हैं। इस प्रकार नामपदों के अन्तर्गत लिंग, वचन और कारक की द्योतक एक ही विभक्ति की गति त्रिधा-स्वरूप है, उसके द्वारा एक साथ लिंग वचन और कारक की अभिव्यक्ति होती है। क्रिया-पदों की विभक्तियों के द्वारा एक साथ वाच्य, रीति, काल, लिंग वचन तथा पुरुष की अभिव्यक्ति होती है। क्रियाविशेषण पदों की विभक्तियों के द्वारा एक साथ लिंग और वचन का बोध होता है। सामान्यतः क्रिया विशेषण पदों में विभक्तियों का योग नहीं देखा जाता परन्तु कुछ परिस्थितियाँ ऐसी हैं जिनमें विभक्तियों की सत्ता द्रष्टव्य है।

हिन्दी में पश्चाश्रितों के अन्तर्गत कुछ ऐसे परसर्ग हैं जिनका विशेषण प्रातिपदिकों की भाँति लिंग और वचन के अनुसार रूपान्तर होता है। शेष पश्चाश्रितों में इस प्रकार की रूपान्तरशील विभक्तियों का योग नहीं होता।

हिन्दी में उपलब्ध प्रत्ययों की संख्या को इस प्रकार गिनाया जा सकता है:—

१.	पूर्वप्रत्यय	—	२४
२.	परप्रत्यय	—	२४८
३.	संज्ञापद विभक्तियाँ	—	२०
४.	सर्वनाम-पद विभक्ति	—	१
५.	विशेषण-पद विभक्ति	—	४
६.	क्रियापद विभक्ति	—	१९
७.	क्रियाविशेषण पद विभक्ति	—	४
८.	परसर्ग	—	११
९.	निपात	—	७
			३३८

इन प्रत्ययों मे कुछ प्रत्यय ऐसे है जिनके संपरिवर्तक भी हैं। उनकी गिनती यहाँ नहीं की गई हैं, उनके प्रधान संपरिवर्तकों को ही लिया गया है। अनुक्रमणिका के अन्तर्गत इन प्रत्ययों तथा संपरिवर्तकों को प्रकरणों सहित देखा जा सकता है।

डा० रामशंकर भट्टाचार्य

क—वर्ग के उच्चारण-स्थान में विवाद और उसका समाधान

आजकल यह आक्षेप प्रायः किया जाता है कि संस्कृत व्याकरणादि में कवर्ग का उच्चारणस्थान जो कण्ठ कहा जाता है[1], वह असम्यक् दर्शन है, वस्तुतः उच्चारण स्थान जिह्वामूल है[2]। इस विषय पर हम लोगों की दृष्टि यह है कि 'अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः' कहने पर भी कोई दोष नही होता [यदि शास्त्रीय पद्धति को ठीक से समझा जाय] और जिह्वामूलवादी भी सदोष नही है। प्राचीन शब्दविदो की विचार-सरणि के अनुशीलन करने पर उपर्युक्त मत संगत ही प्रतीत होगा। हमारा निवेदन है कि अन्य विद्वान् भी इस पर विचार करे, जिससे प्रकृत तथ्य का निर्णय हो जाय।

पहले ही यह ज्ञातव्य है कि वर्तमान काल मे हम लोग प्राचीन संस्कृत-भाषा के अनुसार यथावत् कवर्ग का उच्चारण करते है, ऐसा नही कहा जा सकता। अनेक वर्णो के उच्चारण मे कुछ न कुछ विलक्षणता [चाहे वह नगण्य ही क्यों न हो] उत्पन्न हो गई है, यह अवश्य स्वीकार्य है। कुछ वर्णो का उच्चारण [ऋ, लृ] तो बहुलतया भ्रष्ट ही है। ण--ष आदि वर्णों का जो प्रचलित उच्चारण है, वह भी कुछ न कुछ विकृत ही है, अतः हम समझते है कि क--वर्ग का उच्चारण यदि कुछ भ्रष्ट हो गया हो, तो वह असंभव नहीं। हमारा स्पष्ट कहना है कि प्रचलित क--वर्ग के उच्चारण को देखकर इसका सम्यक् निरूपण करना दुरूह है कि प्राचीन काल में क--वर्ग का साधु उच्चारण कैसा होता था' वस्तुतः हमें उच्चारण सम्बन्धी शिक्षा प्रातिशाख्यादिगत लक्षण वाक्य पर निर्भर ही करना

---

१. अकुह विसर्जनीयानां कण्ठः [सिद्धान्तकौमुदी १।१।९, कु—कवर्ग]। कण्ठो ? कुहविसर्जनीयानाम् [चान्द्रवर्णसूत्र ३]।

अकुहविसर्जनीया : कण्ठयाः [आपिशलि शिक्षासूत्र ७, जो न्यास भाग १ पृ० ५८ में उद्धत है]

२. द० हिन्दी अनुशीलन [धीरेन्द्रवर्मा विशेशांक] मे डा० सिद्धेश्वरवर्मा का लेख क्या क्या हिन्दी कवर्ग कण्ठयध्वनियां है ?। हिन्दी का लक्ष्य संस्कृत से भी है, क्योंकि इस लेखा प्रातिशाख्यों का निर्देश है। अन्यान्य भाषाविद् भी ऐसा मानते है।

होगा' और यही इस समय वैज्ञानिक दृष्टि है । चूंकि उच्चारणादि सम्प्रदायाधीन है और सम्प्रदाय बहुत कुछ भ्रष्ट हो गया है, अत पूर्वोक्त मार्ग अभी ग्रहण योग्य है । हमारे उच्चारण से कण्ठ और जिह्वामूल की पहचान करना भी असगत ही होगा, अत शास्त्रीय वचनों पर हमें अपना ध्यान केंद्रित करना होगा [प्रचलित उच्चारण बहुत दूर तक सहायक अवश्य ही है, यह स्वीकार्य है] ।

यह अनपलाप्य है कि जैसे 'अकुहविसर्जनीयाना कण्ठ' वाक्य मिलता है, उसी प्रकार यह निर्देश भी स्पष्टत मिलता है कि कवर्ग का स्थान जिह्वामूल है[३] । यह भी ज्ञातव्य है कि कण्ठस्थानवादी भी इस मत को जानते थे । इन वर्णों के कण्ठस्थानवादी यह भी जानते थे कि कुछ पूर्वाचार्य 'अकार-हकार' का स्थान कण्ठ है ऐसा मत भी रखते हैं ।[४] जिह्वामूलवादी का भी यह ज्ञात था कि क—वर्ग का उच्चारणस्थान कण्ठ है, ऐसा भी कहा जाता है । ऐसी स्थिति में यह प्रश्न अवश्य ही उत्पन्न होगा कि क्या इन मतो मे परस्पर विरोध नहीं है ? दूसरा प्रश्न यह भी है कि क्यो इन आचार्यों ने परस्पर के मतों का खण्डन नहीं किया, केवल मतभेद का ही प्रदर्शन कर निवृत्त हो गए ? क्या इन पृथक् मतो का कोई समन्वय है ?

'वर्णोच्चारणस्थान' के विषय में शिक्षाप्रातिशाख्यव्याकरण में जो विचार-पद्धति है, उसको शास्त्रीय दृष्टि के अनुसार जानने से यह विवाद समाप्त हो जाता है, यथा—

पहले ही यह ज्ञातव्य है कि कुछ स्थलो में उच्चारण का भेद सम्प्रदायनियत रहता है, अर्थात् विभिन्न सम्प्रदायो [वैदिक आचार्य-परम्परा एव तदनुग लौकिक परम्परा] मे

---

१ अनतिप्राचीन पूर्वाचार्य भी प्रत्यक्ष उच्चारण की अपेक्षा शास्त्रगत लक्षण वाक्य पर अधिक जोर देते है । अमोघानन्दिनी शिक्षा मे कहा गया है लक्षण न त्यजेद् धीमान् सम्प्रदायोऽन्यथा भवेत् । लक्षणेन विना शिष्य सम्प्रदायो विनाशवान् [१२३] कभी कभी इस सामान्य नियम का अपवाद भी मिलता है [लघ्वमोघानन्दिनी शिक्षा १४] ।

२ 'यद्यपि वैदिक सम्प्रदाय इदानी परिभ्रष्ट' इत्यादि नागेशभट्ट का वचन [उद्योत, षष्ठ अध्याय] इस प्रसग मे द्रष्टव्य है । यह भ्रष्टता अत्यल्प है । शुक्लयजु माध्यन्दिन-सहिता १।३० गत 'वेष्प' पाठ भी सम्प्रदायभ्रश के कारण कही कही वेष्य बन गया है [द्र० जिज्ञासुजी कृत दयानन्दभाष्यविवरण ।]

३ 'जिह्वा मूले तु कु प्रोक्त' यह वचन पाणिनीय शिक्षा के सभी शाखा भेदो मे है [द्र० कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा 'पाणिनीय शिक्षा' नामक नव प्रकाशित ग्रन्थ] । क-वर्गस्तु जिह्वामूले कथित [पजिका टीका, पृ० १४] । पूर्वोक्त पाणिनिवचन की व्याख्या मे प्रकाश टीकाकार कहते हैं कि पाणिनि तथा अन्य आचार्यो ने क-वर्ग का स्थान जिह्वामूल कहा है [पृ० ३०] । वर्णरत्न प्रदीपिका [२५] मे भी यह मत है ।

४ 'कण्ठ्यो अहौ' वचन पाणिनीय शिक्षा मे है । ह को उरस्य वर्ण कहने का सम्प्रदाय [एकेषाम] है—द्र० पाणिनीयशिक्षा-सूत्र ६ तथा आपिशलि शिक्षासूत्र ८ ।

विभिन्न उच्चारण [विभिन्न उच्चारणस्थान-हेतुक] साधु[1] माने जाते हैं। देश-काल भेद से ही विभिन्न उच्चारण साधु माने जाते है, जहां उच्चारण-स्थान का यदि कोई पार्थक्य भी हो जाय तो वह भी साधु ही माना जाता है। इस नियम का एक प्रसिद्ध उदाहरण ऋक्प्रातिशाख्य [१।१] की उवटव्याख्या मे मिलता है, जहां रेफ के दो स्थान [दन्तमूल और मूर्धा] कहे गए है और यह भी कहा गया है कि यह स्थानभेद विभिन्न शाखाओं मे नियत है। उसी प्रकार विवृत्तिकाल [विवृत्ति = दोनों स्वरों के मध्य मे जब कोई वर्ण नही होता, तब उन दो स्वरों का यथाक्रम उच्चारण] के विषय में जो मतभेद है [मात्राकाल, अर्धमात्राकाल अणुमात्रा-काल], वे शाखाभेदानुसार व्यवस्थित है, ऐसा माना जाता है [नारदीयशिक्षा ३।४ की शोभाकरकृत टीका]। इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी मिलते है। सर्वत्र शाखाभेद व्यवस्था की बात ग्रन्थ में कही गई हो, ऐसी बात भी नही है, ग्रन्थ में अनुक्त रहने पर भी संप्रदाय से या अन्य ग्रन्थों की सहायता से मतभेदों की संप्रदायनियतता ज्ञात होती है[2]।

अब यह सोचना चाहिए कि क—वर्गोच्चारणस्थान के विषय में जो मतभेद मिलते हैं, कहीं वे संप्रदायनियत तो नहीं हैं, यदि ऐसी बात है तो 'कण्ठस्थान' और 'जिह्वामूलस्थान' दो पृथक् स्थान होंगे और पृथक् उच्चारण भी साधु माने जाएँगे, ऐसा नही कि कण्ठस्थान कहना अशुद्ध है और जिह्वामूल कहना ही शुद्ध है। हमारा प्रचलित उच्चारण इस विषय में प्रमाण नही हो सकता, यह पहले ही कहा गया है यह पूर्णतः सम्भव है कि कालान्तर में संप्रदायनाश के कारण एक ही उच्चारण रह गया हो, पर उससे यह नहीं कहा जा सकता कि अन्य प्रकार का उच्चारण भ्रान्त है।

हमारा यह भी कहना है कि वर्णोच्चारण स्थानों के नामों का निर्देश [व्याकरण-शिक्षा-प्रातिशाख्य मे] बहुत ही श्लथ भाषा मे किया गया है, अतः एक ही 'स्थान' के लिये दो शब्दों का प्रचलित हो जाना या सामान्यार्थक शब्द से विशेष अर्थ को कहना या वाचक के स्थान पर लक्षक शब्द का व्यवहार करना—इन शास्त्रों में प्रायेण मिलता है। तात्पर्य यह है कि एक ही 'स्थान' को लक्ष्यकर 'कण्ठ' और 'जिह्वामूल' शब्द का प्रयोग [विभिन्न संप्रदायों में या एक ही संप्रदाय में कालान्तर में] होना सर्वथा संभव प्रतीत होता है, क्योंकि व्याकरणादिशास्त्र कोई आयुर्वेदशास्त्र नही है जो शरीरावयवों के विवरण में शरीरविज्ञानी की दृष्टि में यथावत् शब्दों का प्रयोग करे। हठयोगीय ग्रन्थों में—जहाँ शरीरांशों का विवरण साग्रह दिया गया है, वहाँ भी Anatomical और

---

१. शाखाभेद देशकालभेद से हुए है, यह मानना पड़ता है [ऐतरेयालोचन, पृ० १२४-१२५]। 'अग्नि' शब्द का उच्चारण किसी शाखा में णकार घटित था [भर्तृहरिकृत महाभाष्यदीपिका, पृ० १]। इस उच्चारण भेद का कारण देशकाल का यथोचित हेतु ही है। दन्त्य वर्ण का मूर्धन्यवत् उच्चारण भी किसी किसी वेदशाखा में था [शब्देन्दुशेखर ३।२।२७], जो देशकाल भेद से ही उत्पन्न हुआ था।

२. पाणिनि के स्वर संबन्धी अनेक ऐसे सूत्र है, जिनमें विकल्प आदि का उपदेश सामान्यतः दिया गया है, पर प्रायेण वे विकल्प संप्रदाय में नियत है, यह प्रातिशाख्यादि से जाना जाता है।

Physiological distinction) पूर्वक कथन शायद ही कही मिलता हो, तब व्याकरण में स्थाननामो के उल्लेख में विज्ञानी की तरह सावधानी रखी गई है, यह नही कहा जा सकता। जिस समय ये ग्रन्थ लिखे गए थे, उस समय ग्रन्थ केवल अध्ययन-सहायक होते थे, गुरुग्रो के मुख से शिष्यगण [अपनी दृष्टि के अनुसार और प्रयोजन को लक्ष्यकर, उनको कण्ठ-तालु आदि स्थानो की पहचान नही करना था और न चिकित्सा करनी होती थी] उच्चारणस्थान का अपेक्षित ज्ञान प्राप्त कर लेते थे, उनको उच्चारण यथावत् (गुरुग्रो के द्वारा) कराया जाता था। समझाने-बुझाने के लिये कण्ठ-तालु आदि शब्दो का प्रयोग किया जाता था, न कि आजकल की तरह, प्रयोग-परीक्षण के लिये। व्याकरणशास्त्र में 'क्षुद्रजन्तु' [अष्टा० २। ४। ८) प्राण (५। १। १२६ इत्यादि) आदि शब्द मिलते है, वैयाकरण स्थूल लौकिक दृष्टि से ही इन शब्दों के अर्थों को परम्परानुसार समझते है, न कि अस्थिविद्या और जीवविद्या के अनुसार, यदि समझने भी है तो व्यक्तिगत रूप से ही, तद्गत सब विशेषो को जानकर शब्द प्रयोग करने के लिये नही, यह ज्ञातव्य है।

यह भी ज्ञातव्य है कि प्रयोजन के अनुसार उपदेश करना आचार्यों की शिष्टशैली है। यदि वास्तव प्रयोजन न हो तो सवत्र चरम सत्य न कहकर स्थूल सत्य या आपेक्षित सत्य कहने की परिपाटी हमारी परपरा में है। व्याकरण की प्रक्रिया की दृष्टि में चार प्रकार के वर्णोच्चारण प्रयत्न मानने पर भी कोई दोष नही होता, पर वास्तव उच्चारण प्रक्रिया की दृष्टि में और अधिक प्रयत्नो की सत्ता माननी पडती है (छाया टीका पृ० २१७)

कहने का तात्पर्य यह है कि 'कण्ठ' और 'जिह्वामूल' का कोई वस्तुत विरोध नही भी हो सकता है। आजकल हम अगो का जैसा परिचय देते है, वही पद्धति उस काल में भी थी, ऐसा नही समझना चाहिए। अनन्तदेव कहते हैं—'मुखस्यापि मस्तकावयवत्वेन प्रसिद्धे' (प्रतिज्ञासूत्र परिशिष्ट में मूर्धा शब्द की व्याख्या द्रष्टव्य, यहा मूर्धा का अर्थ मुख प्रदेश किया गया है) क्या सभी शरीरज्ञानी या कोई ग्रामीण अज्ञ व्यक्ति मुख को मस्तक का अवयव कहता है? आस्य का लक्षण भाष्यकार के अनुसार 'ओष्ठ से काकलक के आरम्भ पर्यन्त' है (१। १। ९)। यहाँ काकलक=ग्रीवा का जो उन्नत प्रदेश (प्रदीप टीका)। क्या आयुर्वेद में भी आस्य (मुख) का यही अर्थ है?

हम मुक्तकण्ठ होकर स्वीकार करते हैं कि शिक्षादि शास्त्रगत कण्ठ-मूर्धा के विवक्षित अर्थ हम सवत्र नही समझते। त्रिरत्नभाष्य में कहा गया है—मूधशब्देन वक्त्रविवरोपरिभागो विवक्ष्यते (२। ३७ तै० प्रा०)। यहा 'विवक्ष्यते' कहने का तात्पय यह प्रतीत होता है कि इस स्थल में मूर्धा शब्द का यह अथ है, अन्यत्र लोकप्रसिद्ध थोडा पथक् होगा। उसी प्रकार 'तालु-पदेन जिह्वाया अधस्तन प्रदेश उच्यते' (वैदिकाभरण २। २२) कहा गया है। क्या तालु का यह अर्थ लोकसिद्ध है या शरीरविदो का अनुमत है।

इसी प्रकार लाक्षणिक प्रयोग भी हैं। हम हठयोग के ग्रन्थ से एक उद्धरण दे रहे हैं। हठयोग प्रदीपिका १।१९ की टीका में कहा गया है—जानुशब्देन जानुसन्निहितो जङ्घा प्रदेशोग्राह्य' (जानु का तात्पर्य जानु के पास स्थित जङ्घा)। मूर्धा या ब्रह्मरन्ध्र के अर्थ में 'तालु' शब्द शान्तिपर्व (२००।२०) में प्रयुक्त हुआ है। यह दृष्टि वर्णोच्चारणस्थान

निर्देश में भी कहीं कहीं मिलती है। 'दन्त' एक वर्णोच्चारण स्थान है, पर व्याख्याकार कहते हैं कि दन्त का तात्पर्य दन्तमूल है (दन्तशब्देन दन्तमूलप्रदेशों विवक्षितः, बाल मनोरमा १। १। ९)। कही कहीं दन्त और दन्तमूल दो पृथक् स्थान के रूप मे गणित हुए हैं (याज्ञवल्क्य शिक्षा का वर्णोच्चारणस्थान प्रकरण द्र०)।

यह भी ज्ञातव्य है कि टीका ग्रन्थों में तालु आदि के जो लक्षण कहे गए हैं, वे भी कुछ न कुछ अस्पष्ट है, वर्तमान शरीरविज्ञान मे अंगलक्षणों की जो विशदता है, वह इन लक्षणों में प्राप्तव्य नहीं है और उस समय इस विशदता की कुछ आवश्यकता भी नही थी, प्रत्येक गवेषक को यह स्वीकार करना चाहिए। क्या 'आस्यपार्श्वभाग' रूप हनुलक्षण सर्वथा स्पष्ट है जब हम आस्य का शाब्दिकगण-संमत लक्षण को देखते हैं?

उपर्युक्त विचार से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थानों की पहचान शास्त्रानुसार यदि की जाय तो वह बहुत कुछ अस्पष्ट-सी रहती है। उनके मतभेदों पर विचार करने के पहले इस तथ्य को जानकर तब आगे विचार करना चाहिए। पूर्वाचार्यों ने 'यत् स्पर्शनं तत्स्थानम्' [अथर्वप्रातिशाख्य २।३३ तथा अन्यत्र] कहा है। ये स्थान भी स्वर और व्यंजनों की दृष्टि में विभिन्न प्रकार का है, यह तथ्य तैत्तिरीय प्रातिशाख्य २।३१-३३ तथा अन्यत्र स्पष्टतः स्वीकृत हुआ है। इस 'स्पर्शन' के विभाग विभिन्न दृष्टियो से किये जा सकते हैं, और **शारीरिक कार्य समान रहने पर भी स्थान-करण-प्रयत्न के कथन में विभिन्नता हो सकती है। यह वर्गीकरण करने की शैली में भेद के अनुसार होता है, वस्तुतः वहां मतभेद नहीं होता। आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों को इस तथ्य पर ध्यान देना चाहिए। निम्नोक्त उदाहरणों को देखिए—**

अथर्वप्रातिशाख्य में 'जिह्वामूल' नामक कोई स्थान स्वीकृत नही हुआ है, पर कारण [स्थान में आघात करने वाला शरीरावयव विशेष] के उल्लेख मे अधरकण्ठ का उल्लेख है [१।१८ १९]।

स्थानभेद कहने मात्र से वहां वस्तुतः मतभेद हुआ [अतः दोनों में कोई मत अवश्य अशुद्ध है] ऐसा सोचना सर्वत्र संगत नही है। रेफ का स्थान कहीं मूर्धा और कहीं दन्तमूल कहा गया है। यह कोई विरोधस्थल नही है। जब रेफ का स्थान दन्तमूल कहा जाता है [याज्ञवल्क्यशिक्षा, पृ० १५४ अमरनाथशास्त्रिटीकासह], जब 'जिह्वाग्र' उसका करण माना जाता है। टीकाकार कहते हैं कि जिह्वाग्र से दन्तमूल का स्पर्श और जिह्वामध्य से मूर्धा का स्पर्श एक ही बात है अतः रेफ का स्थान मूर्धा भी कहा जा सकता है, दन्तमूल भी।

वर्गीकरण [स्थान-करण-प्रयत्न संबन्धी] के भेद से इस प्रकार मतभद हो जाना स्वाभाविक है, पर यहां वास्तव क्रिया समान ही होगी। 'ऋ' का स्थान बहुत्र मूर्धा माना गया है, पर याज्ञवल्क्यशिक्षा मे इसका स्थान 'जिह्वमूल माना गया है [पृ० १५४]। टीकाकार कहते हैं कि पाणिनि ने प्रक्रियालाघव के लिये [न कि मतभेद दिखाने के लिये] 'ऋ' का स्थान मूर्धा कहा है, वस्तुतः इसका स्थान जिहवामूल है और हनुमूल करण है।

यदि कोई हनुमूल को करण के रूप में स्वीकार न करे तो वह ऋ' का स्थान मूर्धा ही कहेगा'।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्णों का उच्चारण स्थान भी मुख के अन्तर्गत है उच्चारण का करण भी मुख के अन्तर्गत अग विशेष हैं, और इन अवयवों का साक्षात या अन्तरित परस्पर सयोग भी है, तब इन स्थानकरणों के निर्धारण में दृष्टि-भेद के कारण स्थानकरण-निर्देश भी विभिन्न होगे [एक ही वर्णोच्चारण प्रयत्न के क्षेत्र में] यद्यपि उससे वस्तुस्थिति में भिन्नता या मतभेद वस्तुत नही होते।

प्रसगत यह ज्ञातव्य है कि वर्णरत्न प्रदीपिका में क–वर्ग का करण जिह्वामूल है, यह कहा गया है [२५]। ध्यान देना चाहिए कि इ–वर्ण-चवर्ग तथा यवण-रवण का स्थान-करण [करण के लिये वर्णरत्नप्रदीपिका में कारण शब्द दिया गया है] परस्पर भिन्न है, पर क–वर्ग का स्थान और करण एक ही है, ऐसा कहा गया है। यह दृष्टि सर्वग्रन्थकारो में एकरूप नही है। चूकि स्थान और करण ये दो ही शरीरावयव विशेष ही है, और ये सब अवयव परस्पर साक्षात या परम्परा-सबन्ध से प्रायेण सयुक्त हैं, अत स्थानकरण विभाजन तत्व के निर्धारण में दृष्टिभेद के अनुसार स्थान-करण-निर्देश अवश्य ही पृथक्-पृथक् होगे। इस परिस्थिति में यदि एक-वर्णोच्चारण भी भिन्न भिन्न होता है, तो स्थान निर्णय भी भिन्न-भिन्न है, यह कहना न्यायत प्राप्त होता है और यदि एक वर्ण का उच्चारण समान ही है तब स्थान करण निर्देश विभिन्न प्रकार के होने पर भी वहा तत्त्वत मतभेद नही है, यह ज्ञातव्य है, वहा दृष्टिभेदानुसारी प्रक्रिया भेद ही है।

यह रहस्य पूर्वाचार्यो का अनुमत है। देखा जाता है कि तै० प्रा० २।३५ में क–वर्ग का स्थान हनुकूल और कारण [जिसके द्वारा स्थान में स्पर्श किया जाता है—तै० प्रा० २।३४] जिह्वामूल है, जबकि अन्यत्रजिह्वामूल को स्थान ही माना गया है। पवर्गोच्चारण में उत्तरोष्ठ को स्थान माना जाता है और अधरोष्ठ को करण, जबकि अन्यत्र दोनो

१ जिस स्थान में वर्ण की उपलब्धि होती है, वह स्थान है, [यत्रस्था वर्णा उपलभ्यन्ते तत्स्थानम्-पाणिनि शिक्षा सूत्र ७।७ तथा आपिशलिशिक्षा-सूत्र ७।३]। यह स्थानोपलब्धि दृष्टिभेद से विभिन्न प्रकार की ज्ञात हो सकती है—कोई स्थूल दृष्टि से कोई सूक्ष्मदृष्टि से, कोई सूक्ष्मतर दृष्टि से। धोती किससे बनी है, इसका उत्तर 'सूत' से बनी है, भी हो सकता है और रूई से बनी है यह भी हो सकता है, और इन दो उत्तरों में न एक से दूसरा खण्डित होता है और न पार्थक्य होता हुआ भी विरोध होता है, उसी प्रकार जितनी बारीकी से छानबीन किसी आचार्य ने वर्णोत्पत्ति स्थान के विषय में की है, उतना ही स्थूल से सूक्ष्म उत्तर दिया गया है। हम समझते हैं कि यदि चिरकाल से सस्कृत भाषी समाज में क–वर्ग का उच्चारण एकरूप ही रहा है तो उसका उच्चारण स्थान भी वस्तुत एक ही रहा है, पर वह स्थान वस्तुत क्या है, इसमें अनुसधाता की दृष्टि की सूक्ष्मताक्रम के अनुसार मतपार्थक्य होगा—एक ही स्थान को लक्ष्यकर कण्ठ, कण्ठमूल और जिह्वामूल शब्द भाषित हो सकता है, जिनमें आचार्यों के दृष्टि प्रकर्ष का तारतम्य है, वस्तुत विरोध नही है।

ओष्ठों को ही स्थानकरण माना गया है। सामान्य दृष्टि से देखने से इन मतों मे मतभेद ज्ञात होता है, पर चूंकि उच्चारण मे वैलक्षण्य नही माना जाता, अतः यही मानना उचित होगा कि स्थान और करण का पृथक् पृथक् निर्धारण करने की दृष्टियाँ विभिन्न स्तर की होती हैं और परस्पर में पार्थक्य होने पर भी विरोध नहीं है, हां दृष्टिभेद के उत्कर्षापकर्ष का विचार किया ही जा सकता है, यद्यपि यह मानना होगा कि स्थूलार्थक शब्द प्रयोग करने वाले आचार्य सूक्ष्म अर्थ को सिद्धान्ततः जानते थे।

श्री सत्यकाम वर्मा

भर्तृहरि की दृष्टि में पद-भेद

भर्तृहरि की दृष्टि—भर्तृहरि की भाषा वैज्ञानिक दृष्टि का विवेचन करते हुए एक ऐसे विषय को ले बैठना, जिसकी सत्ता को ही वह सार्थक स्वीकार नही करता, सर्वथा अनुचित जान पड़ता है। भर्तृहरि ने 'पद' और 'पदार्थ' को व्यावहारिक सुविधा की वस्तु माना है। वह उन के उच्चारणात्मक (ध्वन्यात्मक) और अर्थात्मक स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। ध्वन्यात्मक पक्ष में उसका स्पष्ट कथन है।

'भागानामनुपश्लेपान्न वर्णो न पदं भवेत्।' वा० २. २६।।

अर्थात्मक-सत्ता के विषय में भी उसका स्पष्ट उद्घोष है :

'तथा पदानां' सर्वेषा पृथगर्थनिवेशिनाम्।
वाक्येभ्यः प्रविभक्तानामर्थवत्ता न विद्यते।। वा० २. ४२७

'पदार्थ' की स्थिति उसकी दृष्टि में वास्तविक न होकर व्यावहारिक या काल्पनिक ही है।

लक्षणाद् व्यवतिष्ठन्ते पदार्था: न तु वस्तुत:।। वा० २.४४४
वाक्यार्थे योऽभिसम्बन्धो न तस्यात्माक्वचित्स्थित:।
व्यवहारे पदार्थाना तमात्मानं प्रचक्षते।। वा० २.४४५
व्यवहारश्च लोकस्य पदार्थै: परिकल्पितै:। वा० ३. ३. ८६

और, इतना स्पष्ट कहने वाले वैज्ञानिक के युक्तिक्रम का उपहास करके हम 'पदभेद' के रूप में एक ऐसे विषय पर विचार करे जिसकी वैज्ञानिक उपयोगिता का वह सर्वथा विरोधी है, यह अनुचित प्रतीत होता है। फिर भी आदि काल से ही भाषा-विषयक-अध्ययन में पद-विभाग का विवेचन होता आया है। आज भी भाषा-तत्त्व के पूर्ण-विशेषण के बाद भी विद्वान् इस विषय में मतैक्य प्रदर्शित नही कर पाये। इसलिये भर्तृहरि जैसे महान भाषाविद् के इस-विषयक विचारों का, उसके पद भेद-विषयक उल्लेखों का, अध्ययन होना आवश्यक है। उसका विवेचन इस विषय मे उपेक्षापूर्ण न होकर पूर्ण विवेचना से युक्त है और नितान्त वैज्ञानिक है। ऐसा करते हुए उसने वैयाकरणो द्वारा मान्य पद-विभाग को केवल गिनवाया ही नहीं है, बल्कि उसकी रचनात्मक एवं अर्थात्मक सभी सम्भावनाओं पर विचार किया है। अन्तिम परिणाम उसका एक ही है कि, वाक्यार्थ के सम्मुख इन पदों के अर्थ की वैयक्तिक सत्ता नही रहती। किन्तु, फिर भी तद्विषयक सभी मान्यताओं को अपने ध्यान में रखा है। अत: 'पद-विभाग' पर, इस विवेचन मे, दृष्टि डालना उचित एवं सप्रसंग ही होगा।

पद सख्या– पदो की सख्या के विषय में पाश्चात्य और पूर्वीय विद्वानों ने पर्याप्त विचार किया है। अरस्तू अथवा अर्वाचीन परम्परानुगत पाश्चात्य वैयाकरणों को छोडकर शेष सभी प्राय मिलते जुलते परिणामो पर पहुँचे हैं। यह सख्या कम से कम तीन व अधिक से पाच रही है। ऋग्वेद् के एक मन्त्र (ऋ० १ १६८ ४५) में वाणी के चार 'पद' माने गए हैं। पतजलि (महा० १ १ १) में इसकी व्याख्या में नाम, आख्यात उपसर्ग और निपात—इन चार को पद गिनाया है। यही गणना यास्क ने अपने 'निरुक्त' (नि० १ १ ८) में प्रदर्शित की है। पाणिनि ने धातु और प्रातिपदिक की सत्ता को 'आख्यात' और 'नाम' का मूल तो स्वीकार किया ही है, किन्तु उपसर्ग और निपात के साथ साथ कर्मप्रवचनीय की सत्ता का भी उल्लेख किया है। किन्तु, इसके अतिरिक्त भी एक ऐसी शब्द-राशि पर उसका ध्यान गया जो इन पाँचों वर्गों में गृहीत नही हो सकती। उसने उपसर्ग, निपात, कर्मप्रवचनीय, एव उस अवशिष्ट शब्द-राशि का 'अव्यय' नाम दे डाला। इस प्रकार शुद्ध वैयाकरण अथवा भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से उसने तीन ही तत्त्व स्वीकार किए। पाश्चात्य विद्वानो में से भाषावैज्ञानिक दृष्टि से ब्लूमफील्ड एव व्हाट्माऊ तथा व्याकरणात्मक दृष्टि से वरो और जेस्पसन के निरीक्षणो को अधिक-सयुक्ति कहा जा सकता है। ब्लूमफील्ड एव व्हाट्माउ तो इस विभाग को ही अस्वाभाविक मानते हैं प्रत्येक विभाग एक दूसरे के क्षेत्र को घेरता सा दिखाई देता है। अर्थात्मक दृष्टि से भी वे उन्हें अपूर्ण एव असमय इकाइया स्वीकार करते हैं। जबकि वरो उन की सख्या नाम, आख्यात, अव्यय, व निपात के रूप में चार तक सीमित करता है और जेस्पर्सन इस सख्या का सत्व,विशेषण, सर्वनाम, आख्यात एव निपात के रूप में पाँच तक ले जाता है। जेस्पसन ने विशेषण व सर्वनाम को नाम' या 'सज्ञा' से पृथक् स्वीकार किया है, जब कि वरो ने अव्यय को निपात से भिन्न माना है। जेस्पसन के विभाग में अन्तर अर्थात्मक दृष्टि से आ जाता है। अर्थात्मक महत्व में प्रथम तीनो ही विभाग एक समान पगु सिद्ध हो जाते हैं। जहाँ तक 'द्रव्यात्मक सकेत' या 'सत्ता' का सम्बन्ध है, उसके गिनाये प्रथम तीनो विभाग ही 'द्रव्य' पर आश्रित अपनी अभिव्यक्ति देते हैं। दूसरी ओर वरो के विभाग में भी अन्तिम दोनो भेदो के विषय में विपक्षात्मक अथवा निषेधात्मक युक्तियाँ दी जा सकती हैं। ब्लूम फील्ड और व्हाट्माउ की युक्ति-सरणि एक दम स्वाभाविक एव वैज्ञानिक है। यही युक्ति-सरणि यास्क के निरुक्त में सर्व प्रथम उठाई गई थी। तदयत्रो भावप्रधाने भवत (नि० १ १ १०) में यही तथ्य निहित है। नाम और आख्यात के इस विभाग को व्याकरण ने भी कहाँ तक मान्यता दी ? यह बात पाणिनि एव पतजलि के 'नामधातु प्रकरण में स्पष्ट देखी जा सकती है। पाणिनि ने धातु पाठ में 'चुरादिगण' में जिन धातुओं का पाठ किया है, उनमें भी अधिकाश धातुए न होकर 'नाम ही हैं। नामो के 'आख्यातज' होने के सम्बन्ध में निरुक्तकार पतजलि आदि एकमत हे ही। परन्तु सभी 'नाम' आख्यायन भी स्वीकार नही किए गए। पाणिनि की उणादि सूत्र-कल्पना इसी सत्य की व्याख्या है। 'अव्यय' को एक इकाई माने या उपसर्ग, निपात कर्मप्रवचनीय तथा अवशिष्ट अव्यया के रूप में चार पृथक्-पृथक् इकाइयाँ यह भी एक विवादास्पद प्रश्न है। अवशिष्ट अव्ययों को 'नाम' के अन्दर गिनने का प्रयास भ्रामक सिद्ध होगा। जब प्रवृत्ति ने कभी वे भी नामो के समान 'सुबन्त' होकर चले थे, परन्तु बाद में वे निपातो के समान

'गतिहीन' होकर एक ही रूप मे स्थिर हो गए, इसीलिए अव्यय कहलाये (स्वरादि निपातमव्ययम् पा० १. १. ३७)। परन्तु, अन्ततः उन्हें सात्विक विवेचना के आधार पर पाणिनि भी उपसर्ग, निपात, व कर्मप्रचनीय से भिन्न ही स्वीकार करते हैं। उनका ग्रहण 'नाम' में ही हो सकता है। शेष को तीन माने, दो या एक, इस विषय मे मतभेद हो सकता है। पतंजलि इनकी संख्या को 'दो' तक सीमित करते हैं। भर्तृहरि बिना विवाद मे गए, इन्हें, तीन मान कर ही इनका विवेचन करते हैं—द्विधा. कैश्चित्पदं भिन्नं चतुर्धा पंचधापि वा' (वा० २. १. १) इस में वे पद को पांच कहकर इसी सत्य का उल्लेख मात्र ही कर रहे हैं। मीमांसाकार जैमिनी आदि कुछ आलोचकों ने नाम और आख्यात के रूप मे केवल दो ही पद-रूपों की सत्ता स्वीकार की है।[1] यह कल्पना कहाँ तक उचित व समर्थ है, इसका विवेचन ही अगली पंक्तियों में होगा।

अव्यय—अव्यय की चर्चा में उपसर्ग, निपात एवं कर्मप्रवचनीय की गणना की गई है। पाणिनि की दृष्टि में इन तीनों को 'निपात' माना गया है (पा० १.४.५६)। बाद में इन्हीं में से कुछ उपसर्ग (पा० १.४.५९) अथवा गति (पा० १.४.६०) और कुछ कर्मप्रवचनीय (पा० १. ४. ८३ से ९६) कहलाते हैं। शेष को 'निपात' ही कहा जाता है। इन सबको 'अव्यय' इसलिये कहा गया है कि पदों की भांति इनमे विभक्तियों आदि का संयोग नहीं देखा जाता। अर्थ की दृष्टि से भी इनकी सत्ता संज्ञा और क्रिया से सर्वथा भिन्न है। एक ही 'निपात' निरर्थक भी रह सकता है, उपसर्ग रूप में उसका एक अर्थ हो सकता है, तथा कर्म प्रवचनीय रूप में उसका दूसरा अर्थ रह सकता है। एक ही निपात विविध प्रयोगों में विविध अर्थों का वाहक भी हो सकता है[1]। इसीलिए पाणिनि ने इन्हें प्रायः 'असत्व' (अमूर्त या अद्रव्य) की कोटि में रखा है। स्वरादि 'अव्ययों' को वर्तमानकालिक क्रिया विशेषणं का पर्यायवाची भी कहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनमे से अधिकांश 'संज्ञाविशेषण' का अर्थ भी वहन करते हैं। किन्तु व्याकरणात्मक रूप व सत्ता को खोकर वे सभी 'अव्यय' बन चुके होते हैं।

कर्मप्रवचनीय—भर्तृहरि ने कर्मप्रवचनीयों की विवेचना भाषातात्विक दृष्टि से की है। उसके शब्दों में : 'जनयित्वा क्रियां कांचित् सम्बन्धी विनिवर्त्तते। श्रूयमाणे क्रियाशब्दे सम्बन्धो जायते क्वचित्'।। वा० २. १९९ ।।

'सचोपजातः सम्बन्धो विनिवृत्ते क्रियापदे।
कर्मप्रवचनीयेन तत्र तत्र नियम्यते ।। वा० २. २०१ ।।

'उपसर्ग' की अवस्था की एक शर्त है– क्रियायोग (पा० १. ४. ५९)। क्रिया के बिना उपसर्ग का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं देखा जाता। क्रिया से संयुक्त होकर भी उपसर्ग क्रिया के अर्थ मे ही संशोधन-परिवर्धन करता है। धातुव्यतिरिक्त किसी स्वतन्त्र अर्थ को अभिव्यक्ति नहीं देता। परन्तु, जब किसी क्रिया से जुड़कर भी यह उस क्रिया के 'अर्थ मे संशोधन-परिवर्धन न कर के, एक नये अर्थ का आधान करता है, और वह अर्थ किसी विशिष्ट क्रिया को संकेतक होता है, तब उसे कर्मप्रवचनीय' कहते हैं: सम्बद्ध क्रिया से व्यतिरिक्त किसी अन्य क्रिया की भावना (कर्म) का वाहक। ऐसा इसलिए होता है कि वस्तुतः यह

१–मी० २. १. १, तथा २. १. ३

'कर्मप्रवचनीय' पहले 'उपसर्ग' रूप में किसी अन्य क्रिया से सम्बद्ध होता है। उस क्रिया से मुख्य क्रिया भिन्न होती है, कह सकते हैं, वह पूर्ववर्ती क्रिया क्रिया-विशेषण के रूप में होती है। परन्तु प्रधान क्रिया के अर्थ से उसका अर्थ सबद्ध हो चुका होता है। उसी दशा में प्रयोग में धीरे धीरे विशेषण रूप क्रिया का अदर्शन (लोप) हो जाता है। तब उसके साथ का 'उपसर्ग' उस क्रिया-समेत सम्पूर्ण अर्थ का वाहक (कर्मप्रवचनीय) अनवर मुख्य धातु से सयुक्त हो जाता है। अब क्योकि सयुक्त रूप मे दीखने वाली धातु के अर्थ में परिवर्तन या परिवर्धन नही करता, बल्कि बाहर के अर्थ का लाता है। अत उसे 'उपसर्ग' कहना अस्वाभाविक एव अनुचित हो जाता है। उसे उपसर्ग से भिन्न मानना ही उचित है।

इसकी यह विशेष स्थिति केवल शास्त्रीय ही नही है। लौकिक दृष्टि से भी ऐसी स्थिति को 'विशिष्ट' एव उपसर्ग भिन्न स्वीकार किया गया है। परिणामत व्याकरणात्मक अनेक परिवर्तन असफल एव अदृष्ट रह जाते हैं। 'अनु' के योग में तृतीया होनी चाहिए, पर कर्मप्रवचनीय बनने पर वह हेतु लक्षणा तृतीया नही होती। सु आदि में षत्व आदि उपसर्गप्राप्त कार्य नही होते। यह सब उनकी विशिष्ट स्थिति के कारण ही।

'कर्मप्रवचनीयत्व क्रियायोगे विधीयते।
षत्वादिविनिवृत्त्यर्थ स्वत्यादीना विधर्मणाम् ॥ वा०२ २०४ ॥
'हेतु हेतुमतोर्योगपरिच्छेदेऽनुना कृते।
आरम्भाद्बाध्यते प्राप्ता तृतीया हेतुलक्षणा ॥ वा०२ २०५ ॥

और इसके वास्तविक स्वरूप को, भाषा तात्त्विक भाषा में, वे इस प्रकार कहते हैं, न यह (अदृष्ट) क्रिया का द्योतक होता है, न यह किसी सम्बन्ध का वाचक है, न (अदृष्ट) क्रियापद की आवश्यकता को अनिवार्य सिद्ध करने वाला है। इसे अधिक से अधिक सम्बन्ध में भेद लाने वाला (सामान्य से अन्तर कर देने वाला) कह सकते हैं।[1] 'यही इसकी उचिततम व्याख्या दीखती है। यह व्याख्या विश्व की किसी भी भाषा विशेषकर भारोपीय कर्मप्रवचनीयो पर लागू हो सकती है। स्वतन्त्र रूप मे विभक्ति स्थानीय उपसर्गों की भी यही व्याख्या हो सकती है। पाणिनि ने इन प्रेपोजीशन रूपी कर्मप्रवचनीयो में उप, अप, परि, आङ, प्रति, परि, अनु, अभि, अधि, सु, अति, अपि, आदि का गणन कराया है। ग्रीक कर्मप्रवचनीयो का अध्ययन भी प्राय इन्ही पर आधारित है। उसमें कुछ की पृथक्कता भी है। वहा भी और सस्कृत में भी इनका प्रयोग क्रिया के बिना और क्रिया के साथ—दोनो रूपो में ही—देखा है। जर्मन, इगलिश आदि में भी कुछ मात्रा में यही प्रवृत्ति स्पष्ट है। परन्तु सर्वत्र इनका अर्थात्मक सम्बन्ध क्रिया से ही स्वीकार किया गया है।

उपसर्ग—उपसर्ग की स्थिति इनसे भिन्न है। उनका प्रयोग क्रिया के साथ ही होता है। हो सकता है, वह स्वतन्त्र रूप में प्रयुक्त हुआ हो (यथा वैदिक में), तब भी उसका अर्थ क्रिया के अर्थ से सयुक्त होकर ही स्पष्ट होता है। पर इस पर भी धातु का अविभाज्य-अश

१　उच्चावचेषु अर्थेषु नियन्तीति (नि० १ ४ १–२)

१　वा० २. २०६

इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता । धातु से इसकी पृथक् स्वीकृति का प्रमाण ग्रीक, जर्मन व भारतीय आर्य परिवार की प्राचीन भाषाओं में पाया जाता है । धातु के काल तथा उसके भाव आदि की सूचना देने वाली 'अट्' आदि आगम सदाही उपसर्ग और धातु के बीच में, अर्थात् धातु से पहले स्थान ग्रहण करते हैं ।

"अडादीनां व्यवस्थार्थं प्रथक्त्वेन विकल्पनम् ।
धातूपसर्गयोः शास्त्रे धातुरेवतु तादृशः ।। वा० २. १८२ ।।

परन्तु इन सभी भाषाओं में उपसर्ग अनकेत्र धातु के अविभाज्य अंग भी बन जाते हैं । तब उक्त सभी विधियां सोपसर्ग धातु से ही होती हैं । वहां उपसर्ग अपनी पृथक्सत्ता से हीन हो जाता है ।

'तथा हि संग्रामयतेः सोपसर्गाद्विधिः स्मृतः ।
क्रिया विशेषाः संघातैः प्रकाम्यन्ते तथाविधाः ।। वा० २. १८२ ।।

वस्तुतः उपसर्ग का अपना कोई अर्थ नही होता । यह तो धातु से उस का सम्बन्ध है, जो उसे 'संयोग' में एक वैशिष्टय ला देता है । 'कर्मप्रवचनीय' से उसमें यही अन्तर है कि कर्म प्रवचनीय और धातु की कार्य-प्रयोजना अथवा अर्थगत अन्तरंग एकता नही होती, जबकि उपसर्ग का अर्थ की दृष्टि से स्वतन्त्र महत्व न होकर, धातु के साथ ही उसकी अर्थात्मक आंतरिक एकता होती है ।

'कार्याणामंतरंगत्वमेव धातूपसर्गयो : ।
साधनैर्याति संबन्धं तथा भूतैव सा क्रिया ।। वा० २. १८४ ।।

इस आन्तरिक अभिन्नता की व्याख्या में भर्तृहरि कहते हैं कि जिस प्रकार 'धातु' के क्रिया-रूप प्रयोग से पहले उसमे 'धातुत्व' व 'कर्मभाव' की स्थापना मानसिक अवस्था में ही हो जाती है, उसी प्रकार मन व बुद्धि में ही धातु व उपसर्ग का अर्थगत सम्बन्ध व तज्जन्य ऐक्य हो जाता है । यह आत्यन्तिक एकता यदि कही टूटती है तो हमारी पदग्रहण-परक प्रवृत्ति की वेला में ही ।

'धातोः साधनयोगस्य भाविनः प्रक्रमाद्यथा ।
धातुत्वंकर्मभावश्च तथान्यदपि दृश्यताम् ।। वा० २. १८६ ।।
'बुद्धिस्थादभिसम्बान्धान्तथा धातूपसर्गयो :
'आभ्यन्तरीकृतो भेदः पदकाले प्रकाशते' ।। वा० २. १८८ ।।

और, भर्तृहरि इसकी भी सार्वत्रिक व सर्वमान्य परिभाषा ढूंढ निकालते हैं : 'वह धातु के सामान्य अर्थ से कुछ विशेषता ला देता है, किसी अनिर्दिष्ट तथ्य की ओर इंगित भी कर सकता है, अथवा धातु का सहवर्ती रह कर उसके मौलिक अर्थ में स्थिरता व बल ला देता है' ।

'स वाचको विशेषाणां, सम्भवाद्द्योतकोऽपि वा ।
शक्त्याधानाय धातोर्वा सहकारी प्रयुज्यते ।। वा० २.१९०

निपात—कर्म प्रवचनीय और उपसर्गों की गणना में आने वाले सभी पद और उनकी पहुँच से परे के असत्ववाचक (संयोजकादि) अव्यय 'निपात' कहलाते हैं[1] । इनकी सर्वोत्कृष्ट परिभाषा यास्क ने की है : 'अथ निपाताउच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्तीति' (नि० १·४·१–२।४)

निपातो का कोई स्थिर अर्थ नही होता। उनके अथ बदलते रहते हैं। वे उपमार्थक समुच्चयार्थ, प्रातिषेधार्थक, विनिश्चयार्थक, सशयार्थक अथवा निरथक पदपूरणार्थक भी हो सकते हैं। इनमें से बहुतो का मिश्रण भी अनेक निपातो में देखा जाता है वस्तुत उन्हें किसी एक अर्थ में बाँधना असम्भव है। विश्व भर की भाषाओ में निपातो की यही स्थिति है। पदो से उनका अ तर यही है कि अकेले रहने पर ये किसी भी स्थिर अथ को वहन नही कर सकते। यह स्थिति सापेक्ष ही है। इस विषय में ये 'प्रत्ययो' से अभिन्न स्थिति के हैं, वे भी अकेले प्रयुक्त नही होते।

'चादयो न प्रयुज्यन्ते पदत्वे सति केवला।
प्रत्ययो वाचकत्वेऽपि केवलो न प्रयुज्यते ॥ वा० २ १९६

निपातो की इस अनिश्चित स्थिति को, एव उनके अनिश्चित प्रयोग को भर्तृहरि ने भी स्वीकार किया है।

'विपाता द्योतका केचित पृथगर्थाभिधायिन।
आगमा इव केऽपि स्यु सभूयार्थस्य वाचका ॥ वा० २ १९४

यहा 'सभूय' का अथ विचारणीय है। अनेकत्र अनेक निपात एकत्रित होकर एक ही अथ की अभिव्यक्ति करते हैं। यही सत्य यहा भर्तृहरि को वाच्य है। वाक्य मे अथवा पदो के साथ, उनका स्थान भी निश्चित नही किया जा सकता। वे अपना निर्दिष्ट सकेत कही भी रहकर दे सकते हैं।

'उपरिष्टात्पुरस्ताद्वा द्योतकत्व न भिद्यते।
तेषु प्रयुज्यमानेषु भिन्नार्थेष्वपि सवथा' ॥ वा० २०-१९५

१, चादयोऽसत्वे, । पा० १ ४ ५७।

पाणिनि ने चादि पदो को 'असत्व' अथ मे निपात स्वीकार किया है। शका हो सकती है जब सत्व और भाव का अ तर सज्ञा और क्रिया का अन्तर उत्पन्न करता है, तब 'असत्व' से 'भाव' अथ भी लिया जा सकता है। उस स्थिति में 'चादि' मे आने वाले धातु-सदृश निपातो के साथ उनके धातुरूपो का भी ग्रहण हो सकेगा। भर्तृहरि का सकेत स्पष्ट है कि असत्व का प्रयोग 'भाव' के द्योतक के लिए नही है। बल्कि इसके द्वारा यह सूचना मिलती है कि निपातो की श्रेणी 'धातु' मे न होकर 'प्रातिपादिक' या 'सज्ञा' मे ही पडनी चाहिए थी। किन्तु, सज्ञा 'सत्व' की सूचक होती है। अत सत्व रहित सूचना को देने वाला जो भी धातु-व्यतिरिक्त शब्द है, उसे 'निपात' ही मानना चाहिए, क्रिया (धातुजन्य) उससे सवथा भिन्न वस्तु है।

'समुच्चिताऽभिधानेऽपि व्यतिरेको न विद्यते।
असत्वभूतो भावश्च, क्रियाऽन्येनाऽभिधीयते ॥ वा० २. १९७

और इस व्याख्या की पूणता है—'परतन्त्रास्तु चादय' (वा० २ १९८) मे। वे अपनी अथ व्यक्ति में अकेले किसी भी प्रकार असमथ है।

प्रत्यय—निपातो के प्रसग में 'प्रत्ययो' का उल्लेख आया। पाणिनि ने उन्हे विभिन्नार्थों में प्रयुक्त, अत एक 'अर्थवान्' इकाई कहा है (पा० १ २ ४५)। भर्तृहरि ने भी—

'जायते प्रत्ययोर्थेभ्यस्तर्थेभ्यस्तर्थेवोद्देशजामतिः (वा० ३. ३. ५३) के द्वारा इसी बात को स्वीकार किया है। परन्तु इस भाषा-तात्विक सत्य का उद्घोष भी उन्होंने ही किया है कि प्रत्ययों के अर्थवान् होने का यह अर्थ नही कि उनका स्वतन्त्र प्रयोग हो सकता है। सत्य तो यह है कि उनका अर्थ 'शास्त्रीय' दृष्टि से ही सिद्ध किया जा सकता है लोक प्रयोग में न उसकी उपयोगिता है न अस्तित्व। फिर उनका तथाकथित अर्थ भी प्रकरणादि पर आश्रित रहता है, स्थिर नहीं कहा जा सकता।

'कृत्तद्धितानायर्थश्च केवलानामलौकिकः।
प्राग्विभक्तेस्तदन्तस्य तथैवार्थो न विद्यते।। वा० २. २१३
'अभिव्यक्तरो योऽर्थः प्रत्ययान्तेषु लक्ष्यते।
अर्थवत्ता प्रकरणादाश्रितः म तथाविधः।। वा० २. २१४

अतः प्रत्ययों को किसी भी रूप में 'पद' जैसा महत्व नही दिया जा सकता।

नाम और आख्यात—शेष दो पद-भेद कहलाते हैं नाम और आख्यात। इन दोनों के अन्तर के विषय में भी आरम्भ से ही विचार होता रहा है। यास्क ने इसे स्पष्ट शब्दों मे 'भावप्रधानमाख्यातम्' सत्वप्रधानानि नामानि' (नि० १. १. ९) के द्वारा क्रमशः 'आख्यात' को भाव-प्रधान एवं 'संज्ञा' को सत्व प्रधान स्वीकार किया है। मीमांसाकार ने कर्मशब्द (धातु) को 'भावार्थाः कर्मशब्दाः' (मी० २. १. १), 'आख्यात' को 'येषां तूत्पत्तावर्थे स्वेप्रयोगो न विद्यते तान्याख्यातानि' (मी० २. १. ४), तथा संज्ञा को 'येषामुत्पत्तौ स्वेप्रयोगे रूपोपलब्धिस्तानि नामानि' (मी० २. १. ३) के रूप मे स्वीकार किया है। उन का भेद रूपोपलब्धि पर है। यास्क की 'सत्व' (सत्ता) की शर्त भी इस 'रूप' का ही दूसरा नाम प्रतीत होती है। अन्तर उसमें यही है कि 'सत्ता' मे बहुत कुछ अरूप भी ग्रहण हो सकता है। गुण-संख्या आदि अरूप हैं। मीमांसा के भाष्यकार शबर स्वामी ने इसीलिये 'नाम' की व्याख्या मे उन्हे 'द्रव्यगुण शब्दाः' कहा है (शबर भाष्य पृ० ३८७)। 'सत्व' का अर्थ 'सत्ता' से है। मीमांसा व निरुक्त दोनों ने ही 'भाव' की प्रधानता मे आख्यात और धातु की सत्ता स्वीकार की है, यद्यपि मीमांसाकार द्वारा रूपोत्पत्ति के अभाव को 'आख्यात' की शर्त बताना भयावह भी है। पाणिनि 'असत्वे' में 'च' आदि निपातों को गिना है। उन सब के उच्चारण से भी रूपोपलब्धि नही होती। फिर 'रूप' की यह शर्त वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टि से भी सही नही उतरती। 'क्रिया' या 'आख्यात' का ग्रहण किसी न किसी रूपात्मक विद्या के द्वारा ही हो सकता है। इस दृष्टि से यास्क की परिभाषा अधिक उचित जंचती है। वहाँ 'भाव' की शर्त है। मीमांसाकार 'भाव प्रधान' को 'कर्म शब्द' कहता है। 'भाव' का अर्थ भावना (मूड) भी हो सकता है और 'होना या बनना' (बिकमिंग) भी: प्रक्रिया की अवस्था, जो अभी पूर्णता तक नही पहुँची। प्रक्रिया की अवस्था पूर्ण होते ही वह 'भाव' के क्षेत्र से बाहर चली जाती है: उसे 'सत्व' (बीइंग) कह सकते हैं। यह है आख्यात और नाम का अन्तर। किन्तु, यास्क अगली समस्या रख देते हैं: यह विभाजक रेखा सही नहीं है, नाम और आख्यात दोनो भाव-प्रधान भी हो सकते हैं (तद्योभेभावप्रधाने भवतः। नि० १. १. १०)। भाव और सत्व के इस अन्तर को वैज्ञानिक स्तर पर, सम्भवतः भर्तृहरि ही सुलझाने मे समर्थ हुए हैं।

यू तो, 'वाक्' की एकात्मता एव वाक्य की अविच्छेद्यता के पोषक भर्तृहरि इस 'भेद को ही अस्वाभाविक मानते हैं। परन्तु उन्होने 'भाव' और 'सत्व' की इस उलझन को अत्यन्त योग्यता से स्पष्ट भी किया है। सवप्रथम तो उन्होंने 'सर्वानि नामान्याख्यातजानि' वाले सिद्धान्त का खुलकर विरोध किया है। वे यास्क के 'तद्यत्रोभे भावप्रधाने भवत' की मान्यता के भी समर्थक नही दीखते। उनका कहना है कि यह बात स्वीकार करते ही नाम, आख्यात आदि चारो पद-भेद झूठे पड जाते हैं।

'सव सत्वपद शुद्ध यदि भावनिबन्धनम्।
ससर्गे च विभक्तोऽस्य तस्यार्था न पृथग्यदि ॥ वा० २ ३४५॥
'क्रिया प्रधानमाख्यात नाम्ना सत्व प्रधानता।
चत्वारि पदजातानि, सवमेतद्विरुध्यते' ॥ वा० २ ३४६॥

परन्तु, 'भाव' और 'सत्व' के पीछे छिपे वैज्ञानिक रहस्य को भी वे ही खोलते हैं। भाव है 'आश्रितक्रमरूप' जिस शब्द का सुनकर किसी एक निश्चित (सिद्ध) वस्तु की प्रतीति न होकर, ऐसी प्रतीति हो जिसके कुछ अनिश्चित से चरण हो, या जो प्रतीति किसी साधनावस्था के विभि न चरणों से परिचय कराये उसे 'क्रिया' कहते हैं।

यावत्सिद्धमसिद्ध वा साध्यत्वेनाऽभिधीयते।
आश्रितक्रमरूपत्वात् तत् क्रियेत्यभिधीयते ॥ वा० ३ ८ १॥

और 'नाम' को वे मानते ह जिसमें इस क्रम रूप का सहार हो जाये।

नामशब्दा प्रवर्त्तते सहरन्त इव क्रमम् ॥ वा० ३ ८ २६॥
प्राप्तक्रमा विशेषेषु क्रिया सैवाभिधीयते।
क्रमरूपस्य सहारे तत्सत्वमिति कथ्यते ॥ वा० ३ १ ३५॥

तो फिर, 'यत्रोभेभावप्रधाने' की बात का उत्तर क्या दिया जाय? भर्तृहरि का उत्तर है वहाँ भी 'भाव' और 'सत्व' का ही अन्तर है। यदि ऐसा न हो तो प्रत्ययगत भेद क्यो हो? भावप्रधान अवस्था में धातुपरक प्रत्यय एव सत्वप्रधान अवस्था में घञादि प्रत्यय का एक ही 'धातु' (मूल) मे होना इसी भेद की सूचना देता है।

साध्यत्वेन क्रिया यत्र धातुरूपनिबन्धना।
सत्वभावस्तु यस्तस्या स घञादिनिबन्धन ॥ वा० ३ ८ ४७॥

परन्तु, यह सब मान कर भी भर्तृहरि अन्तत उन दोनो भेदो को 'एकात्मा' ही मानता है। अन्तत उन दोनो में है भी तो साधन व सिद्धावस्था का भेद ही। सिद्धावस्था 'सत्ता' की सूचक हो जाती है, साधनावस्था भाव की सूचक होती है।

'आचार्यो मातुलश्चेति यथैको व्यपदिश्यते।
सबन्धिभेदादर्थात्मा स विधि पक्तिभावयो' ॥ वा० ३ ८ ६३

अर्थात, 'जिस प्रकार एक ही व्यक्ति आचार्य, मामा आदि विभिन्न रूपो में जाना व बुलाया जाता है, उसी प्रकार 'पक्ति' व 'पचति' के रूप में वही 'पाचन' रूपी एक ही अर्थात्मा विविध (नाम-आख्यात) रूप ग्रहण करता है।'

भाव—यहा 'भाव' के सम्बन्ध में भर्तृहरि की मौलिक दृष्टि को भी उल्लिखित कर देना अभीष्ट होगा। यास्क ने भाव के ६ भेद या अवस्थायें स्वीकार की हैं—

'जायतेऽस्ति विपरिणमते वर्द्धतेऽपक्षीयते विनश्यतीति (नि० १. २. ८)। 'भाव' का अर्थ यहाँ 'अवस्था' है मूड या मनोदशा नहीं। भर्तृहरि ने भी भाव की ६ भेदयोनियाँ गिनाई हैं।

अध्याहित कलां यस्य कालशक्तिमुपाश्रिताः।
जन्मादयो विकाराः षड् भावभेदस्य योनयः ॥ वा० १-३॥

परन्तु भावभेद की इन ६ योनियों को उन्होंने 'वैज्ञानिक' रूप में स्वीकार नहीं किया है। वे स्पष्टतः घोषित करते हैं: 'जन्म और नाश अथवा आविर्भाव और तिरोभाव जैसे शब्द केवल व्यावहारिक सुविधा के लिये कल्पित अवस्थायें हैं। उनका सम्बन्ध वास्तविकता से नहीं है। ये अवस्थायें एक दूसरे से भिन्न नहीं कही जा सकतीं।

'आविर्भाव तिरोभावौ जन्मनाशौ तथापरैः।
षट्सु भावविकारेषु कल्पितौ व्यावहारिकौ ॥ वा० ३. ८. २५॥

यही बात वे 'स्थिति' (अस्ति) के सम्बन्ध मे भी कहते है:

'जन्मैवाश्रित सारूप्यं स्थितिरित्यभिधीयते' ॥ वा० ३. ८. २६॥

वे जानते हैं कि 'जायमान' और 'जन्य' भिन्न रूपों में भिन्न होकर नहीं रह सकते। 'विनाश' किसका? वह वायु रूप बदल कर स्थिर ही रहती है। अतः चाहे छहों भाव-विकारों में से कोई सा हो, वह एक 'सत्ता' की ही भिन्न रूप मे की गई व्याख्या मात्र है:

'जायमानान्न जन्मान्यद्विनाशेऽप्यपदार्थता।
अतो भावविकारेषु सत्तैका व्यवतिष्ठते ॥ वा० ३. ८. २७॥

हमारी 'पहुँच' में जो कुछ आ जाता है, हम 'जायते' आदि के द्वारा उसी की व्याख्या-मात्र कर देते हैं।

क्रिया और आख्यात—यहां 'भाव' के अतिरिक्त 'क्रिया' और 'आख्यात' के विषय में भर्तृहरि के अन्य विवेचन पर भी एक दृष्टि डाल लेना अनुचित न होगा। 'भाव' का संकेत मूल अंश ही 'धातु' कहलाता है। पर, उसका न उस रूप मे प्रयोग होता है, न उस रूप में उसका अर्थ रहता है।

'धात्वादीनां विशुद्धानां लौकिकोऽर्थो न विद्यते' ॥ वा० २. २१२॥

आख्यात किसी भी तिङन्त धातु रूप को कह सकते हैं, किन्तु 'क्रिया' हर तिङन्त रूप को नहीं कह सकते। 'विदांकरोतु', 'एवांचकार', अथवा 'उसने प्रस्थान किया' में 'कृ'या 'करने' का प्रयोग 'क्रिया' नही कहला सकता। क्यों? इसका उत्तर भर्तृहरि देते हैं, क्योंकि उसका 'फल' कर्त्ता को नहीं मिलता। जिस का फल उसके होने के बाद प्राप्त हो, वही प्रधान रूपा 'क्रिया' कहलाती है।

'अनन्तरं फलं यस्माः कल्पते तां क्रियां विदुः।
प्रधानभूतां ताक्ष्यादन्यासां तु तदाख्यता ॥ वा० ३. ८. १५॥

यही बात वाक्य में प्रयुक्त विभिन्न तिङन्त रूपों (आख्यात रूपों) पर भी घटती है। 'आख्यात' उनमें से हर कोई है, किन्तु एक वाक्य मे 'फलोत्पादिनी 'क्रिया' एक ही हो सकती है। शेष को 'आख्यात' ही कहा जा सकता है। 'मृगः पश्यत यातीति' या 'मृगो

भेद बुद्धि से परे 'एक' ही 'आत्मा' के रूप में देखते ह । यह व्यवहार केवल व्यावहारिक मान्यता को लेकर है ।

स्वा जाति प्रथम सर्वे शब्दैरेवाभिधीयते ।। वा० ३ १ ६ ।।

तथा, 'न तदुत्पदघते किञ्चित् यस्य जातिर्न विद्यते ।
आत्माभिव्यक्तते जाति कारणाना प्रयोजिका' ।। वा० ३ १ २५ ।।

इन वाक्यो के द्वारा भर्तृहरि सब शब्दो की मूल अभिव्युषित वृत्ति की एकता को इगित कर रहे हैं । सब शब्दो का मूलगत ऐक्य इसी 'जाति रूपता' के कारण है । इसे वे और भी स्पष्ट शब्द में कहते हैं

'सम्बन्धितभेदात् सत्तैव भिद्यमाना गवादिषु ।
जातिरित्युच्ते तस्या सर्वे शब्दा व्यवस्थिता ।। वा० ३ १ ३३ ।।
'ता प्रतिपदिकार्थंच धातर्थं च प्रचक्षते ।
'सानित्या सा महानात्मा तामाहुस्त्वतलादय " ।। वा० ३ १ ३४ ।।

अर्थात् 'सत्ता एक है, 'जाति' उसी सत्ता की वाचक है । उसे प्रातिपदिक कहें, धातु कहें या भाववाचक सज्ञा आदि 'एक' को विविध आधारों पर भिन्न रूप में प्रकट करने के वे साधन मात्र है । भर्तृहरि की यही वुद्धि उन्हें सामा य वैयाकरणो से पृथक् सिद्ध करती है ।

बी० पी० मेरी

हिन्दी और मलयालम में प्रयुक्त समान शब्दावली

भारत के दक्षिण-पश्चिम में स्थित केरल की भाषा मलयालम नाम से प्रसिद्ध है। इसके उत्तर में कोंकणी और कन्नड़ एवं पूर्व तथा दक्षिण मे तमिल भाषी क्षेत्र है। मलयालम द्रविड़ भाषा परिवार की एक मुख्य भाषा है और आजकल लगभग १५ लाख भारतीय मलयालम-भाषी हैं। अरब समुद्र के लाक्ष द्वीपों में भी यही भाषा व्यवहृत होती है। अब तक के पुष्ट प्रमाणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि ईसा की नवीं शताब्दी में ही मलयालम ने मूल-द्रविड़-भाषा से अपना पृथक अस्तित्व धारण कर लिया था।[१] तब से मलयालम ने अपने शब्द-भंडार को अनेक स्रोतों से संपन्न किया है। उन स्रोतों को हम भारतीय और अभारतीय दो भागों मे विभाजित कर सकते है। भारतीय शब्दावली से आशय उस शब्द-भंडार से है जो भारत की आर्य और अनार्य भाषाओं से गृहीत है। अतएव इस भारतीय शब्द-समूह को भी आर्य और अनार्य भागों में विभक्त किया जा सकता है। इस प्रकार के शब्द प्रधानत: संस्कृत और तमिल के हैं। अभारतीय शब्दावली से तात्पर्य उस शब्द-समूह से है जो विदेशियों के संपर्क से मलयालम में गृहीत हुआ है। इन विदेशी शब्दों को ग्रहण करने की परिस्थितियाँ व्यापारिक, धार्मिक और राजनैतिक थीं। ये विदेशी शब्द मुख्य रूप से अरबी, फारसी, पुर्तगाली, डच, अँग्रेजी, फ्रेंच आदि के हैं। इस वर्गीकरण को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जाता है।

१. Dr. A. C. Sekhar, Evolution of Malayalan, 1963. पृ० 3 "An examination of all the available west coast inscriptions revealed that it is only from the 9th century of the Christian era that speech forms which could be described as Malayalam Christian (as distinguished from the inscriptional prose of the adjoining Tamil Country) begin to appear in the inscriptions".

- मलयालम शब्द-समूह
  - भारतीय
    - अनार्य
    - आर्य
  - अभारतीय
    - अरबी
    - फारसी
    - अंग्रेजी
    - फ्रेंच
    - पुर्तगाली
    - डच
    - अन्य

अनार्य शब्दावली

मूल द्रविड से निकलने के कारण मलयालम में बहुत से द्रविड शब्दों का स्वरूप ग्रहण करना स्वत सिद्ध है। फिर जब मलयालम अपने स्वतंत्र रूप में विकसित होने लगी तब मूल द्रविड से आये हुए ये शब्द मलयालम के स्वाभाविक प्रवाह में स्वरूप पाने लगे। उदाहरणार्थ, शब्द के मध्य और अंत का 'ऐ', 'अ' में परिवर्तित होने लगा।[२]

२ Dr A Chandra Sekhar—The Malayalam language, Transactions of the linguistic circle of Delhi, 1959-60, पृ० ५३ "The 14th cent Malayalam grammar Lilathilakam expressly states (III 1 comm) that 'ai' does not occur in final positions and that forms like ánai (elephant) are Pandya Bhasha (Tamil) Early old Malayalam Inscriptions show that forms with final 'ai were the rule until 12th c and that it was only from the 12th cent that final 'ai' begin to be replaced by 'a' in writing"

पृ० 54 "The reduction of the diphthong 'ai' to 'a' is one of the most important features of the evolution of Malayalam phonology The change started in the medial position and later by the middle of the 12th c spread to final position"

यथा—

तमिल—		मलयालम—	
मलै	>	मल	(पहाड़)
वरै	>	वर	(लकीर)
परिशै	>	परिश	(ढाल)
पुरैयिटम्	>	पुरयिटम्	(घर का अहाता)
वेट्टिलै	>	वेट्टिल	(वेटिल या पान)
आनै	>	आन	(हाथी)

आर्य शब्दावली

जब नवीं शताब्दी मे मलयालम ने मूल द्रविड़ से आधुनिक रूप ग्रहण किया, उससे पहले ही मूल द्रविड़ भाषा संस्कृत से प्रभावित हो चुकी थी और उसने बहुत से संस्कृत शब्दों को आत्मसात् कर लिया था। पर द्रविड़ भाषा की अपनी विशेष ध्वनि-प्रक्रिया के कारण सस्कृत शब्द अपने विशुद्ध रूप में गृहीत नहीं हुए[३]। द्रविड़ मे महाप्राण और सघोष ध्वनियों का अभाव होने के कारण उन संस्कृत ध्वनियों के स्थान पर अल्प-प्राण अघोष ध्वनियों का प्रचलन हुआ। जैसे,

संस्कृत—	द्रविड़—
खड्गम्	कट्कम्
दानम्	तानम्
भूमि	पूमि
फलाहारम्	पलकारम्

जब मलयालम अलग हुई तो मूल द्रविड़ शब्दों के साथ ही बहुत से ऐसे द्रविड़ में गृहीत संस्कृत तद्भव शब्द भी मलयालम में आ गये। बाद में तो मलयालम में संस्कृत शब्दों का आगमन निर्बाध गति से होने लगा।

मलयालम साहित्य का विहंगम अवलोकन करने से पता लगता है कि ज्योंही मलयालम स्वतन्त्र रूप धारण करने लगी त्योंही वह संस्कृत से अति प्रभावित होने लगी। अथवा यों भी कह सकते हैं कि संस्कृत के अधिकाधिक प्रभाव ने ही मलयालम को मूल द्रविड़ से शीघ्र से शीघ्र अलग कर दिया। भाषा वैज्ञानिकों ने मलयालम साहित्य के पूर्व काल को तमिल प्रभाव काल और संस्कृत-प्रभाव-काल मे विभक्त किया है।[४]

३. Bloomfield—Language, पृ० 446.
"In phonetic Substitution the speakers replace the foreingn sounds by the phonemes of their language[1]".

४. L. V. Rama Swami Iyer—Evolution of Malayalam Morphology (Ernakulam, 1936, पृ० 1,2.

ईस्वी सन् ८०० से १२०० तक के तमिल प्रभाव काल की रचनाओं में भी संस्कृत शब्दों का व्यवहार होता था। भद्रकालिप्पाट्टु, शास्तानपाट्ट, आट्टप्पाट्टु, कृपिप्पाट्टु आदि गंभीर साहित्यिक गुणों से वंचित रचनाएँ यद्यपि तमिल की पाट्टुशैली में थीं, फिर भी उनमें संस्कृत शब्द ग्रहण किये जाते थे। जैसे, वरिषम् (<सं० वर्षम्), कालम्, दुरियोधनन् (<सं० दुर्योधन), प्रमिच्चु (सं० मूल भ्रम से) आदि। साथ ही चाक्यार् कूत्तु, कूटियाट्टम, चात्तिरक्कलि आदि अभिनयगीतों में संस्कृत भाषा के चंपू प्रबंध काव्यों के साथ मलयालम की कविताओं का पाठ करते थे जिससे एक नवीन शैली का विकास हुआ जो मणिप्रवालम् नाम से प्रसिद्ध हुई। मणिप्रवालम् का तात्पर्य संस्कृत रूपी मणि और मलयालम रूपी प्रवाल के समन्वय से खचित नवीन शैली से है।

बारहवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक के मणिप्रवाल और चंपू कालों में मलयालम, तमिल-प्रभाव से मुक्त होने लगी और संस्कृत से पोषण मिलने लगा। चौदहवीं शताब्दी के 'रामचरितम्' में 'तनय,' 'अक्करम्' (<सं० अक्षरम्) 'तपम्' (<सं० स्तंभम्), 'तेन' (<सं० सेना) 'अरत्तम्' (<सं० रक्तम्) आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। कृष्णानाट्टम्, अष्टपदियाट्टम् आदि में भी तमिल का कम और संस्कृत का बढ़ता प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'उण्णिनीलिसंदेशम्', 'चक्रवाकसंदेशम्', 'चन्द्रोत्सवम्' आदि मणिप्रवालम रचनाएँ तथा 'रामायणम् चंपू,' आदि काव्य सोलहवीं सदी तक मलयालम पर संस्कृत के प्रभाव की प्रत्यक्ष साक्षी हैं।

मणिप्रवालम और चंपू काव्यों के अध्ययन से पता चलता है कि संस्कृत से लिए हुए तत्सम शब्दों की मात्रा मलयालम शब्दावली में उत्तरोत्तर बढ़ती रही। इतना ही नहीं, जो संस्कृत तद्भव शब्द मूल द्रविड से होकर आए थे, वे संस्कृत से शुद्ध रूप की ओर झुकने लगे। संस्कृत का निकट संपर्क होने के कारण, वे तद्भव शब्द तत्सम रूप में या मलयालम की ध्वनि-प्रक्रिया के अनुरूप प्रयुक्त होने लगे, न कि मूल द्रविड के प्रचलित रूप में। जैसे,

संस्कृत—	मूल द्रविड—	मलयालम्—
राजन्	अरशन्	राजनु। राजाव्
स्तंभम्	तपम्	स्तंभम्
सेना	तेन	सेन
गुरु	कुरु	गुरु
देवि	तेवी	देवि

यह वृत्ति संस्कृत के उत्तरोत्तर बढ़ते प्रभाव का सच्चा प्रमाण है। संस्कृत का प्रभाव सीधे पड़ने का एक मुख्य कारण मलयालम में आविर्भूत हुई नई ग्रंथ-लिपि है। बारहवीं शताब्दी से ही यह आर्य-लिपि संस्कृत से आए हुए शब्दों को लिखने के लिए प्रयुक्त होती थी। धीरे-धीरे उसने पुरानी वट्टेलुत्तु लिपि की जगह ले ली और सोलहवीं

शताब्दी तक उसका बहुत प्रचार हुआ[५]। नई ग्रंथ-लिपि में संस्कृत वर्णमाला के सभी अक्षर प्रस्तुत होने के कारण, संस्कृत शब्दों का तत्सम रूप में ही प्रयोग बहुत सरल हो गया।

सोलहवी-सत्रहवीं शताब्दियों को मलयालम का स्वर्णकाल माना जाता है। कविवर तुंचत्तेपुच्चन्, कुंचन् नंपियार आदि के सुदृढ़ हाथों में भाषा परिष्कृत और परिमार्जित हो गयी। संस्कृत और मलयालम् के सुंदर सामंजस्य से भाषा का रूप निखर उठा। एषुत्तच्चन के किळिप्पाट्टु छन्दों की श्री वृद्धि संस्कृत शब्दों ने की है। कथकलिप्पाट्टु के सर्जन कर्त्ता कोट्टयम केरल वर्मा, कार्तिक तिरूनाल् उण्णयिवारियर आदि की रचनाएँ भी संस्कृत-शब्द-बहुल हैं। यद्यपि कुंचन नंपियार कट्टु संस्कृत की अपेक्षा सरल मलयालम भाषा का प्रयोग करने के पक्ष मे थे, फिर भी उन्होंने ऐसे संस्कृत शब्दों को लेने का कभी विरोध नही किया जो भाषा मे घुल मिल जाते थे और जिनका अर्थ जनसाधारण को सुग्राह्य होता था। उनके तुल्लल् पाट्टु छंदों में संस्कृत की मणियाँ यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरी हुई मिलती है। अठारवीं शताब्दी की आट्टक्कथाओं मे संस्कृत का रंग खूब जम गया है।

आधुनिक काल में भी आवश्यकता पड़ने पर मलयालम निस्सकोच रूप में संस्कृत के शब्द भंडार से शब्द ग्रहण करती रहतीहै[६]। डा० काल्डवेल ने कहा है कि संस्कृत शब्दों की अधिकता मलयालम की मुख्य विशेषता है और मलयालम के भाषा शास्त्री श्री पी० गोविंद पिल्ले का मत है कि द्रविड़ भाषाएँ मलयालम, कन्नड़ और तेलुगु का वर्तमान[७] हाल ऐसा है कि उनको सस्कृत के बिना रहना असंभव है।

---

५. Dr. A. Chandra Sekhar—The Malayalam language, Transactions of the linguistic circle of Delhi. Dr. Siddheswara Varma commo valume. पृ० 50.

"The Grantha Script is an adaptation of the Tamil Script employed in the Tamil area for writing Sanskrit. Malayalam used Grantha symbols for representing Indo-Aryan Sounds accurately even during the Early old Malayalam period (till the 12th or 13th cent.) when the prevalent script for the language was Vaṭṭeluttu............The Malayalam script started evolving out of the Grantha script in about the 14th century and began to be widely used by the 16th century."

६. Dr. Cald well—A Comparative study of the Dravidian Languages.

"One of the most marked characteristics of the Malayalam language as we now find it is the quantity of Sanskrit it contains. The proportion of the Sanskrit words adopted by the Dravidian Languages is least in Tamil and greatest in Malayam."

७. श्री पी० गोविंदपिल्ले—मलयालम भाषा चरित्रम्, १९५६, पृ० ३९

विदेशी शब्द—अरबी और फारसी

यद्यपि मलयालम अपने जन्म से अब तक संस्कृत की छत्रछाया में पोषित रही है फिर भी वह समय समय पर अन्य कई भाषाओं से भी प्रभावित रही है। ईसवी सन से पहले ही मिस्री यूनानी आदि विदेशी लोग व्यापारार्थ केरल में आया करते थे। पर भाषा की दृष्टि से उनका संपर्क उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा। पर ईसवी सन की पहली शताब्दी में ईसाई मत धाम्स और उनके अनुयायी धर्म-प्रचारार्थ अरब समुद्र के किनारे आये थे और उनके संपर्क से हिब्रू और सिरियन के कुछ धार्मिक शब्द केरल की भाषा में प्रचलित हुए८।

नवीं शताब्दी के आरंभ से व्यापारी मुसलमानों का भी आगमन केरल में होने लगा। उनके संपर्क से बहुत से अरबी-फारसी शब्द मलयालम में घुलमिल गये। जैसे, दल्लाल, रसीद, बाकी, इनाम, कत्तु (हि० खत) करार, नकराक बदल, मसाला, रात्तल, अलुवा (हि० हलवा) आदि। अब तो मलयालम में सैकड़ों फारसी शब्द प्रचलित हैं जो कि बाद में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं से होकर मलयालम में आए हैं। जैसे, हाजर बन्दोबस्त, हुजूर, मुन्ना बाग, पैजामा, परदा, लुंगी, वकील अर्जी आदि।

विदेशी शब्द—यूरोपीय

सन १४९८ ई० में सब से पहले पुर्तगाली लोग केरल में आये। उनके बाद डच, अंग्रेज और फ्रेंच भी व्यापारार्थ यहाँ आ पहुँचे। यद्यपि इन सब यूरोपीयों का पहला उद्देश्य व्यापार द्वारा धन कमाने का था, पर धीरे धीरे उनका ध्यान धार्मिक, शिक्षा-संबंधी और राजनैतिक क्षेत्रों में फैल गया। पुर्तगाली और डच लोग लगभग दो सौ वर्ष तक यहाँ रहे और उस काल में बहुत पुर्तगाली और डच शब्द मलयालम ने ग्रहण कर लिए। अच्चारम (हि० अचार) अलमारी, आया, (dry nurse), पादरी मेश (हि० मेज) जनल (हि० खिड़की) आदि पुर्तगाली शब्द और करलो, तुप्प आदि डच शब्द मलयालम की अपनी संपत्ति हो गये हैं। फ्रेंच का अधिक प्रभाव कभी नहीं पड़ा फिर भी उसने कुछ शब्द मलयालम भाषा को भेंट स्वरूप दिए हैं। सलूण, सेंट आदि तो मलयालम में बहुत साधारण शब्द हो गये हैं। अंग्रेजी का प्रभाव तो भारत की सभी भाषाओं पर पड़ा और सैकड़ों अंग्रेजी शब्द हर भाषा में मिल गये। स्कूल, पास, टिकट, बस, फीस, नोटिस, आदि-आदि शब्द अब वे अपना विदेशीपन छोड़ चुके हैं। अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान आदि क्षेत्रों में आजकल अंग्रेजी शब्दों की ही अधिकता है।

इन सब के सिवा, आधुनिक काल में, अन्य भारतीय भाषाओं से भी लेनदेन की प्रवृत्ति रही है और उनके भी कुछ शब्द मलयालम में मिल सकते हैं। इस प्रकार देखा जाय तो मलयालम के मूल रूप में द्रविड़ शब्द, मुख्य रूप में संस्कृत शब्द और आंशिक रूप में अन्य भाषाओं के शब्द भी पाये जाते हैं। अन्य भाषाओं के शब्दों में अधिकतर अंग्रेजी और फारसी के हैं।

---

८ श्री आर० नारायण पणिक्कर—केरल भाषा साहित्य चरित्रम्, भाग १, पृष्ठ ४३

जितनी भी भाषाओं का मलयालम पर प्रभाव पड़ा है उन सब से मलयालम ने शब्द ग्रहण किए हैं और इन सब भाषाओं से हिंदी भी प्रभावित रही है। प्रभाव की मात्रा, शब्द ग्रहण की रीति आदि में भले ही अन्तर हो फिर भी भिन्न-भिन्न भाषाओं से गृहीत बहुत से शब्द दोनों में समानरूप में पाये जाते हैं। मलयालम में मूल द्रविड़ के बहुत से शब्द प्रचलित हैं जब कि हिंदी ने तमिल या मलयालम से बहुत कम ही शब्द लिए हैं। उदाहरण, के लिए,—

मलयालम—	हिंदी—
वेट्टिल	वेटिल
चुरुट्ट	सुरुट
कोप्र/कोप्पर	खोपरा
चिल्लर	चिल्लर
पत्तलू	पंडाल

संस्कृत शब्द प्रधानतः हिंदी को रिक्थ रूप में—प्राकृत, पाली और अपभ्रंश से—प्राप्त हुए हैं। ऐसे आए हुए तद्भव और संस्कृत से सीधे ग्रहण किए हुए तत्सम शब्दों ने मिलकर हिंदी शब्दावली का ठोस आधार खड़ा किया है। १२वी शताब्दी से जब मुसलमानों का आक्रमण होने लगा तब से हिंदी पर अरबी-फारसी का भी प्रभाव पड़ा और मुगल काल में तो हिंदी, फारसी शब्दो के भार से बोझिल हो गई। हज़ारों फ़ारसी शब्द हिंदी मे मिल गये। खुश, खेती, लड़ाई, आदमी, दिल, दवा, किताब, दरवाजा, जमीन आदि-आदि अनेक शब्द अब हिंदी में पूर्ण रूप से मिल गये हैं और उन्हें कोई भी विदेशी कहकर विरोध नही करता। अँग्रेजी के भी हजारो शब्द हिंदी मे घुल मिल गये हैं। इस प्रकार देखा जाय तो हिंदी और मलयालम की शब्दावली मे बहुत से समान शब्द मिलेगे।

परन्तु इन समान सभी शब्दों को दोनों भाषाओ मे एक समान प्रयुक्त नही किया जाता। इनकी ध्वनि-प्रक्रिया, रूप-रचना, व्यवहार तथा अर्थ मे अंतर होना स्वाभाविक है। इस समान शब्दावली का अध्ययन दोनों भाषाओं की समृद्धि सांस्कृतिक एकता के लिए अत्यंत आवश्यक है। उद्गम की दृष्टि से हिंदी और मलयालम के बीच मे काफी अंतर होने पर भी उनमे समान तत्त्वो का पता लग जाने से दोनों इतनी भिन्न दिखाई नही देंगी जैसा कि पहली दृष्टि मे मालूम पड़ती हैं। आज की परिस्थिति में ऐसे अध्ययन का विशेष महत्व है। हिंदी भाषियों के लिए मलयालम भाषा का द्वार खुलेगा और केरल वासियों को हिंदी का अध्ययन और भी सुगम और सरल हो जायगा।

मुनि कान्तिसागर

हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का विवरण—आवश्यक परिमार्जन

अज्ञात के प्रति उत्कंठा मानव सभ्यता और संस्कृति की प्रेरक रही है। अज्ञात से ज्ञात की ओर रमण करने वाली अन्वेषण प्रवृत्ति ने अद्यतन विकसित युग को जन्म दिया है। अनुशीलन का क्षेत्र अपनी व्यापकता और सूक्ष्मता के साथ मानव मस्तिष्क को सदा चुनौती देता रहा है। परिणाम स्वरूप एक अन्वेषक की उपलब्धि भविष्य में कुछ और मांग कर बैठती है। भावी शोधक उसी की पूर्त्ति में रत हो जाता है। फलतः अज्ञात के रहस्य प्रकट होते रहते हैं। अन्वेषक उन्हें जानकर एक अनुपम तृप्ति का अनुभव करता है।

अन्वेषक भावी शोधार्थियों को दिशाबोध ही नही देता अपितु अनुसंधान की अज्ञात रहस्यमयी वीथिकाओं को भी प्रकाशित करता है। अतएव मूल अन्वेषक को अपने शोध विषयक निष्कर्षों के निर्माण में नितान्त सतर्क, स्पष्ट एवं सत्यनिष्ठ रहना पड़ता है, अन्यथा आगन्तुक शोधार्थी अन्वेषक के संदिग्ध मार्ग में पड़कर भ्रमित हो जायगा।

हिन्दी अनुशीलन का इतिहास लगभग एक शती से आगे नहीं जाता। इस बीच हिन्दी भाषा और साहित्य विषयक जो भी मूल्यवान् तथ्य प्रकट हुए हैं। उनका संशोधन परिमार्जन नव प्राप्त साधन-सामग्री के आलोक में आवश्यक हो गया है क्योंकि नव्य गवेषक अतीत के स्वर्णिम आलोक में ही वर्तमान का सुदृढ़ निर्माण करता है। हिन्दी भाषा और साहित्य के गवेषणा-क्षेत्र में ऐसे प्रबंध प्रयासों की कमी नहीं हैं कि जिनमें परवर्त्ती शोधार्थी ने पूर्ववर्त्ती अन्वेषक के भ्रम को परिपुष्ट न किया हो। आज का युग अनुसंधान की दृष्टि से पर्याप्त प्रगतिशील रहा है और नित्य नूतन शोधमूलक साधन समुपस्थित होते रहते हैं। अब जिनके पास प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों का बाहुल्य है वे भी इनकी ऐतिहासिक उपादेयता समझने लगे हैं। एक समय था जब संकीर्णता के कारण या किसी अज्ञात भय के कारण ग्रंथों के दर्शन दुर्लभ थे वहाँ आज अनुशीलन को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में ये शुभ लक्षण हैं।

गत कुछ वर्षों से मुझे राजस्थान शासन की कृपा से उदयपुर में रहने का अवसर मिला इन दिनों मैंने अपने हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह को विशिष्ट दृष्टि से टटोला और जो भी अज्ञात

अर्थात् हिन्दी भाषा और साहित्य के अद्यावधि प्रकाशित इतिहासों में अनुल्लिखित कृतियाँ थीं उनके आदि और अन्तिम भागों के टिप्पण तैयार किये परिणाम स्वरूप एक महाकाय ग्रंथ ही—"राजस्थान का अज्ञात साहित्य"—तैयार हो गया। इस में लगभग २५० से ऊपर रचयिताओं की ३५० ऐसी कृतियाँ समाविष्ट हो गईं जिनका विवरण कहीं पर भी आज तक प्रकाशित तो क्या उल्लिखित ही नहीं था। इस अवसर पर मुझे प्राप्त हिन्दी के शोध विवरणों को तथा अन्य एतद्विषयक साधन सामग्री का सूक्ष्म प्रकार से अवलोकन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने अनुभव किया कि शोधक या अन्वेषक के स्वल्प प्रमाद, सामग्री विषयक समुचित मूल्यांकन के अज्ञान एवं अपेक्षित सतर्क शोध मस्तिष्क के अभाव में उनमें कतिपय ऐसी भ्रान्तियाँ घर कर गई हैं जो शोध के क्षेत्र में शोभनीय नहीं। आश्चर्य तो इस बात का रहा कि वर्षों तक भ्रम की परम्परा अविराम गति से चलती रही। मिश्रबन्धु विनोद ही क्यों कई परवर्ती इतिहासकार भी भूलों से प्रभावित होते गये। क्यों कि हमारे यहाँ बहुत कम सशोधक ऐसे हैं जो अपनी गवेषणा में आनेवाले मूल ग्रंथों को देखने का कष्ट करते हैं। अन्वेषक, जिनके समक्ष मूल रचनाएँ विद्यमान रहती हैं भी जब तथ्य संकलन में कहीं-कहीं असफल प्रमाणित हुए हैं तो अन्य विद्वानों की तो बात ही क्या कही जाय? अब परिमार्जन आवश्यक हो गया। संभव है भविष्य में नव्य साहित्यिक सामग्री समुपलब्ध होने पर इन पंक्तियों के लेखक के निष्कर्षों का परिमार्जन भी आवश्यक समझा जाय। शोध के क्षेत्र में ऐसे प्रयत्न सदैव अभिनन्दनीय ही होते हैं। क्यों कि अनुसंधान की प्रवृत्ति ही ऐसी है कि सामान्य तत्व या किसी वस्तु विशेष के साथ विशिष्ट संबंध निकल आने पर दीर्घकालिक साधनागत निर्मित विशेषणों के निष्कर्ष बदल जाते हैं। साथ ही साधारण उल्लेख कभी कभी बहुत बड़ी ऐतिहासिक उलझन सरलता से सुलझा देता है। उदाहरणार्थ राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान की ओर से अभी अभी महाकवि उदयराज द्वारा प्रणीत " "राजविनोद महाकाव्यम्" " प्रकाशित हुआ है जो गुजरात के महमूद बेगडा के इतिहास पर अच्छा प्रकाश डालता है। इसके पृष्ठ ३८ पर दाहोदवाला शिलालेख उद्धृत है। इसकी विवेचना करते हुए डा० हँसमुखलाल धीरजलाल सांकलिया ने शिलालेख के अंतर्गत 'अहम्मदपुर" गुजरात का पाटनगर अहम्मदाबाद मानने की संभावना प्रकट की थी, परन्तु एक हिन्दी की रचना " "जसवत चतुर्मास' " (रचना काल सं० १६६१) जो एक धार्मिक रचना है, से अहम्मदपुर की गुत्थी सुलझ गई और प्रमाणित हो गया कि उसकी स्थिति खंभात और बड़ोदा के मध्यवर्ती भूभाग में है।

भारतीय संस्कृति और इतिहास के मुख को उज्ज्वल करने वाले हस्तलिखित ग्रंथों की उपेक्षित अवस्था देख कर लाहौर के पं० राधाकृष्ण ने सं० १८६८ में भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया और ग्रंथान्वेषण विषयक प्रस्ताव स्वीकार करवाया। परिणाम स्वरूप डा० कीलहार्न, भांडारकर, बूलर, वेबर, पीटर्सन, बर्नेल, राजेंद्रलाल मित्र, हरप्रसाद शास्त्री आदि अनेक गवेषकों के श्रम से एतद्विषयक खोज वृतान्त प्रकट हुए, बहुत सी मौलिक हस्तलिखित ग्रंथ सामग्री प्रकाश में आई। ऐसे ही प्रयत्नों के आधार पर डा० आफ्रेक्ट ने अपनी शोध प्रदर्शक कृति "कैटलागस कैटलगोरम" प्रस्तुत की, यद्यपि

आज उसमें परिवर्द्धन की पर्याप्त आवश्यकता प्रतीत होती है* तथापि इससे सुप्रयास की मुक्त कंठ से सराहना ही करनी पड़ेगी। सूचित कार्य संस्कृत भाषा में गुम्फित रचनाओं तक ही सीमित था।

नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना के साथ ही हिन्दी के अरक्षित-उपेक्षित हस्तलिखित ग्रंथो की उपादेयता पर ध्यान गया और तात्कालिक उत्तर प्रदेशीय शासन से इनकी रक्षा के लिए निवेदन किया गया, परिणाम अनुकूल रहा और शासन ने आर्थिक सहायता भी प्रदान की। सन् १८९९ मे जो महत्वपूर्ण शोध विषयक कार्य प्रारंभ हुआ वह आज तक समुचित रीति से संपादन हो रहा है। पर आज प्रारंभ के वृतान्त प्राप्त नहीं है। आठ खोज रिपोर्टों के आधार पर संक्षिप्त विवरण सभा ने १९८० मे प्रकाशित कर इस अभाव की आंशिक पूर्ति की है। यह भी आज परिमार्जन की अपेक्षा रखता है। इस प्रकाशन में गवेषणा पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। यह कार्य उन दिनो संपन्न हुआ जिन दिनों हस्तलिखित ग्रंथो के स्वामी अपनी यह निधि देना तो रहा दूर दर्शन तक की आज्ञा देना अनुचित समझते थे। पर सभा के उत्साही और लगनशील कार्यकर्ताओं ने जिस धैर्य का परिचय दिया है यह आज भी अनुकरणीय है। मिश्रबंधु विनोद इन्ही खोज वृतान्तों की परिणति है। हिन्दी भाषा और इतिहास की सर्वाधिक जानकारी खोज वृतान्त एवं इन से ही मिलती है। ज्ञान विषयक तात्कालिक सीमित सामग्री के आधार जो-जो अशुद्धियाँ रह गई उन्हे विनोदकार ने दुहराया और बाद के खोज वृतान्त भी इन से अछूते न रहे। इन स्खलनों का एक कारण यह भी जान पड़ता है मूल ग्रंथ देखने का कष्ट बहुत कम व्यक्ति उठा पाते है और कही अन्वेषक ने प्रमाद वश कोई असत्य उल्लेख कर दिया तो वह ब्रह्मवाक्य हो जाता है। आगे की पंक्तियों से इस तथ्य का आभास मिल जायगा। कहीं-कही तो अन्वेषकों ने मूल तथ्यों की उपेक्षा कर डाली है और कही-कही जो तथ्य नहीं थे उनकी उद्भावना निराधार कल्पना द्वारा कर डाली है। और निरीक्षकों ने इन्ही भूलों को अपनी प्रस्तावनाओं में दुहराया है।

हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों के १३, १४, १५, १६, १८, विवरण ही मेरे देखने में आये हैं, शेष विवरणों को नही देख सका हूँ। अत. मै यहाँ १३वे विवरण को छोड़ कर शेष पर ही अपने विचार प्रस्तुत करूँगा। यहाँ यह बताने की शायद ही आवश्यकता रह जाती है कि आचार्यत्व के लिये लिखे जाने वाले महा निबंधों के ये विवरण ही मूलाधार होते हैं, हिन्दी भाषा और इतिहास के अद्यतन युगीन सभी लेखक इन से अनुप्राणित हुए हैं, और जिन कृतियों का विवरण तथा कवियो के परिचय इन विवरणों में संकलित हैं उन की रचनाएँ भविष्य में भी मिलने की पूर्ण संभावना है अतः जो भी अशुद्धियाँ हैं उनका परिमार्जन इस लिये अपेक्षित है कि भविष्य मे इन भूलो को दुहराने का अवसर न आए।

विवरण १४, १५ और १६ के निरीक्षक थे स्वर्गीय डा० पीताम्बर दत्तजी बडथ्वाल और १८ वें के हैं हिन्दी के मान्य विद्वान् श्री विश्वनाथप्रसादजी मिश्र। दोनों ने अपनी पांडित्यपूर्ण सूक्ष्म दृष्टि से अपना काम संपादित करने मे जो दाक्षिण्य प्रदर्शित किया है

* इस कैटलाग का किंचित्परिवर्द्धन के साथ पुनर्मुद्रण हो गया है। सं०

वह सदैव अभिनन्दनीय रहेगा। इनके रक्तशोषक श्रम के परिणाम स्वरूप जो प्रकाश साहित्यिक जगत को प्राप्त हुआ कुछ अशो मे अभूतपूर्व है।

सभा के हस्तलिखित खोज विभाग के विद्वान् निरीक्षक और परिश्रमी अन्वेषक यद्यपि पूरी सावधानी के साथ अपना कार्य सपादन करते है और भविष्य मे करेंगे तथापि कुछ बातो की ओर पुन ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक जान पडता है।

१ पहली बात तो यह है कि विवरण लेनेवालो का यह प्राथमिक कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे कृति एव कृतिकार के सबध मे जो भी आवश्यक और प्रमाणभूत सामग्री देना चाहें, यथासभव कवि के ही शब्दो मे-देनी चाहिए, मान लीजिये किसी कवि ने आत्मवृत्त रचना में नही दिया है तो उनकी रचना से परिचय दे देना चाहिए। विवरणो में भारमल्लादि कई कवियो के बारे में अनभिज्ञता प्रकट की गई है जब कि कई रचनाओ में रचना काल दिया गया है।

२ हस्तलिखित ग्रथो का विवरण लेना और कृतिकार का परिचय ठीक से देना सरल कार्य नहीं है। एतदर्थ पुरातन लिपि का गभीर ज्ञान अपेक्षित है। यदि पढने में तनिक भी भूल हो जाय तो भ्रान्ति फैलने की पूरी सभावना रहती है, उदाहरणार्थ १८वें विवरण में उदय (स० १५, पृष्ठ ४७) का परिचय देते हुए ऐसी भूल हो गई है कि रचना तो है मुनि महेश की और बता दी गई है उदय की। यहाँ उद्यम को विवरणकार ने उदय पढ लिया और महेश का महिमा समझ लिया गया। कहीं-कहीं कवि का पूरा विवरण कृति में मिलने के उपरान्त परिचय के लिये मौन रह जाना पडता है, परन्तु उसकी परम्परा पर ध्यान दिया जाय तो शिष्य प्रशिष्यादि की रचनाओ से समस्या सुलझ सकती है। विवरण लेने वालो को कम से कम कृति में अन्य ऐतिहासिक तथ्य हो तो उसे भी ले लेना चाहिए ताकि अन्य उपयोग किया जा सके। पद्रहवें विवरण की स० ७७ में निम्बार्क सप्रदाय की परम्परा पूरी नोट की गई होती तो बहुत अच्छा रहता, कारण कि वैष्णव सप्रदाय में यही एक ऐसा सप्रदाय है जिस पर समुचित प्रकाश अपेक्षित है।

३ अन्वेषक को कम से कम प्राचीन साहित्य का अच्छा नहीं तो सामान्य ज्ञान तो होना ही चाहिए ताकि विवरण लेते समय पाठ शुद्धि का खयाल रख सके। प्रकाशित सभी विवरणो मे से जिन प्रतियो का सग्रह मेरे पास या उनको विवरण मे मुद्रित पाठो के साथ मिलान करने पर स्पष्ट पता चला कि अन्वेषक को ग्रथ का कोई आभास नही मिला है यो ही प्रतिलिपि कर दी गई है। पदच्छेद जैसे कोई आवश्यक ही न हो क्यो कि यह मुद्रण का दोष नही है। अशुद्ध पाठो से तथ्य तक सरलता से नही पहुँचा जा सकता और व्यर्थ ही निराधार कल्पना करने को विवश होना पडता है। ग्रथ के ज्ञान से कभी-कभी कर्ता के नाम का भी पता नही चल पाता, उदाहरणार्थ चौदहवें विवरण की स० १७७ मे जिस गुरुप्रसाद का परिचय दिया है और पद्रहवें विवरण की स० २३३ मे जिस यादवराय का नामोल्लेख किया, ये दोनो सूचनाएँ कितनी हास्यास्पद है? जब कृतिकार ने अपना नाम स्पष्टत दिया है तथापि क्लिष्ट कल्पना कर सत्य को धूमिल किया गया है। यह तो मैं भी मानता हूँ कि ऐसा जानबूझ कर नही किया गया, पर सशोधक की स्वल्प स्खलना से साहित्यिक जगत मे कितनी बडी भ्रामक

परम्परा फैल जाती है। इसी के कारण ही कई सुविज्ञात और प्रणेता के नामवाली रचनाएँ भी अज्ञातकर्तृक कृतियों में सम्मिलित करनी पड़ी हैं। अठारहवाँ विवरण इन पंक्तियों का प्रमाण स्वतः उपस्थित कर रहा है। प्रसन्नता की बात है कि संपादक महोदय ने अज्ञात मानी जानेवाली कृतियों में आदि अन्त भाग तो दे दिये हैं, पर कतिपय विवरणों में केवल सूची मात्र दी है, जिससे पता ही नहीं चलता कि वे रचनाएँ किसकी हैं ?

४. जैन कवियों के विषय में कई प्रकार की भ्रान्तियाँ है जिसका दोष मैं अन्वेषक को नही दूंगा, कारण कि उनका इस साहित्य से सीमित संपर्क के कारण ही ऐसा हो जाना स्वाभाविक है। जैन गूर्जर कविओ (स्व० मोहनलाल दलीचंद देशाई कृत) भाग १, २, ३, जयपुर से जैन प्रशस्ति संग्रह, राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची चार भाग, विद्यापीठ, उदयपुर से प्रकाशित हस्तलिखित ग्रंथों का विवरण चार भाग, जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, जैन साहित्य परिशीलन, आदि कृतियों से सहायता ली जा सकती है। इनमें जैन कवियों की अधिकतर रचनाओं का उल्लेख मिल जाता है। अब तो कई नव्य शोध प्रबंधों में जैन रचनाओं का परिचय प्राप्त है। इन सब साधनों का उपयोग करने से संभव है संभावित भ्रान्तियाँ न फैले।

नागरी प्रचारिणी सभा और बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् की ओर से जो विवरण प्रकाशित हुए है, उनके प्रकाश में कभी-कभी कोई हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह देखता हूँ तो पता चलता है कि अभी आधा साहित्य भी प्रकाश में नहीं आया, अभी भी कई मूल्यवान् कृतियाँ ज्ञानागारों में पड़ी हैं जिनका उल्लेख कही-नहीं हुआ, ऐसी बहुत सी रचनाएँ उस प्रदेश में हैं जहाँ सभा द्वारा खोज कार्य हो चुका है।

सभा अपनी सीमित शक्ति और साधनों द्वारा तो खोज कार्य कर रही है पर उसके द्वारा नियुक्त अन्वेषक का सर्वत्र पहुँचना संभव नही, क्यों कि शताब्दियों से पोषित और विकसित साहित्य-धारा संपूर्ण देश में फैली हुई है और न जाने कहाँ कब मूल्यवान् और अज्ञात साहित्यिक हस्तलिखित कृतियाँ उपलब्ध हों अच्छा तो यह होगा प्रत्येक प्रान्तीय रुचिशील विद्वान् को खोज का कार्य सौंपा जाय जो अपनी जानकारी द्वारा प्राप्त नव्य साधन सामग्री से सभा को अवगत कराये, क्योंकि पैदल घूमकर इन पंक्तियों के लेखक ने अनुभव किया है आज भी राजस्थान आदि प्रान्तों में कई परिवार ऐसे हैं जिनके पास बहुमूल्य हस्तलिखित संग्रह विद्यमान हैं, पर अयोग्य संतान के कारण स्वल्प अर्थलाभ के पीछे या सीगडिये जलाने मे इन कृतियों का उपयोग होता है। कभी रद्दी के भाव में ये कृतियाँ बिक जाती हैं। मैंने स्वयं अपने संग्रह में ऐसी रचनाओं का पर्याप्त संग्रह किया है। इनमें यद्यपि कई ज्ञात ऐसी सामग्री है जिसका उल्लेख सभा के खोज विवरणों में हो चुका है पर फिर भी पाठ भेद और प्राचीन ज्ञात कृतियों का महत्व किसी भी दृष्टि से कम नही। उदाहरणार्थ खोज विवरण १३ में सं० ३०६ में मोहनदास कायस्थ के "पवनविजय स्वरोदय" का विवरण दिया है, पर मुझे श्री ब्रजमोहन जावलिया द्वारा जो गुटका प्राप्त हुआ है उसमें कवि का पूर्ण विवरण विस्तार के साथ समाविष्ट है, जब कि खोज विवरण में जिस प्रति के आधार से सार भाग प्रकट किया

है उसमे सूचित भाग नही है, अत ज्ञात होते हुए भी इस प्रति का महत्व है। दूसरा उदाहरण नागरीदास का लें जिनका विवरण खोज वृतात १४, स० २४१ मे है पर उनका वास्तविक परिचय समाविष्ट नही है, जितना है उसे भी समझने का प्रयास न करने के कारण भ्रान्ति हो गई है। इसी विवरण मे एक जैन कवि भुनक्लाल के साथ भी ऐसा ही हुआ है। दर्जनो उदाहरण और भी दिये जा सकते है।

अब समय आ गया है कि हिदी का प्राचीन साहित्य इतना प्रकाश मे आ गया है कि कभी कोई प्रति मिलती है तो आवश्यक साधन जहाँ अनुपलब्ध हैं, पता ही नही चल पाता कि वह ज्ञात है अज्ञात, अत आफ्रेक्ट के "कैटलागस कैटलगोरम्" के समान हिन्दी ग्रथों का एक विस्तृत सूचीपत्र प्रकाशित होना चाहिए।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, आगामी पक्तियो मे १४, १५, १६ और १८ मे विवरणो का परिमाजन प्रस्तुत किया जा रहा है—

१३ भारामल्ल—दशन कथा और मुक्तावली कथा (रचना काल स० १८३२) का विवरण दिया गया है। निवास स्थान का उल्लेख करते हुए सूचित किया है कि "ये फरुखाबाद के रहने वाले थे" "। पर इसका आधार अज्ञात है। कवि की एक और रचना "कमपच्चीसी" में ये अपने को इन शब्दो मे ग्वालियर राज्यान्तर्गत "स्योपुर" का बताते है—

प्रकृति पच्यासमे जाणि के करमपच्चीसी जान।
सूदर भारेमल्ल स्योपुर जान ॥

दर्शन कथा का सबध विवरणकार ने जैन तीर्थंकरो के दशन फल से स्थापित किया है जो समुचित नही है। दशन जैनो का पारिभाषिक शब्द है, तीथकरों के सिद्धान्तो के प्रति श्रद्धा से इसका तात्पय है। जैन सस्कृति मे दर्शन की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है, 'सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग"। दर्शन का सीधा अथ है यथार्थ दृष्टि, वस्तुतत्व को सत्य रूप मे स्वीकार करना ही दशन है, तदविपरीत मिथ्या है। दर्शन जैन दशन का मेरुदड है। "दशन कथा" मे कवि ने इसी का सूक्ष्म विवेचन किया है।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद द्वारा प्रकाशित "प्राचीन हस्तलिखित पोथियो का विवरण" मे इनकी "शील कथा" का विवरण दिया गया है, पर रचना काल स० १९५३ दिया है जो ठीक नही है।

कवि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं—

१ कमपच्चीसी, २ चारुदत्त चरित्र, (रचना काल स० १८१३) ३ सप्त व्यसन कथा, (रचना काल स० १८१४, इस मे कवि ने अपना विस्तृत परिचय दिया है, पर इन पक्तियो के लिखते समय प्रति उपस्थित नही है) ४ दान कथा, ५ शील कथा ६ निशि भोजन कथा स्फुट पद, विनतिया आदि।

४१ भाऊ कवि—इनके नाम पर "आदित्य कथा" का परिचय विवरण के पृष्ठ १५१ पर दिया है, पर पूरी ग्रथ प्रशस्ति मे कही भी प्रणेता के रूप मे भाऊ का नाम नही आया है, आता भी कैसे? यह तो रचना ही भाऊ की न होकर भानुकीर्ति की है जैसा कि

" " भानुकीर्त्ति मुनिवर यों कही" " वाक्य से प्रमाणित है। इस पर में "ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित पंद्रहवे विवरण" " के समालोचन में विस्तार से लिख चुका हूँ।

भाऊ ने भी "आदित्य कथा" लिखी अवश्य है जिस के आगे चल कर कई संस्करण हो गये हैं। विद्वत्परिचयार्थ भाऊ कृत कथा का भी विवरण यहाँ समुपस्थित किया जा रहा है—ताकि भविष्य में यह भ्रान्ति फिर न दुहराई जाय—

कथा दीतवार की, भाऊ कृत,

रिसह नाइ प्रणमु जिणंद जा प्रसन्न चित होय आनंद ।
पणमु अजित पणासे पाप दुष दालिद भव हरे संताप ।।१।।

अन्त भाग—

दीन हीन ये रच्यो पुरांण ऊछी बुधि में कीयो वषांण ।
दीन अधिक जो अक्षर होय बोहर समारो गुणीयर लोय ।। ५०।।
अग्रवाल कीयौ बपांन कुंअर जननि तिहुंनग्री थांन ।
गर्ग गोत मलुको पूत भाऊ कवि जन भगति संजुत ।।५१।।
करम क्यौ पूर्ण मति भई तव हम धर्म कथा ढई ।
मन पर भाव सुनो सब कोय सो नर सरग देवता होय ।।५२।।

।। इति रविवासर कथा संपूर्ण ।।

सं० १७६६ वर्षे अश्वीन मासे सुक्लपक्षे ४ तिथौ सोमवासरै ।। लिषतं आर्या धन्नाजी तस्य शिष्य आर्यौ हठीली । सही । सत्यं ।

इस कथा का आदि और अन्त भाग डा० कस्तूरचंदजी सा० कासलीवाल ने अपने "प्रशस्ति संग्रह" में प्रकाशित किया है, पर अंत में कर्ता के नाम भाऊ के स्थान पर "भयौ" शब्द का मुद्रण हो जाने से इसे अज्ञात कर्तृक रचना मान लिया गया है। संशोधन अपेक्षित है।

भाऊ का समय अज्ञात है, किन्तु इस कथा की सर्वाधिक प्राचीन प्रति सं० १७२० की मिल चुकी है अतः इतः पूर्व इनकी स्थिति तो सुनिश्चित ही है। इनकी माता का नाम कुंअर था और पिता का मलूक। अग्रवाल कुल गर्ग गोत्रीय थे।

६१ बुधजन दास—प्रस्तुत विवरण में इनका "देवानुराग शतक" का वृत दिया है। इतः पूर्व एक रचना "योगीन्द्रसार" उपलब्ध होने की सूचना है।

जैन समाज में बुधजनदास अपनी "सतसई" के कारण अति विख्यात रहे हैं। ये भावुक प्रकृति सज्जन थे। संयमशील होने के बावजूद कवि भी थे। इनकी रचनाओं से इनके और अस्तित्व समय पर स्वतः प्रकाश पड़ जाता है—

१ षटपाठ, (रचना काल सं० १८५०) २ छहढाला, ३ बुधजन सतसई (र० का० सं० १८७१) ३ बुधजन बिलास, तत्वार्थबोध (सं० १८८९) ६ पंचास्तिकाय, (र० का० १८९२) ७ योगसार (र० का० १८९५) ८ संबोध पंचाशिका, ९ मृत्यु महोत्सव,[1] १०

---

१. इसी नाम की एक कृति जयपुर के विद्वान् सदासुख जी की मेरे संग्रह में है जिसका रचना काल सं० १९१८ आषाढ़ शुक्ल ५ है। इस में पूर्वाचार्य कृत श्लोंका हिन्दी भाषा में विवेचन है। इसमें तात्कालिक गद्य का यह अच्छा निदर्शन है।

भक्तामर स्तोत्रोत्पत्ति कथा, ११ चर्चा शतक, ११ वर्द्धमान पुराण, १२ सबोध अक्षर बावनी, १३ सरस्वती कल्प, ।

७४ दामोदर—इस नाम के कई कवि हुए हैं। एक तो "यत्र चिंतामणि" के प्रणेता जो भट्ट वशीय थे। दूसरे "रस रत्नाकर के अनुवादक। मेरे सग्रह में दामोदर नामक कवि के ५० से अधिक स्फुट कवित्त हैं। नही कहा जा सकता कि यह दामोदर कौन से हैं।

९२ दीप कवि—इनकी कृति "अनुभव प्रकाश" का विवरण दिया गया है। रचनाकाल और कवि के अस्तित्व समय पर विवरणकार मौन हैं। इन पक्तियो के लेखक के सग्रह मे दीप कवि कृति " "गुणकरड गुणावली चौपाई" " की एक प्रति है जिसकी अन्त्य प्रशस्ति मे कवि ने अपने सबध से इस प्रकार प्रकाश डाला है—

सवत सतरै सतावन वरसै दस दरावारै दिवसै जी ।
सरस सबध कह्यो मन सरसै सुणिया भविजन हरसै जी ।।
गिरवो गच्छ गुजराती गाजै वसुधा पीठ विराजै जी ।
धरम गली जार्ण धनराज इसकी जस अवाज जी ।।
तस पाटै श्रीपूज्य चितामण दीपै जे हो दणीयर जी ।
आचरज उदवत पेमऋण दौलत ह्वै तस दरसण जी ।।
सापा ताम तणी तिहा सुदर, वड सापा जिम विस्तरी जी ।
मोटा गुण आगर बहू मुनिवर, थिर चित नागिन थिवर जी ।।
निरमल गुण भरीया बहू ॅयान, मुनिवर श्रीअवमान जी ।
शिप तेहना "दीप" सुज्ञानीजी धरै सदा गुण ध्यान जी ।।

\+ + + +

इति 'श्रीगुणकरड गुणावली चौपाई समाप्त, सवगाथा ६०३। मवत १७६६ विर्षे ज्येष्ठ वदि ११ एकादशी तिथौ बुधवासरे लि० पूज ऋपि श्री ५ नरसिहजी तत्शिप ऋ० श्री ५ मौहणजी तत्शिप ऋ० जगन्नाथ लि० ।।

इनकी धमाल आदि कई लघु कृतियाँ भी प्राप्त हैं।

१२३ जनगोपाल—इनकी रचना प्रह्लाद चरित्र का विवरण दिया गया है। मेरे सग्रह की प्रति मे कुछ पाठ विशेष है। ध्रुवचरित्र का भी विवरण पृष्ठ २८१ पर दिया है, पर मेरे सग्रह के सवत १७६२ के गुटके मे प्रतिलिपित ध्रुवचरित्र मे पर्याप्त पाठ भेद है। अत उसका आदि और अत भाग दिया जा रहा है—

आदि—

श्रीगणेशाय नम

ध्रुवचरित्र लिष्यते

गुर गोविद प्रणाम करीजै मन वच क्रम चरण चित्त दीजै ।
राम भक्ति को प्रारभ होई गुपत वात समझाऊ सोई ।।१।।

सत्त जुग त्रेता द्वापर गईयो पौंडो राज परीछत दीन्हों ।
कलि प्रवेश ग्रथ विवरि कन्हों ··· ··· ··· ॥२॥
राजा कहै जुद्ध करि भाई ऊभे पडग क्यों म्यान समाई ।
तिहां राजा पे डेरा मांग्यौ ··· ··· ··· ॥३॥

अन्त—

ध्रूचरित्र कोउ सुने मन बच कनल उरै ।
उदधि घोरी मिसी कीजियै ध्रूव महिमा न माय ॥
में अजान मति आपनी कलपि कही कछु बात ।
बकसौ सुत अपराध को जनगोपाल पितु मात ॥

इति श्री ध्रूवचरित्र समाप्तं

१३३ गुरुप्रसाद—इनका परिचय खोज विवरण में इस प्रकार दिया है इनका बनाया "कवि विनोद" नामक ग्रंथ (रचना काल सं० १७४५–१६८८ ई० और लिपि काल सं० १८२१) शोध में मिला है जो वैद्यक से संबंध रखता है। संभव है यह "रत्न सागर" के रचयिता से, भिन्न, जो सं० १७५५–१६६८ ई० के लगभग वर्तमान था, अभिन्न हो। इसी विषय का दूसरा ग्रंथ "वैद्यकसार संग्रह" "और और मिला है जो इन्हीं का रचा जान पड़ता है।"[1]

हस्तलिखित, ग्रंथ अन्वेषक का यह प्राथमिक नर्तक होना चाहिए कि वह ग्रंथ और ग्रंथकार के संबंध में जितनी भी महत्वपूर्ण और प्रमाणभूत सामग्री हो, रचयिताओं के शब्दों में ही समुपस्थित करनी चाहिए, ताकि उनके विषय में भविष्य में किसी भी प्रकार की भ्रान्तियाँ न फैले। यदि अपनी ओर से कुछ नई सूचनाएँ देनी हों तो सावधानी की आवश्यकता रहती है। कवि की अन्यान्य रचनाओं का उपयोग किया जा सकता है। क्यों कि अनुसंधान के क्षेत्र में अल्प प्रमाद भी क्षम्य नही। सामान्य भूल भविष्य में परम्परा का रूप ले सकती है, शोधार्थी भ्रमित हो सकते हैं। गुरुप्रसाद के विषय में ऐसा ही हुआ है। "कवि विनोद" का जो विवरण दिया है और ग्रंथकार के संबंध में जो लिखा है उसका सचाई से कोई संबंध नही है।

बात यह है कि "कवि विनोद" के भ्रष्ट विवरण मे पृष्ठ २८९ पर पाँचवाँ पद्य इस प्रकार दिया है—

गुरुप्रसाद भाषा करी समझि सकै सबु (सहु) कोइ ।

इसका अर्थ यह लगाया गया कि गुरुप्रसाद नामक व्यक्ति ने भाषा की, जिस से सब लोग सरलता से समझ सके। पर वहां अर्थ यह अपेक्षित था कि गुरु के प्रसाद-अनुग्रह-कृपा द्वारा इसकी भाषा की गई यानी भाषा में रचना की। रचयिता के नाम

---

१. १५ हवाँ खोज विवरण पृष्ठ ४७।

की सूचना तो अंतिम पुष्पिका से ही मिल जाती है जो इसी विवरण के पृष्ठ २८९ पर इस प्रकार उद्धृत है—

इति श्री खरतरगच्छीय वाचनाचार्यवर्यधुर्य श्री सुमतिमेरु शिष्य मुनि मानजी कृत कविविनोद नाम भाषा निदान चिकित्सा पथ्यापथ्य समान सप्तम खंड समाप्त ।।

इस विवरण मे कई ग्रंथकारो के नामो का पता अंतिम पुष्पिकाओ में ही लग सका है। जब सर्वत्र यह नीति अपनाई गई तो पता नही कविविनोदकार के साथ यह भूल कैसे हो गई ? थोडी देर के लिए अंतिम पुष्पिका को भी छोड दिया जाय, पर कवि ने तो आत्मवृत्त अपनी कृति में ही इतने विस्तार से दिया है कि शंका की गुंजाइश ही नही रहती संभव है अन्वेषक का ध्यान इन महत्वपूर्ण पद्यों की ओर नहीं गया जान पडता है—

भट्टारक जिनचंद गुरु सब गच्छ के सिरदार ।
खरतरगच्छ महिमा निलो सब जन को सुखकार ।।११।।
जाको गच्छवासी प्रगट वाचक सुमति सुमेर ।
ताको शिष्य मुनि मानजी वासी बीकानेर ।।१२।।
कीयो ग्रंथ लाहोरमई उपजी बुद्धि की वृद्धि ।
जो नर राखै कंठमइ सो होवै परसिद्ध ।।१३।।

प्रथम खंड का अंतिम पद्य—

खरतरगच्छ मुनि मानजी कीयो प्रगट इह खंड ।।२६५।।

इति श्री ख० मानजी विरचितायाँ वैद्यक भाषा कविविनोद नाम प्रथम खंड समाप्त ।।

द्वितीय खंड का अंतिम भाग—

खरतरगच्छ साखा प्रगट वाचक सुमति सुमेर ।
ताको शिष्य मुनि मानजी कीनी भाषा फेर ।।२७८।।
संस्कृत शब्द न पढि सके अरु अच्छर से हीन ।
ताके कारण सुगम ए ताते भाषा कीन ।।२७९।।

इति श्री ख० मुनि मानजी विरचितायां ज्वर निदान, ज्वर चिकित्सा, सन्निपात तेरह निदान चिकित्सा नाम द्वितीय खंड ।।

अन्वेषक ने रचना संवत सूचक ९वां पद्य तो उद्धृत किया है, पर ठीक इसके आगे के पद्यो की न जाने क्यो उपेक्षा कर दी ? जब कि उनका विशिष्ट महत्व था ।

उपर्युक्त उद्धरणो से अब साफ हो गया कि "कवि विनोद" का प्रणेता गुरुप्रसाद न होकर खरतरगच्छीय आचार्य श्री जिनचंद्रसूरिजी के प्रशिष्य एवं सुमितिमेर के शिष्य मुनि मानजी है जो मूलत बीकानेर निवासी थे और इन्होंने लाहौर में सं० १७४५ वैशाख शुक्ल ५ सोमवार को यह बनाया ।

आलोच्य चौदहवें विवरण के पृष्ठ ६७१ पर संख्या ५२३, ५२४, मे "वैद्यकसार संग्रह" का उल्लेख है। इसे भी मान की ही कृति मानने की कल्पना की गई है। यदि

यह सत्य है तो इसे अज्ञातकर्तृक रचनाओं में रखने की आवश्यकता नहीं थी एतद्विषयक स्वल्प स्पष्टता अपेक्षित है कि राजस्थान में इस प्रकार के "वैद्यकसार संग्रह" सूचक स्फुट परीक्षित प्रयोगो के अज्ञातकर्तृक कई संग्रह पाये जाते हैं। मेरे निजी संग्रह में ऐसे ६ संकलन विद्यमान हैं।

मानजी आयुर्वेद के विशिष्ट अभ्यासी व अनुभवी चिकित्सक जान पड़ते हैं। इनकी एक और रचना "कवि प्रमोद" पाई जाती है जिसका प्रणयन सं० १७४६ कार्त्तिक सुदि २ को हुआ था। इसकी प्रशस्ति से प्रतीत हुआ कि ये सुप्रतिमेरु के गुरुबंधु विनय-मेरू के शिष्य थे। शिष्य चाहे किसी के भी हो, पर यहाँ तो यही अभिप्रेत है कि वैद्य विनोद के प्रणेता मुनिमान थे, न कि गुरुप्रसाद।

१६३ **जगन्नाथ**—इनकी "गुरु चरित्र" रचना प्रसिद्ध है। विवरण में इसका परिचय दिया गया है। मुझे इसके संबंध में केवल इतना ही निवेदन करना है कि मेरे संग्रह मे भी इसकी एक सुन्दर प्रति है जिसका अंतिम पाठ विवरणवाली प्रति से साम्य नही रखता अतः उसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

संध्या प्रात दिवस मध्याना गुरु चरित्र को करै वषाना।
ग्यारसि बारसि मावसि पून्यौ पढ़ै पुन्य फल पावति दून्यौ ॥२३॥
अश्वमेध दस सहस कहावै वाजपेय सत कोटि पूजावै।
तीरथ सकल भूमि फिरि रहियै सो फल गुरु चरित्र पढ़ि लहियै ॥२४॥

इति श्रीमत्तुलसिदास स्वामी शिष्य जगन्नाथ चंद्र बिरचितं श्रीमद्गुरु चरित्रं॥

१६८ **जनार्दन भट्ट**—इनके द्वारा रचित "वैद्यरत्न" का परिचय चार प्रतियों के आधार पर दिया गया है किसी भी प्रति मे रचना काल नही है।

जनार्दन भट्ट का उल्लेख मिश्रबंधु विनोद के भाग २ पृष्ठ ५१६ और भाग ३ पृष्ठ १०७८ पर हुआ है। प्रथम में इनका रचना काल सं० १७४५ माना है और द्वितीय उल्लेख में सं० १९०० है। इससे अनजान को भ्रम हो जाता है कि संभवतः ये दोनों एक नामधारी दो व्यक्ति रहे होंगे। श्री अगरचंद जी नाहटा तक को इसी भ्रामक उल्लेख के कारण दो जनार्दन की कल्पना करनी पड़ी जैसा "राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज" भाग २ पृष्ठ १४९ से पता चलता है। वस्तुतः विनोदकार ही भ्रमित हो गये हैं। दूसरे भाग मे जो सं० १७४५ रचना काल दिया है वह ठीक ही था, क्यों कि

१. श्री अगरचंद जी नाहटा ने अपने राजस्थान में हिन्दी के खोज विवरण में इसी मान मुनि को "संयोगद्वात्रिंशिका" का प्रणेता मानने की कोशिश की है। परन्तु इन पंक्तियों के लेखक की विनम्र संमति में उनका मंतव्य समुचित प्रतीत नही होता, सबसे खास कारण है उसकी भाषा, वैद्यविनोद की भाषा और शैली को देखते हुए तो इनकी रचना मालूम नहीं देती। इसके रचयिता तो राज विलास के प्रणेता, विहारी सतसई के टीकाकार और विजयगच्छ के मुनि मान ही जान पड़ते है। ऐसी संयोगशृंगार मूलक रचना करना उन्हीं के बसकी बात थी। भाषा विषयक जो प्रौढत्व संयोगद्वात्रिंशिका में है, वह आयुर्वेद विषयक रचनाओ मे नही।

दोहा

भई मित्रता मिलत ही मन मैं हरष बढाय।
लघु नदन नाम अब जानौं अति सुपदाय ॥१२१॥

छद

तिन ऐसो उपदेस दियो हमैं कोई बतावो मगलमाल।
तिन को मन उपदेश दियो तिन के हेत रच्यो यह स्याल ॥
कृष्णपक्ष अतिम दिन जानो सोमवार मिगसर सुविसाल।
तीन चार वसु चद्र आक सवत म करकै सब जानौं हाल ॥१२२॥

छद

कवि करि वीनती महा दीनती सुनौं विचष्पन सो परवीन।
लघु दीरघ कछु अनजानत ऐसो है मो हिय मति हीन ॥
मा वुधि अयानी समानी तातै अरज सुय इमैं कीन।
तिने की गुनधारी को नही पार ऊतारो कहा लग नलवीन ॥१२४॥

॥इति श्री नेमश्री रो व्यावलो सपूर्ण॥

२११ लल्लुभाई—इनका निवास स्थान भृगुपुर—भडौंच बताते हुए भडौंच की अब स्थिति ग्वालियर राज्यान्तगत बताई है जो विचारणीय है। सूचित भू भाग मे इस नाम का नगर सुना नही गया। भृगुपुर-भडौंच नर्मदा के तीर पर बसा है और आन्तर्राष्ट्रिय ख्याति का शताब्दियो से केन्द्र रहा है। प्राचीन प्राकृत भाषा की चूर्णियो में तथा चीनी यात्रियो के वर्णनो में एव बौद्ध साहित्य के दिव्यावदान आदि प्रामाणिक ग्रथो में इसका विशाल उल्लेख मिलता है। एक समय वह लाट–दक्षिण गुजरात की राजधानी के सौभाग्य से मडित था। लल्लुभाई नाम भी गुजराती है।

२४१ नागरीदास—इनका परिचय इन शब्दो में दिया गया है "इनका बनाया "भागवत दशम स्कध" का पद्यानुवाद मिला है जिसके विवरण लिये गये हैं। इसकी एक अपूर्ण प्रति पहले खोज में आ चुकी है, देखिये खोज विवरणिका (१९१७–१९, स० ११८)। विशेष विवरण के लिए देखिये विवरणिका (१९२६–१९२८, स० ३१३)।*

उपर्युक्त उद्धरण से प्रतीत होता है कि समान नाम, समान समय और समान कृति के कारण ही 'टिप्पणीकार ने खोज विवरण सन् १९२६–२८ और सन् १९२९–३१ वाले नागरीदास को एक मान लिया है, जो स्पष्टत भ्रामक है। यदि खोज विवरणो में दिये गये कवि परिचयो पर थोडा सा भी ध्यान केन्द्रित किया जाता तो सन् १९२९–३१ वाले नागरीदास के लिये सन् १९२६–२८ के विवरण देखने की सलाह देने की आवश्यकता न पडती। भ्रम का स्वत निराकरण हो जाता।

आलोच्य नागरीदास ने अपना आत्मवृत्त बहुत ही स्पष्ट रूप से कृति के अन्त में दे दिया है जिससे विदित होता है कि वे जोरावरसिंह के पौत्र और महेब्बतसिंह के पुत्र महाराज प्रतापसिंह के दीवान साहजी हल्दिया गोत्रीय छाजूराम के लिये इस कृतिका सृजन

* १३ वां खोज विवरण पृष्ठ ६४

किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि विवरणकार का ध्यान चौदहवें विवरण की अन्त्य प्रशस्ति पर नहीं गया है। इस नागरीदास के विशिष्ट परिचय देने के पूर्व सन् १९२६-२८ वाले कवि पर थोड़ा विचार कर लें।

अब प्रश्न रह जाता है खोज विवरण सन् १९२६–२८ वाले नागरीदास का। जैसा कि टिप्पणीकार ने सूचित किया है कि "मेरे बिचार से काव्य क्षेत्र में (किशनगढ़ वाले, वृंदावनवासी) महाराज नागरीदास सर्वोत्कृष्ट थे—और यह ग्रंथ (रास पंचाध्यायी) उन्हीं का रचा है। इन्होंने प्रचुर परिमाण में रचना की है। मिश्रबंधुओं ने इन के रचे ७७ ग्रंथों का उल्लेख किया है, किन्तु उनमे रास पंचाध्यायी का नाम नहीं है। वह सूची निश्चित रूप से अपूर्व है। अतः नामाभाव सामान्य बात है। रचना शैली और उपनाम नागर्य या नागरीदास जो हम लोगों से परिचित हो गये हैं और जिनका प्रयोग इस रचना में हुआ है इन्हीं के रचनाकार होने का समर्थन करते हैं।"*

इन पंक्तियों का लेखक उपर्युक्त अभिमत से पूर्णतया सहमत है। महाराजा नागरीदास ने अपनी अन्य रचनाओं मे "नागरिया" नाम से अपने को संबोधित किया है। अब यह तो सिद्ध हो ही गया कि १४वें विवरणवाले कवि और ११वें विवरणवाले कवि एक ही विषय पर लिखनेवाले दो भिन्न व्यक्ति हैं।

आलोच्य नागरीदास का विशिष्ट परिचय इस प्रकार है—प्रस्तुत नागरीदास ने स्पष्टतः आतम संप्रदाय सूचित नही किया है, परन्तु कवि ने "भागवत" के अनुवाद के मंगलाचरण में एवं अन्य कई स्थानों पर शुकदेवजी व चरणदासजी को बड़े आदर एवं श्रद्धा के साथ स्मरण किया है। चरणदास के ५२ सुप्रसिद्ध शिष्यों मे कवि नागरीदास का नाम सम्मिलित है। इसी से पता लगता है कि यह कवि चरणदासी संप्रदाय का अनुयायी था। यद्यपि इनके जीवन पर प्रकाश डालनेवाले प्रमाणभूत साधन अनुपलब्ध है रासपंचाध्यायी ही नही कवि ने तो पूरे भागवत का विस्तृत पद्यानुवाद ही उपस्थित किया है। जैसा कि उधर सूचित किया जा चुका है कि यह अनुवाद नरुखंडाधिपति जोरावरसिंह के पौत्र और मुहबतसिंह के पुत्र महाराज प्रतापसिंह के दीवान साह छाजूराम हल्दिया के लिये किया गया है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में अपने आश्रयदाता का नाम स्मरण किया है। कवि को इन द्वारा पर्याप्त भेंट मिली थी। विद्वत्परिचयार्थ भागवतानुवाद का आदि और अन्त भाग वहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

आदि भाग—

श्रीशुक चरनदास के बैठि चरण की नाव।
रे मन अलि भज पार हो, भलौ वण्यौ है दाव ॥१॥
अलि कुल मंडित गंड जुत, सुंडा डंड उदंड।
मंडन शुभ पंडन अशुभ, जब वे तंड प्रचंड ॥२॥
नरूखंड मंडित विदित, राजा राव प्रताप।
सूरवीर दाता भरणि, देस-देस जिहि छाप ॥३॥

* खोज विवरण सन् १९२६–२८, पृष्ठ ६७।

कवित्त

सुरन समान सैना चढति सु जाकै सग वज्र सम जाके कर पगग सु बपानियै ।
राजगढ राजत समान सुर पुर जाकै छाजूराम कलपतरोवर प्रमानियै ।।
विजय नगारे की वजन घनघोर जोर ऐरावत तुल्य गजराज घर जानियै ।
इद्र सम प्रगट नरेंद्र महाराव राव भूपति प्रतापसिह जाके गुन गानियै ।।५।।

दोहा

तिहि प्रतिनिधि दीवान जो साह जु छाजूराम ।
गोत हलदिया तास घर सकल सुपनि को धाम ।।६।।
विप्र नागरीदास सौं तिन कीनौं अति प्रीति ।
हय गय वसु बहु भेंट दै सुनै पुरान सु प्रीति ।।७।।
तिन इक दिन ऐसै कही धरि हिय में अति नेहु ।
भाषा श्रीभागवत की तुम हमकों करि देहु ।।८।।
कीनो प्रथम स्कध मै तब सु चौपई रीति ।
नृप ताकौं नैननि निरपि यौं निदेस मुप गीत ।।९।।
लगे बाचिवे मै सुभग छद रीति जो होय ।
तब पनज बुधि अनुसार करि रच्यो जु मैने सोइ ।।१०।।

त्रयोदश अध्याय के अन्त मे—

श्रीसुक चरनदास के चरन सरोज मनाय ।
आसय श्री भागवत मे भाषा कीयौ गाय ।।१९।।
जब लग धर अवर अटल तब लगि चिर जुत वस ।
राजा राव प्रताय भुव राज करो प्रभु अस ।।२०।।
राजा राव प्रताप को छाजूराम दिवान ।
सतति सपति जुत सु नित होउ तेज सम भान ।।२१।।

इति श्री भागवत पुराने द्वादस स्कधे राव राजा श्रीप्रतापसिहस्य तुरसीराम श्री कवरजी श्री कृष्णवल्लभजी चिरजीव । स० १८५८ मिती ज्येष्ठ सुदि २ श्रीरामजी ।। वैरिगढ़ मध्ये पठनाय ।।

उपर्युक्त पक्तियों में केवल भागवत के प्रथम स्कध का ही भाग है । अन्य भाग को इसी प्रकार की सूचना देते हैं। इस की समाप्ति की प्रशस्ति विशिष्ट सूचना देती है जो इस प्रकार है—

दशम स्कध का अतिम भाग

कूरम कुल मधि प्रगट नृपति जोरावरसिह वर ।
अवरीप ज्यौं भक्ति दीन जिन मे करुणाकर ।।
भये मुहब्बतसिह पुत्र तिनकै सु महारथ ।
राजा राव प्रतापसिह तिनि सुत सम पारथ ।।
अरि प्रवल निवल कीनें जु निसि निज भुज दढ प्रताप करि ।
गनि नागर अटल सुरेन्द्र ज्यौं रहो सदा सिर छत्र धरि ।।३४।।

दोहा

साह फकीर जु दास के बालकृष्ण सुत जांन ।
तिन के छाजूराम जू हरि जन मांझ प्रधांन ।।३५।।

छप्पय

छाजूराम दिवान राव राजौ के प्रतिनिधि ।
दई कृपा करि ताहि भक्त लषि ईस सकल सिधि ।।
दाता करन समांन सूर जाहर जग गायौ ।
गौ दानन के काज मनौ मृग फिरि घर आयौ ।।
तिनि बहु पुरान मो सौ सुने असन वसन बहु भेंट दिय ।
तिहि हेत सुतौ भागवत मै छंद रीति भाषा करिय ।।३६।।

दोहा

छंद अनुक्रम तै तहां जो कछु अधिकी होय ।
कथा अरथ मैंने कियौ कवि कुल सौधौ सोई ।।३६।।

इति श्री भागवते महापुराने दशम स्कंधे भाषा राव राजा श्रीप्रतापसिह दीवान छाजूरामार्थ नागरीदासेन कृतं कृष्णलीला चरितानुवर्णनं नाम नवमो अध्याय ९०।।

पूरा भागवतानुवाद कब समाप्त हुआ वह कहना निश्चित रूप से तो कठिन है पर हाँ इतना सुनिश्चित है कि सं० १८४५ के पूर्व ही समाप्त हो गया होगा। कारण, कि इसी संवत में साह छाजूरामजी का स्वर्गवास हुआ है। इसका प्रारंभ कवि ने सं० १८३२ वैशाख सुदि ३ किया था, जब स्वामी चरणदास जी जीवित थे।

२५३ निपट निरंजन—इनका परिचय खोज विवरण में इस प्रकार दिया है—*
"इनका वनाया वेदान्त विषयक बिना नाम का तथा आद्यंत से खंडित ग्रंथ मिला है। इसकी प्रस्तुत प्रति में रचना काल और लिपि काल का कोई उल्लेख नही मिलता। "शान्तसरसी" नामक रचना के साथ रचयिता का उल्लेख पिछली खोज विवरणिका (१९२३-२५-सं० ३०९) में हो चुका है। संभव है प्रस्तुत ग्रंथ भी वही हो।

निपटजी से संबद्ध जिस विवरण की चर्चा की है वह मेरे अवलोकन में नही आया। इसमें कोई संदेह नही कि ये बहुत बड़े मार्मिक और आध्यात्मिक प्रकृति के कवि थे। इनकी भाषा में ओज और प्रवाह के साथ अनुप्रास वाहुल्य है। अभिव्यक्ति का अपना ढंग ही निराला है। इनकी कोई स्वतंत्र कृति अद्यावधि मेरे देखने में नहीं आई। हाँ कवित्त संग्रहों और हजारों मे इनके छप्पय या कवित्त प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। मेरे संग्रह में इनके २५० से ऊपर स्फुट छंद विद्यमान हैं। ये कोरे वेदान्ती ही नही पर परम व्यवहारिक भी जान पड़ते हैं। अपने कवित्त, कुंडलिया, रेखता, झूलना और दोहों में न केवल आध्यात्मिक भाव ही भरे हैं अपितु तात्कालिक समाज और साधुओं के नाम पर उदर पूर्ति करनेवालों की कटु आलोचना भी की है। ये थे तो हिन्दी के कवि पर गुजराती भाषा पर भी उतना ही अधिकार था जैसा कि

* १३ वाँ खोज विवरण पृष्ठ ९९।

आगे के उद्धृत पद्यो से पता लगेगा । मेरे सग्रह मे एक ४३ पत्र का गुटका है जिसमे निपट जी के ही कवित्तो का मकलन है । अतिम पत्र तो इसमे भी खडित ही है । गुटके का आदि भाग इस प्रकार है—

श्रीगणेशाय नम

अथ निपट जी के कवित्त लिख्यते

दोहरा

ज्ञान भक्ति वैराग्य मत कहे जु वाक कवित्त ।
पढै सुनै जामे लहै निपट निरजन नित्त ॥१॥
उकति जुकति जा मे सवित वित चित लह्यो न जाय ।
एक कवित परकरन है सव विधि रही समाय ॥२॥
निपट निरजन समय पर कहै जु वचन विलास ।
ते सव मे अनुक्रम करि लिखै नाम धरि तास ॥३॥

इन दोहो के वाद कवित्त प्रारभ हो जाते है । सव मिला कर इस गुटके मे १०८ कवित सकलित है । शेप कवित्त अन्य सग्रहो मे है ।

कवि की गुजराती भाषा की कई रचनाओ में से एक उदाहरणार्थ उद्धृत है—

एह्वा तत्वथी एवडा नीपना एहा तत्वना तत्व ते लो जाणी ।
मल्या सरवे सरपा लप चोरासी सुय ये व्यापक वेद वाणी ॥
ए तो सव्व निपटट निरजना थी ढाकि वात हुती ते तो ओलपाणी ।
मूल्य सूय आकास तिहा सू मिले माहि धूल धाणी ने वन पाणी ॥११३॥

एक हिदी कविता भी देखिये, कवि अपनी वात कितनी सरलता से कह जाता है—

आन अनत नमोह विनत सुदत कथा सु कथत ही हारा ।
कौन गिनत घनै अगनत सु दत अपथ को पार न वारा ॥
सत मदा मुसकत रहत असत वसत तनै पतभारा ।
तत मत तजै निपटा भगवत भजै सोई सत मित हमारा ॥१८४॥

इनके कवित्तो की ऐसी विशेषता है कि पढते समय मन भ्रमित हो जाता है कि किसे उद्धृत करें और किसे छोडें ?

जैसा कि ऊपर के एक दोहे मे कहा गया है कि एक-एक कवित्त एक प्रकरण समान गभीर भावो से परिपूर्ण है । वास्तव मे यह उक्ति अतिरजना रहित है ।

कवि के समय पर प्रकाश पड सके वैसे अकाट्य प्रमाण अनुपलब्ध है, परन्तु जिस गुटके मे इनकी कविता प्रतिलिपित है, उसका आनुमानिक प्रतिलिपि काल १८वी शती के बाद का नही हा सकता । अत निपटजी अठारहवी सदी या इससे पूव के कवि ठहरते है ।

२५५ पदम भगत—इनके प्रसिद्ध काव्य रुक्मिणी मंगल या व्याहलो का विवरण दिया है। इनके समय संबंध में समस्या थी और अब भी बनी हुई है, पर इतना तो निश्चित हो चुका है कि सं० १६६९ के पूर्व के कवि हैं, कारण कि इस संवत की प्रति श्री नाहटा जी को प्राप्त हो चुकी है; "बरदा" के वर्ष ३ अंक में यह मुद्रित भी हो गई है।

लोक काव्य-साहित्य जन कंठ का हार होता है अतः इसमे गानेवाले अपने मन-माने ढंग से परिवर्तन-परिवर्द्धन किया ही करते हैं। इसके साथ भी ऐसा ही हुआ है। इसकी दो प्रतियाँ इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में भी हैं, प्रथम प्रति के अंत में इस प्रकार लेखन पुष्पिका है—

इति श्री पदम भक्त कृत श्रीकृष्णजी को रुकमणीजी को व्याहुलो सम्पूर्ण।। श्रीकृष्णजी को ब्याह रुकमणीजी सो हुआ सो पदम भगत तली कृत संपूर्ण। संवत १८८६ वर्षे मिती वैशाष मासे सुभ शुक्ल पक्षे अष्टम्यां शनिवासरे लिषतं महात्मा अमीचंद नेवटा नगर मध्ये लिषापितं राजि श्री परतापस्यंधवी तस्यपुत्री बाईजी श्रीफतेकंवरीजी आत्मार्थे पठनार्थे। किल्यामस्तु। पत्र ३९, गुटकाकार।

दूसरी प्रति भी गुटकाकार ही है वह इतनी अर्वाचीन है कि उसके उल्लेख की आवश्यकता नहीं रह जाती। पाठ भेद दोनों मे बहुत अधिक है। समान पाठवाली प्रतियाँ कम ही मिलती हैं।

विवरण में बताया गया है कि कोई इन्हें जैन धर्म का अनुयायी भी बताता है, यह सत्य नहीं है। ये किस जाती के थे? पर जब तक पुष्ट प्रमाण न मिले तब तक सुनिश्चित रूप से क्या कहा जाय ?

२५५ नित्यनाथ पार्वतीपुत्र—इनके द्वारा रचित "महासावर" "वीरभद्र" "उड्डीस-ग्रंथ" और "रस रत्नाकर" का परिचय दिया गया है। टिप्पणीकार ने सूचित किया है कि "रचयिता वास्तव में संस्कृत के रचयिता हैं। हिन्दी में उनकी रचनाएँ केवल अनुवाद मात्र है। परन्तु इन हिन्दी रचनाओं में अनुवाद का नाम न रहने के कारण इन्हीं को रचयिता मान लिया गया है।*

"महासावर" एक स्वतंत्र तांत्रिक रचना है और इसका नाम तंत्रों में समाविष्ट है। समझ में कम ही आता है कि इसका नाम नित्यनाथ के साथ कैसे जुड़ गया? उपर्युक्त उद्धरण में कहा गया है कि अनुवादक का नाम नहीं मिलता, पर विवरण के पृष्ट ४७२ पर दामोदर पंडित का नाम आया है। दामोदर नामक कई विद्वान् हुए हैं। नही कहा जा सकता कि यह दामोदर कौन से थे। एक दामोदर तांत्रिक हुए हैं जिनकी "मंत्रावली" मेरे संग्रह में सुरक्षित है श्रृंगारमाला नामक संस्कृत साहित्यिक कृति के लेखक सुखलाल मिश्र के एक पूर्वज भी इसी नाम धारी सज्जन हुए हैं जो तांत्रिक व आयुर्वेदवेत्ता थे। इन सब में से "महासावर" वाले कौन थे? कहना कठिन है।

तंत्र शास्त्रों में बीरभद्र एक ऐसा व्यक्तित्व है कि जो सभी तंत्रों में विराजमान

*खोज विवरण पृष्ठ ५७।

रहते हैं । पर यह वीरभद्र वही जान पड़ते हैं जिनका उल्लेख महाभारत के शान्तिपर्व में आता है। वीरभद्र तन्त्र अलग रचना भी है पर उसमें नित्यनाथ का नाम नहीं आता है।

अष्टाग आयुर्वेद मे रसायन खड का महत्व सर्वोपरि माना गया है। दीर्घ जीवन की कामना ही आयुर्वेद का उद्देश्य है और इस की पूर्त्ति तभी सभव है जब सप्त धातु अपना काम ठीक से करती हुई परिपुष्ट बनी रहे। धातुओ की पुष्टि रसायन के समुचित प्रयोग पर अवलबित है। स्वास्थ्य के लिए रसायन अव्यर्थ महौषध है। यद्यपि इस विषय के पर्याप्त ग्रथ पाये जाते हैं, उनमे नित्यनाथ का स्थान भी उल्लेखनीय है। रस रत्नाकर का व्यापक प्रचार कई शताब्दिओ स रहा है और जन स्वास्थ्य के विकास के इसका अनुपम योग रहा है।

इस कृति के तीन खडो का सबध रस शास्त्र से है, शेष मत्र और तत्रो से भरे हैं। सुप्रसिद्ध रसायनविद् डा० प्रफुल्लचद राय इसे सप्तम अष्टम शतीकी रचना मानते हैं जब कि स्व० दुर्गाशकर केवलराम शास्त्री ११वी सदी की कृति स्वीकार करते हैं। श्री अत्रिदेवजी गुप्त १५वी सदी इसका रचनाकाल बताते हैं। श्री गुप्तजी का मत इसलिये समुचित प्रतीत नही होता कि स० १४६५ की तो प्रतिलिपित प्रति ही मेरे सग्रह में है। गोडल निवासी सुप्रसिद्ध आयुर्वेद विशेषज्ञ जीवराम कालीदास शास्त्री (अब भुवनेश्वरी पीठ के अधिकारी, स्वामी चरण तीर्थ, महाराज) रसेंद्रमगल और रस रत्नाकर को एक ही कृति मानते हैं। रचना काल जो भी हो, इसमें मैं यहा उलझना नही चाहता, पर इतना अवश्य कहना चाहता हू इस कृति का प्राचीन काल में इतना आदरणीय स्थान रहा है कि रसरत्नसमुच्चय जैसे ग्रथो में इसका उल्लेख हुआ है और समय-समय पर कई विद्वानो ने इसका अनुवाद कर लोकोपयोगी बनाने का प्रयास किया है। विवरण में जो भाग रस रत्नाकर का दिया गया है वह अपूर्ण परिवर्द्धित अश हैं। मूल प्रति से इसका मेल नही बैठता। पृष्ठ ४७३ से पता चलता है कि इसके व्याख्याता वृद्धि गुसाई जान पड़ते हैं। चक्रपाणि वागीश का नाम वहा आया है यह सभवत सुप्रसिद्ध टीकाकार ही प्रतीत होते हैं। विशेष परिचय के लिए देखें " "राजस्थान का अज्ञात आयुर्वेदिक वैभव" शीर्षक निबध।*

२५८ पद्मरग इनकी कृति राम विनोद विवरण देकर समयादि विशिष्ट परिचयार्थ सूचित है कि अन्य विवरण इनका अज्ञात है। प्रस्तुत प्रति में रचना काल का उल्लेख नही है।

ये आचार्य श्रीजिनराजसूरि के शिष्य और पदमकीर्त्ति के शिष्य तथा पद्मचद्र एव रामचन्द्र के गुरु थे। इनका समय इनके शिष्य द्वारा स० १७२० में रचित "वैद्य विनोद चौपाई" से सिद्ध है।

२७७ रइधू-रग्घू—इन का पूरा परिचय खोज विवरण से उद्धृत किया जा रहा है—यह जैन धर्म के अनुयायी थे। "दश लाक्षणिक धम पूजा" नामक ग्रथ के रचयिता है जिसके इस बार विवरण लिये गये हैं। ग्रथ की प्रस्तुत प्रति में न तो रचना काल ही दिया है और न लिपि काल ही। रचयिता का परिचय भी अज्ञात है। मूल-

*खोज विवरण पृष्ठ ७१।

ग्रंथ प्राकृत में हैं। जिसके साथ-साथ अनुवाद भी दिया गया है। पता नहीं कि दोनों कृतियाँ- प्राकृत मूल और हिन्दी रूपान्तर रग्घू कवि ही है अथवा अलग-अलग रचयिताओं की।

सर्व प्रथम कवि का नाम ही गलत दिया है। इसका नाम रग्घू न होकर रइधू है। कृति नाम पूजा के स्थान पर "दश लक्षण जयमाल" होना चाहिए था। कृति प्राकृत में न होकर अपभ्रंश भाषा में है।

अपभ्रंश भाषा के ख्यातनामा कवियों मे रइधू का प्रमुख स्थान है। इनकी पर्याप्त रचना इसी भाषा में पाई जाती हैं। कवि का निवास स्थान ग्वालियर था। विशिष्ट साहित्य सर्जक यशःकीर्ति भट्टारक (इनका समय १५वीं शती का उत्तरार्द्ध और १६वी का आरंभ काल है) इनके गुरु थे जैसा कि निम्न पद्य से ध्वनित होता है—

भव्व कमल-सरवोह पयंगो बंदिवि सिरिजसकित्ति असंगी।
तस्स पसाए कव्व पवा समि चिरमवि विहिउ असुह णिासमि॥

कवि कुसम्मइ जिन चरिउ,

इनके ग्रंथों की प्रशस्तियों का तात्कालिक इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्व है। डूँगरसिंह तोमर (राज्यारोहण काल सं० १४८१ है) कीर्त्तिसिंह (–कीर्त्तिपाल) आदि की राजकीय परम्परा का उल्लेख इनकी धार्मिक कृतियो में मिलता है। जिन दिनों आलोच्य विवरण तैयार किया था उन दिनों अपभ्रंश साहित्य हिन्दीभाषा के विद्वानों का परिचय सीमित था अतः इसे प्राकृत भाषा की रचना लिख दिया है।

३१४ **टीकाराम**—इन के द्वारा बराहमिहिर रचित "लघु जातक" के पद्यानुवाद का विवरण दिया गया है जिसमें सन् संवत् का उल्लेख नहीं है। 'रचयिता के पिता का नाम भवानी प्रसाद। इससे अधिक इनके विषय में और कुछ ज्ञात नही* ।'

टीकाराम रचित लघु जातक का एक अनुबाद 'आजमखांन विनोद' नाम से मुझे भी अपनी शोध यात्रा में मिला है। पिता का नाम भवानीदास है। रचना काल सं० १८०० आश्विन शुक्ला ५ रविवार है।

मेरी प्रति खंडित होने से इसके आदि के ८१ पद्य नहीं है। परन्तु अन्त भाग सुरक्षित है। विवरणिका के पृष्ठ ६०३ पर जो पाठ "लघुजातक" का दिया है, उस से मेरी प्रति का पाठ तनिक भी साम्य नहीं रखता। विवरण में प्रदत्त पाठ से सिद्ध है कि उसमें कहीं भी कवि का नाम नही है, केवल अन्तिम पुष्पिका में उल्लेख है। अतः अपने संग्रह की प्रति का अंत्य भाग उद्धृत कर रहा हूं ताकि भविष्य में कभी यह प्रति कहीं पूर्ण मिले तो पता चल जाय कि वस्तुतः यह कृति किस टीकाराम की है।

आजमखांन विनोद

अन्तिम भाग—

आजमखांन नवाब बली गुण पुंज सदा वहु दान झरे जू।
मत्त मतंग तुरंग महीधर हेमनि दै सु निहाल करै जू॥

*खोष विवरण पृष्ठ ७९ है।

जाचक भीर जु द्वार लसै लहि के मन काम दरिद्र हरे जू ।
देत असीस सबै चिरजीवहु जीवहु भूपति लोक ररै जू ।। १६४।।

आप विराजत ज्यौं मघवा बरसे मणि हेमनि के झरलावै ।
ताकी सभा बिलसै जु महेन्द्र सभा सी प्रकाशी बडो जस गावै ।।
जोतसी पडित वेद कवीसुर चारण गायक वाछित पावै ।
आजमखान नरेस सदा सुखसागर नागर को गुण भावै ।। १६५।।

दूहा

उपाध्याय श्री नयनसुख ज्योतिष शास्त्र प्रवीण ।
तिन सौं हित करि के कह्यौ, हम ज्योतिष चित दीन ।। १६६।।

तब ही तो श्री नयनसुख मोकहुँ आज्ञा दीन ।
लघुजातक भाषा करो पढि है महा प्रवीण ।। १६७।।

हम या तै भाषा कर्‌यो अति सूवो यह ग्रथ ।
जो कोई वाको पढै समुझै ज्योतिष पथ ।। १६८।।

नाम वशिष्ट जु परम ऋषि, सब गुण माझ प्रसस ।
तिनकी सब सेवा करें जै नृप सूरज वश ।। १६९।।

तिन ही के शुभ गोत्र में पडित दुर्गादत्त ।
तिन के सुत कीरति भये कीरतवत कवत्त ।। १७०।।

रामकृष्ण तिन के भये रामकृष्ण के भक्त ।
जिन पोषै बहु विप्र वर, सु वचन हरि गुण रक्त ।। १७१।।

तिन के सुत अति विदित जग, पडित बहु गुणवत ।
नाम भवानीदत्त जिहि जानत है सब सत ।। १७२।।

तिन को सुत गुरु पद कमल पूजक टीकाराम ।
कियौ यथा मति ग्रथ निज, भाषा में अभिराम ।। १७३।।

सवत विक्रम नृपति को अष्टादस सत मानु ।
आश्विन सुदि तिथि पचमी, अरु वासर है भानु ।। १७४।।

ता दिन सपूरन कियौ आजमखान विनोद ।
पढ़ै सुनै जो ज्योतिषी ता मन उपजै मोद ।। १७५।।

इति श्री मन्यमहानृपति-मणि-परम प्रवीर सकलजनाह्लादप्रवर्द्धन श्रीनबाब कारिते 'आजमखान विनोद' नामक टीकाराम कृत भाषा लघु जातक नामक ग्रथ सपूर्ण । लिखित ऋषि लालमणि पाडलिपुत्र मध्ये सवत १८६२ का मार्ग शिर सुदि २ शनिवासरे रात्री सपूर्ण कृत्वा ।

उपर्युक्त पद्यों से कवि का वंशवृक्ष इस प्रकार बनता है—

दुर्गादत्त
|
कीरति
|
रामकृष्ण
|
टीकाराम

कवि ने आजमखांन का अद्भुत वर्णन कर नगर का नामोल्लेख नहीं किया। संभवतः आजमखांन वही होने चाहिए जिसके वहाँ रह कर कवि सोमनाथ ने 'नबाब बोल्लास' की रचना की थी। इन्हीं ने आजमगढ़ बसाया था ऐसा कहा जाता है। हिन्दी के प्रति नबाब को ही नहीं, अपितु इनके परिवार को अनुरागात्मक भाव थे इनके लघुबंधु अजमतखां के आश्रित कवि बलदेव कृत "अजमतखां यश बर्णन" का उल्लेख हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों के अठारहवे त्रैवार्षिक बिवरण (सन् १९४१–४३) में आया है। वहीं पर सूचित परिचय से बिदित होता है कि आजमखां के पिता का नाम विक्रम था। बादशाही युग मे परिस्थितिवश मुसलमान धर्म स्वीकार किये जाने पर भी इनके आनवंशिक-कौलिक संस्कार पूर्ववत् बने रहे, परिणाम स्वरूप पुरोहितादि का आदर सत्कार भी यथेष्ट परिमाण में होता रहा।

२. **अहमद**—(पृष्ठ २१) इनका समय निर्धारित करते हुए खोज विवरण के प्रथम परिशिष्ट में सूचित किया गया है कि "वह जहाँगीर बादशाह के राज्यकाल में सं० १६२८ के लगभग वर्तमान था" इसी परिशिष्ट में आगे ब्रह्म गुलाल के प्रसंग में जहाँगीर का सिंहासनारूढ़काल सं० १३६२ माना है (पृष्ठ १८) जो सही है। सं० १६२८ में तो अकबर स्वयं शासक था।

अहमद की कोई बृहदाकार रचना अद्यावधि उपलब्ध नही हुई। स्फुट शृंगारिक रचनाएँ पर्याप्त संख्या में प्राप्त हैं। मेरे संग्रह के सत्रहवीं शती में प्रतिलिपित एक हस्त-लिखित गुटके में "लोचना दशक" आदि कई अज्ञात रचनाएँ इसी कवि की सुरक्षित हैं। हजारों में भी इनके छंद दृष्टिगोचर होते हैं। यह स्मरणीय है कि अहमद नामक एक जैन कवि भी हुए है जिनके आध्यात्मिक पद तथा वैराग्य गीत समुपलब्ध हैं।

७. **आनन्दघन**—(पृष्ठ २२) घनानन्द के ५०० से अधिक पद्य मेरे संग्रह के दो गुटकों में प्रतिलिपित हैं, पर इनमें से कितने ज्ञात हैं और कितने अज्ञात यह कहना कठिन है। मेरे अवलोकन में आनन्दघन या घनानन्द के स्फुट काव्यों का कोई ऐसा संग्रह नहीं आया जिससे इसका निर्णय किया जा सके। प्राचीन यश कवितों में कुछ कवित इनके संबंध में आये हैं जिनका प्रकाशन मुझ से तो संभव नहीं, क्यों ? इसके शीर्षक से ही समाधान हो जायगा, "कवित आनन्दघन हरामजादा को"। कवित क्या यह तो भँड़ौवा है।

१९ **भागचंद**—(पृष्ठ २५) इनके द्वारा प्रणीत पदसंग्रह का विवरण देकर

चैनराम कृत "रस समुद्र" में कवि ने अपने वश का परिचय इस प्रकार दिया है—

कान्यकुब्ज शुक्ल कुल भये राम यह नाम ।
अतरवेदिहि दिविकुलहि तहां कियो सुख धाम ॥
इक सरनामत ना तज्यौ तजे मवनि निज गात ।
तव दिल्लीस खिताव दिय वह ठाकुर विख्यात ॥
तिनके कुल में भो प्रगट दुर्गादास सु नाम ।
पडित पौराणिक भयो रहे सु ताहि ठाम ॥
तिनके सुत भोपति भयो कियो आगरे वास ।
गुणनिधि जारि नवाव हू राखे तिन निज पास ॥
नन्दराम तिनके तनय कवि पडित परवीन ।
ताके भोलानाथ जिहि कीन्हें ग्रथ नवीन ॥
छहो शास्त्र अध्येन सो गये दिल्लीपति पास ।
शाहजहा पतिशाह के भयो मिलत हुलास ॥
पाच सदी मनमब दियो राखे करि अति प्रीति ।
तव तिनकी रुचि जानि जिन भाषा किय इहि रीति ॥
सूरजमल्ल व्रजेश सो गयो दिल्लीपति धाम ।
ले आयो भुवनाथ को दिए वाछित धन धाम ॥
माधवेश अम्वापतिहि मिले तहा ते आय ।
तिनहूँ भोलानाथ को राखे बहु चित लाय ॥
तिन के सुत शिवदास सो भाषा परम प्रवीन ।
हुकम भूप को पाय जिन भाषा भारत कीन ॥

पण्डित गोपालनारायणजी बहुरा ने "कर्ण कुतूहल" की भूमिका पृष्ठ ५ पर सूचित किया है कि "रस समुद्र" का प्रणयन "शाहपुराधीश श्री हनुमत्सिह के लिये सग्रहीत किया था" परन्तु शाहपुरा के इतिहास में इस नाम के किसी राजा का पता नही चलता । सभव है राज परिवार से सबद्ध कोई सज्जन रहे हो ।

भोलानाथ की अन्य रचनाएँ इस प्रकार पाई जाती हैं—

(१) श्री कृष्णलीलामत ।

(२) सुख निवास (गीत गोविंद का अनुवाद, ठाकुर चतुरसिंह प्रीत्यर्थ, ले० का० स० १८३०) ।

(३) नायिका भेद (स० १८१८ में लिखित, नाहरसिहार्थ) ।

(४) नखशिख (स० १८३० में लिखित) ।

(५) नवलानुराग ।

(६) युगल विलास ।

(७) लीला पच्चीसी (लेखक के सग्रह में सुरक्षित) ।

(८) भगवद् गीता (भरतपुर के नवलसिंह की प्रेरणा से नाहरसिंह के लिये) ।

(९) इशकलता (सं० १८२७, पंजाबी भाषा में)।

(१०) नैषध (सं० १८४० इसके चार सर्ग का अनुवाद किशनगढ़ के सरस्वती भंडार में उपलब्ध है)।

(११) महाभारत—पद्यानुवाद।

(१२) भागवत दशम स्कंध का अनुवाद (नवलसिंह के लिए, ले० १८२९)।

(१३) लीला प्रकाश (सं० १८२० लिखित)।

(१४) प्रेम पचीसी।

(१५) कर्ण कुतूहल।

इनमे से १ और १५ संख्यावाली कृतियाँ श्री युत गोपाल नारायणजी बहुरा द्वारा सुसंपादित होकर "राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान" जोधपुर से प्रकाशित है। उनकी विद्वतापूर्ण भूमिका का उपयोग भोलानाथ के परिचय लेखन में किया गया है।

३४ बुलाकीदास—(पृष्ठ २८) गंग "जिन चौवीसी" "थीममहासील भूषण", और "पाण्डवपुराण" का विवरण क्रमशः ३४ प बी और सी संख्या में दिया है। पृष्ठ २८ पर कवि परिचय मे बताया गया है कि वह मूलतः भरतपुर राज्यान्तर्गत बयाना के निवासी थे। संयोगवश जहाँनाबाद जाकर बस गये थे। इनके गुरू कोई रतन नामक गवालियर के व्यक्ति थे। कवि ने अपनी रचनाओं मे औरंगजेव के शासन की महती प्रशंसा की है।

यहाँ पर कुछ बाते विचारणीय हैं कविकृत श्रावकाचार भाषा की एक प्रति का उल्लेख इतः पूर्व सन् १९२३—२५ के विवरण में आ चुका है इसे मैंने नहीं देखा है, पर आलोच्य विवरण में बताया गया है कि "श्रावकाचार" का रचनाकाल सं० १७३७ है, किन्तु इन पंक्तियों के लेखक की प्रति में सं० १७४७ वैशाख सुदि ३ दिया है जो अत्यधिक इस लिए विश्वसनीय है कि अन्य प्रतियों मे भी वही पाठ और रचनाकाल मिलता है।

संख्या ३४ सी मे पाण्डवपुराण का परिचय जिस प्रति से उद्धृत किया गया है उसमें उसका रचनाकाल सं० १८२३ आषाढ़ वदी २ है जो कवि की अनन्य रचना मे दिये गये संवतों के प्रकाश में संदिग्ध है। यद्यपि टिप्पणीकार ने भी इस पर अपना संदेह प्रकट किया है, पर वह एतद्विषयक अन्य साधनों की सहायता लेकर निष्कर्ष पर पहुँचने में असमर्थ रहा है वस्तुतः पांडवपुराण का रचना काल सं० १७५४ है। "राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची भाग ४ पृष्ठ १५०।" पर आश्चर्य हैं कि जयपुर से प्रकाशित जैन शास्त्र भंडारों की सूची भाग २ पृष्ठ १६२ पर श्रावकाचार की एक ऐसी प्रति का उल्लेख है जिसका प्रतिलिपि समय सं० १७२३ है। प्रति का पुनर्निरीक्षण अपेक्षित है।

संख्या ३४ बी में "श्रीमन्महाशीलभूषित" कृति का नाम हीं संदिपुष्पिका (१) में व्यवहृत शब्दावली से" "इति श्रीमन्महासीलाभरणभूषित जैनी नामा किताया भारत भाषा" स्पष्ट है। ऐसा लगता है कि कृति का नाम कुछ और होगा तथा भ्रमवश, अंतिम प्रशस्ति के कतिपय शब्दों को लेकर ग्रंथ नाम मान लिया है।

इसमें सदेह नही कि बुलाकीदास कवि और साहित्यकार थे, पर इनके वैयक्तिक जीवन को आलोकित करनेवाले ऐतिहासिक उल्लेख अनुपलब्ध हैं। इसी नाम के कवि का "वचन कोप" भी प्राप्त है, पर वह इसी बुलाकीदास की कृति है—बिना प्रति के निरीक्षण किए नही कहा जा सकता है, ।

४३—छाजूराम—(पृष्ठ ३०) ज्योतिप विपयक ताजिक के अनुवादक कोटा निवासी छाजूराम जी कवि भी थे। इनका समय स० १७०२ है। इनके थली, मारवाडी, दुवाली और हाडोती भापाओ के कवितावद्ध नमूने भी मिले हैं।

७४ हरचद (महाचद पृष्ठ ३५) कवि परिचय की टिप्पणी इस प्रकार है—

"ये आगरा के समीप साहगज के निवासी थे। इन्होंने रुकमणि मगल नामक रचना की। अपना उपनाम इन्होंने "द्विजदास" रखा था, जिसका अर्थ ब्राह्मणो का सेवक है। ग्रथ की प्रस्तुत प्रति में रचना काल और लिपि काल नही दिये हैं।"

इन पक्तियो के उपर्युक्त रुकिमणी मगल की एक प्रति सुरक्षित है। इस से पता लगता है कि खोज विवरण में रचयिता का नाम ही गलत दिया है।* वस्तुत इसके प्रणेता हरचॅद न होकर महाचद द्विज हैं और इन्होंने इसकी रचना स० १७६१ पोप सुदि १ सोमवार को की। विद्वत्परिचयार्थ कृति का आदि और आवश्यक अत भाग उद्धृत किया जा रहा है—

श्री गणेशाय नम ॥

अथ रुक्मिणी मगल लिप्यते ॥

दोहा

गुरु पद वदन प्रथम ही द्वितीय सकल मुनि वृद ।
नमस्कार कर जोरि कै बरनु रुषिमणी छद ॥१॥
गोविंद गोरि गणेस भजि तजि मन सकल विषाद ।
सुफल होय कारज सकल तिनके सकल प्रसाद ॥२॥

सोरठा

मन उपज्यो अभिलाप रुकमनि मगल बरन को ।
तीन देव करि साधि ब्रह्मा विष्णु महेस ॥३॥

दोहा

सवत सत्रैसे वरस गये गुण्यासी वीति ।
पोप सुदी तिथि पचमी सोमवार सो प्रीति ॥५०३॥
मगल किया हेत सो सहीगग सुभ थान ।
महाचद दुज जग सुनया नागर रूप निधान ॥५०४॥
सब तजि भजि राघारवण जय लग ए में प्राण ।
मन वच कर्म करि द्विज कहै पावै पद निर्वाण ॥५०५॥

*प द्रहवाँ खोज विवरण पृष्ठ ३५।

इति श्री रुक्मनी मंगल संपूर्ण

खोज विवरण मे जो पाठ दिया है इस से बिल्कुल मेल नहीं खाता।

७७ हरिदास—(पृष्ठ ३६) ये निम्बार्क संप्रदाय के संत थे। इनकी उल्लेखनीय रचना गुरु नामावली का विवरण देते हुए अन्वेषक ने पूरी पट्टावली उदृत नहीं की। केवल पीताम्बर स्वामी तक ही नामावली देकर संतोष कर लिया।

वस्तुत: निम्बार्क संप्रदाय की पूरी पाटावली उद्धृत हो जाती तो अवश्य ही नवीन जानकारी प्राप्त होती। कृष्णभक्तिपरक यही एक ऐसा संप्रदाय रहा है, जिसके आचार्य एवं क्रमिक साहित्यिक विकास पर अत्यन्त सीमित कार्य हुआ है। निम्बार्क मठ और मंदिरों में भी जो सामग्री उपलव्ध है वह भी विद्वानों को सुलभ नहीं।

मेरे संग्रह में इस संप्रदाय के परम संत व कवि गोविद स्वामी की "हरि गुरु सुयश भास्कर" नामक एक महत्वपूर्ण कृति है जो संप्रदाय के सर्वाङ्गीण इतिहास पर अभूतपूर्व प्रकाश डालती है। रचना तो सं० १८२६ की ही है, पर जहाँ तक विशिष्ट ज्ञातव्यों का प्रश्न है कृति उपादेय अनसंधेय है, जहाँ से विवरण मे क्रम टूटा है उस के आगे के नाम इस प्रकार है—पुरुषोतमाचार्य—विशालाचार्य—माधवाचार्य—बलभद्राचार्य—पद्माचार्य—शयामाचार्य—गोपालाचार्य—कृपाचार्य—मद्मनाम भट्ट—रामचंद्र भट्ट, वामन भट्ट—कृष्णभट्ट—पद्माकर भट्ट—श्रवण भट्ट—माधव भट्ट—श्याम भट्ट—गोपाल भट्ट—बलभद्र भट्ट—गोपीनाथ भट्ट—केशव भट्ट—गंगल भट्ट—केशव भट्ट—(केशव काश्मीरी के नाम से इनकी विशेष प्रसिद्धि रही है, इनके जीवन पट पर प्रकाश डालनेवाला संस्कृत भाषा में रचित एक चरित्र मेरे संग्रह में सुरक्षित है।)—श्री भट्ट—हरिव्यास—परसुराम—हरिवंश—नारायण—वृंदावनदेव और गोविंद स्वामी। आचार्य नामावली शीर्षक एक स्वतंत्र रचना भी उदयपुर के निम्बार्क मठ में सुरक्षित हैं।

९१ ईश्वरदास—(पृष्ठ ३८) इनकी सुप्रसिद्ध कृति 'गुण हरिरस' का परिचय विवरण में दिया है। कल्पना की गई है कि यह संभवत: खोज विवरण सन् १९२६-२८ संख्या १८५ वाले ईश्वरदास हों। पर हरिरस वाले ईश्वरदास तो चारण थे और 'रोहडिया शाखा' से संबद्ध थे। जोधपुर के समीप भाद्रेस के निवासी थे। इनका जन्म सं० १५९५ में हुआ था जैसा कि निम्न पद्य से स्पष्ट है—

पनरासौ पिच्याणवै जनम्यां ईसरदास।
चारण चरण चकार में उण दिन हुवौ उजास॥

इनके जीवन के ४० बरस जामनगर में व्यतीत हुए थे। वहाँ के राज परिवार द्वारा इन्हें यथेष्ट सम्मान प्राप्त था। ये परम भगवद्भक्त कवि थे। राजस्थानी भाषा का शायद ही कोई ऐसा विज्ञ होगा जो इनकी भक्तिप्रधान रचना हरि गुण रस से अभिज्ञ हो। कवि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं १ छोटा हरिरस २ बाललीला, ३ गरुड़ पुराण, ४ निंदास्तुति ५ सभापर्व, ६ हालाँ झालाँ रा कुंडलिया आदि।

इनका स्वर्गवास लगभग ८० वर्ष की उम्र में सं० १६७५ में हुआ। सन् १९२६-८ वाले ईश्वरदास निश्चय ही इनसे भिन्न हैं।

१०५ कमाल—(पृष्ठ ४२) खोज विवरण मे पृष्ठ १६८ पर कबीर के पुत्र कमाल की वाणी का परिचय दिया है। कमाल की कोई स्वतत्र रचना उपलब्ध नही है, केवल फुटकर छद ही मिलते हैं। मेरे सग्रह मे कमाल के दो छद हैं जिन्हें उद्धृत कर रहा हूँ—

रेखता

मुक्त मैंदान का खेलना खूब है जो देखें कौन मंदान मे गेंद मारे।
देखें कौनका घोडला चाव चाले दबे कौन हीमत मे हाथ मारें॥
बाजीश्राय लागी इतमाम हुआ दर्प कौन जीतें देखे कौन हारे।
कहत कमाल कबीर का बालका सोइ जीते जिको क्रोध मारे॥

१८वी शती के ग कवित्त कोश से।

ज्ञान का गेंद कर सूरत का डड कर खेल चौगान मैंदान माही।
जगत का भरम ना छोड दे बालका आयजा भेष भगवान (माही)॥
भेष भगवान का सेस मेहमा कर सेस के सीस पर ध्यान धारी।
पदमासण कर पवन पर चीत घर गगन के मेहल मे मदन जारी॥
कहत कमाल कबीर का बालका करम के रेष पर मेष मारी।

स० १८५२ के पत्र से उद्धृत*

१३० लक्ष्मीदास—(पृष्ठ ४६) यशोधर चरित्र और श्रेणिक चरित्र इन दो रचनाओ का परिचय दिया गया है, जिसका रचना काल क्रमश स० १७८१ और १७३३ है। पृष्ठ ४६ पर ग्रथकार पर जो टिप्पणी दी है उससे निम्न बातें प्रकट होती हैं—

(१) यशोधर चरित्र भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति ने सस्कृत भाषा में निबद्ध किया था, जिसका आधार पण्डित लक्ष्मीदास ने अपने हिन्दी के यशोधर चरित्र में लिया।

(२) श्रेणिक चरित्र जि मूलरूप में शुभचद्राचार्य ने सस्कृत भाषा में लिखा, लक्ष्मीदास ने इसे हिन्दी भाषा में रूपान्तरित किया।

सूचित तथ्य सर्वथा निर्भ्रान्त नही है प्रत्युत वैषम्य को लिए हुए है। यशोधर चरित्र की प्रशस्ति डा० कस्तूरचद कासलीवाल द्वारा सपादित और जयपुर से प्रकाशित 'प्रकाशिस्त सग्रह' में पृष्ठ २५० पर प्रकाशित है। उससे पता चलता है कि खोज विवरण के अन्वेपक महोदय ने अपने विवरण में प्रशस्ति का पर्याप्त भाग छोड दिया है,

*इस रेखते का शुद्ध रूप यह है जो कबीर की रचनाओ मे मिलता है।

ज्ञान को गेंद कर सुरति को डडकर खेल चौगान मैदान माही।
जक्त की भरमना छोडदे बाल के आय जा भेख भगवत माही।
भेख भगवत की सेस महिमा करें सेस के सीस पर चरन डारें।
कामदल जीति कैं कँवल दल सोधि कैं ब्रह्म को बेधि कैं क्रोध मारें।
पदम आसन करें पवन परचैं करें गगन के महल में मदन जारें।
कहत कबीर कोई सतजन जौहरी करम की रेख पर भेख मारें।

कबीर बचनावली, पृष्ठ, १०२। —स०।

जो ऐतिहासिक सूचनों को लिए हुए था। जो भाग विवरण में उद्धृत है, उसे भी ठीक से न समझ सकने के कारण न केवल कवि परिचय में ही भ्रान्ति हो गई, अपितु नवीन उद्भावना भी कर डाली गई। शंका यहाँ तक घर कर गई कि यशोधर चरित्र का हिन्दी अनुवादक क्या सचमुच लक्ष्मीदास है ?

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति ने कोई यशोधर चरित्र संस्कृत भाषा मे रचा था ? यों तो वह अपने समय के समर्थ विद्वान थे, पर यशोधर चरित्र इन द्वारा रचा गया आज तक नहीं सुना गया सूचित चरित्र की विवरण में दी गई अंतिम प्रशस्ति के परीक्षण के बाद भी यह तथ्य तो प्रकट ही नहीं है कि इनके द्वारा रचित यशोधर चरित्र का सहारा लक्ष्मीदास ने अपने अनुवाद में लिया हो, जब कि विवरण में विशेष ज्ञातव्य प्रस्तुत करते हुए लिखा है संस्कृत मूल ग्रंथ के रचयिता भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति है और पद्यबद्ध कर्ता पं० लक्ष्मीदाम, जैसा कि निम्नलिखित पंक्तियों से प्रकट है--

सांगानेर सुथान में मूलनाद्रक थानं ।
भट्टारक देवेंद्रकीरति की जिहि आनू ।।
पंडित लक्ष्मीदास जी तिन पर इह कीन्हों ।
रहस्य सकलकीरति महा मुनिवर को लीन्हों ।।*

पद्य में स्थान का पाठ ही अशुद्ध है। वस्ततुः "मूलनाद्रक" के स्थान पर मूलनाइक शब्द होना चाहिए, तभी स्पष्ट अर्थबोध होगा। साँगानेर सुभ-शुभ स्थान में "मूलनाइक" प्रधान स्थान है, जहाँ घट्टारक देवेन्द्र कीर्ति की अ "आँनूं" आन आज्ञा-शासन प्रवर्तता है। इसी प्रकार भाव कवि ने अपनी अन्य रचनाओं मे, साँगानेर की गद्दी--मूलनाइक स्थान-पाट के प्रति आदर व्यक्त किया है जैसा कि निम्न पद्यांश से प्रतीत होता है--

जा मधे श्री मूलनायक थांनि सामै भवि जीवां सुखदानि ।

सवैया

संघमूल जानि गछ सारदा वखांनि गण जु बलातकार जांनौ मन लायकै ।
कुंदकुंद मुनि की सु आमनायं माँहि भये देवेद्रकीर्ति पठष्यतर पायकैं ।।
जिन सु भये नांम लिखमीदास चतुर विवेकी श्रुत ज्ञान कूं उपाय कै ।

तात्कालिक भट्टारकों की परम्परा पर दृष्टि केंद्रित करने से विदित होता है कि उन दिनों साँगानेर में घटेटारक देवेन्द्रकीर्ति का आध्यात्मिक शासन था जिनका पट्टामिषेक सं० १७७० अम्बावती--आँमर मे हुआ था। ये द्वितीय देवेन्द्रकीर्ति थे। इससे पूर्व प्रथम भट्टारक का भी यही नाम था। उपर्युक्त उद्धरणों से पं० लक्ष्मीदास का ग्रंथ कर्तृत्व सिद्ध नही होता, बल्कि जिस आचार्य की कृति का प्रभाव कवि ने स्वीकार किया है उसकी सूचना मात्र है, आगे के पद्य से और भी बात स्पष्ट हो जाती, पर अन्वेषक महोदय ने वह महत्वपूर्ण अंश ही छोड़ दिया या उस पर ध्यान देना समुचित न समझा गया हो। सकलकीर्ति कृत संस्कृत यशोधर चरित्र से कवि ने अपने

*खोज विवरण पृष्ठ २२५ ।

अनुवाद को पल्लवित किया है। एक और कवि का भी नाम दिया है, वह पद्य ही प्रशस्ति से गायब है। वह इस प्रकार है—

पदमनाभ काईच्छ को कछ इक आसारो।
लीन्ह है इस ग्रथ में भविषण सखकारो॥

इस पद्य में कवि पद्मनाभ का ऋण स्वीकार किया है।

सूचित पक्तियो से स्पष्ट हो गया कि सकलकीत और पद्मनाभ निर्मित सस्कृत कृतियो भाव ग्रहण कर कविवर ने हिन्दी का सृजन किया। देवेन्द्रकीर्ति का उल्लेख केवल तात्कालिक उनके प्रामुख्य का ही परिचायक है। ग्रथ कर्तृत्व से कोई सबध नहीं।

अब यहा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आलोच्य यशोधर चरित्र (हिन्दी) का वस्तुत प्रणेता कौन है? खोज विवरण का निम्न उल्लेख विचारणी है—

दिल्ली सहर विषै भलो जैसिंघपुर जाण
सुदर नद पुर्यालि ए रह बना वह रानी।

जब यह कृति प० लक्ष्मीदास की है तो ऊपर की पक्तियाँ क्या अर्थ रखती हैं? इनसे तो ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी यशोधर चरित्र का प्रणेता या अनुवादक सुदर का पुत्र खुशाल है। इसी आशय के भाव खुशाल या खुशालदास ने अपनी अन्य रचनाओ में व्यक्त किये है। यह खुशाल सुप्रसिद्ध हिन्दी लेखक और कवि प० खुशालचद काला ही हैं। ये प० लक्ष्मीदास के शिष्य थे जैसा कि वे स्वय अपनी रचनाओं में इन शब्दो को स्वीकार करते हैं—

दोहा

दक्षिण दिसि कट मैं जो सु कह्यो आवास।
तिस मदिर माही रहै पडित लक्ष्मीदास॥[१]

सवैया

देव इद्र की रति भये जु मूलसघ भट्टारक को पदस्थ जाको सोहितु है।
पुजा रु प्रतिष्ठा करवाई अति सर्भकार मोहनी सुमूरति लखें तें मोहितु है॥
जाहि के सु गच्छ माहि पडित श्रीयु जु दास बानी कामधेनु तें सु ग्यान दोहिइतु है।
खिमावान ग्यानवान पडित विवेकवान रीति घोस आगम विचार दोहिइतु है॥

ऐसे लिखमीदास ढिग में कुछ पढ्यो सुग्यान।
पठन कीयौ मो बुध लौं वे तो ग्यान निधान॥
तिनि ही के उपदेश तें भाषा सार बनाय।
श्रुतसागर ब्रह्मचार कौ सुभ अनुसार सुनाय॥

प्रशस्ति सग्रह पृष्ठ, २५६।

---

१ भट्टारक सकलकीर्ति १५वी शती के अपभ्रश, सस्कृत, प्राकृत और देश्य भाषाओ के प्रतिभासपन्न विद्वान् कृति कार थे। इनका शिष्य परिवार वैदुष्यगुण से परिपूर्ण रहा है। अपने प्रभाव और विद्वत्ता के बल पर इन ओर अभिवृद्धि।

यदि आलोच्य यशोधर चरित्र लक्ष्मीदास की कृति होती तो वह कम से कम अपने लिए 'जी' बहुमान सूचक शब्द का प्रयोग कदापि न करते। राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची, भाग ३ पृष्ठ १८ पर लक्ष्मीदास रचित यशोधर चरित्र की एक प्रति का उल्लेख है, पर वह प्रति दृष्टव्य है। कहीं वहाँ विवरणकार की भूल तो नहीं दोहरा दी गई है।

पं० खुशालचंद काला प्रणीत यशोधर चरित्र की अनेक प्रतियाँ जयपुर के दिगम्बर जैन ज्ञाननागारों में वर्तमान है। उनमें दो प्रतियाँ ऐसी हैं, जिनमें प्रणयन काल सं० १७७५ दिया है। इनमे से एक तो कवि के ही कर-कमलों द्वारा अंकित है। इसी लेखक की इस रचना की एक ऐसी प्रति भी है जिसका रचना काल सं० १७८१ है और प्रतिलिपिकाल सं० १७९६ है पुष्पिका इस प्रकार है—

"मितीआसोज मांसे कुष्लपक्षें तिथि पडवा वार सनिवासरे संवत १७९६ छिनवा। श्रे० कुशलाजी तत्शिष्येन लिपिकृतं पं० खुस्यालचंद श्री घृतघिलोलजी कें देहरै महाराष्ट्रपुर मध्ये परिपूर्णा॥" राज० जैशा० सूची भाग ४ पृष्ठ १९१ शेष प्रतियाँ सं० १७८१ कार्तिक सुदि ६ या ८ की रचना की परिचायिता है समस्त प्रतियों का अध्ययन अपेक्षित है।

अभी जो सामग्री उपलब्ध है इससे तो यही प्रमाणित होता है कि आलोच्य यशोधरचरित्र खुशालचंद काला द्वारा रचित है और इनने गुरु भक्ति से प्रेरित होकर लक्ष्मीदास के नाम का समावेश अंतिम प्रशस्ति में किया, यदि इसे पं० लक्ष्मीदास की रचना मानें तो पं० खुशालचंद का उल्लेख किस प्रसंग में किया गया?

कतिपय खोज विवरणों में और अन्य इतिहासो मे इन्हें सांगानेर निवासी बताया गया है, पर इनकी रचनाओं से ही सूचित होता है कि ये तो दिल्ली जयसिंहपुरा के निवासी थे और कभी-कभी अपने गुरु के पास आकर अधिक समय तक ठहरते थे एवं साहित्य रचना भी करते रहते थे, यही कारण है कि इनकी कृतियों में दोनों स्थानों का उल्लेख आता है।

पं० खुशालचंद काला की अन्य रचनाओं का परिचय दे देना इसलिये आवश्यक जान पड़ता है कि अनेक खोज विवरणों मे इनकी कृतियों का उल्लेख हुआ है और परितो भ्रामक रहना स्वाभाविक ही है क्यों कि अन्वेषक और निरीक्षक परिचय खेत समय तत्संबंधी अन्य साधनों पर तो दृष्टिपात करते ही नहीं है।

(१) अनन्तव्रत कथा।

(२) व्रतकथा कोश सं० १७८७ फागुन वदि १३ को पूर्ण किया।

(३) पद्मपुराण भाषा, कवि ने इसमें ५३ पद्यों की प्रशस्ति में आत्मवृत्त दिया है।

(४) रविव्रत कथा सं० १७७५।

(५) उत्तरपुराण सं० १७८९ संगसर सुदि १०।

(६) पल्यविधान कथा सं० १७८७ फागुन वदि १०।

(७) पुष्पाजली कथा ।
(८) धन्यकुमार चरित्र ।
(६) ग्रथ सुभाषित ।
स्फुट पदादि ।

श्रेणिकचरित्र के कर्ता लक्ष्मणदास कोई चाडवाल गोत्रीय पडित जान पडते हैं। इनने शुभचद्राचाय कृत सस्कृत चरित्र का भावानुवाद स० १७३३ में प्रस्तुत किया। ये रणथभौर दुर्ग के निकटस्थ शेरपुर के निवासी थे। दशरथ पुत्र सदानन्द की प्रेरणा से यह रचा गया। ये लक्ष्मीदास खुशालचद काला के गुरू से भिन्न ही प्रतीत होते हैं। खोज विवरण में दोनो को एक मान लिया गया है। स० १७३३ के रचनाकार स० १७८१ तक के मध्यवर्ती काल में मौन रहें किसी भी प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्ति से अपने आपको बचाये रखे, यह कम समझ में आने वाली बात है। यह स्पष्ट हो गया कि लक्ष्मीदास कोई अन्य कवि जान पडते हैं।

१४६ मोतीराम—(पृष्ठ ४६) इनके नवोपलब्ध कवित्तो का सग्रह मिलता है। परिचय में बताया गया है कि "ये भरतपुर के महाराजा बलवर्तसिंह के आश्रित थे। स० १६२७-१६५७ तक उनके दरबार में थे"। यह कथन सही नही। स० ६१० में ही महाराजा बलवर्तसिंह की मृत्यु हो चुकी थी। इनका राज्य काल स० १८८३-१६१० तक का रहा है। जिस "व्रजेंद्रविनोद" का उल्लेख परिचयकार ने किया है वह कवि मोतीराम ही स० १८६५ में बलवर्तसिंह के लिए रचा था जैसा कि कवि ने स्वय अपनी रचना के इन शब्दो में स्वीकार किया है—

गारँसे पिच्यासिया सवत यो पहचानि ।
फाग सुदि पाचैं रवौ कीनौं ग्रथ बखानि ॥

व्रजेंद्रविनोद की अन्त्य प्रशस्ति में कवि का विशिष्ट परिचय इस प्रकार है—

ये भरतपुर निवासी सुप्रसिद्ध कवि रामलाल या राम के पितामह मुद्गल गोत्रीय रघुवरदास के पुत्र थे। रणधीरसिंह और तत्पुत्र बलवर्तसिंह की राज्य सभा के ये कवि थे। तात्कालिक विद्वत्परिषद् के मूर्द्धन्य और भरतपुर की साँस्कृतिक परम्पराके प्रतीक सम श्रीधरानद घासीरामजी इन के और राम कवि के विद्यागुरुथे। (मोतीरामजी की एक अज्ञात रचना "चंद्रवश की वशावली" का सपादन इन पक्तियो का लेखक कर चुका है।) इन की हस्तलिपि मेरे सग्रह मे विद्यमान है।

२०० शिरोमणि (पृष्ठ ५८) इनकी रचना "धर्मसार" का परिचय दिया गया है। रचना काल स० १७५१ आगरा बताया है। जयपुर से प्रकाशित शास्त्र भडारो की सूची मे इसका प्रणयन समय स० १७३२ बताते हुए यह पद्य उद्धृत किया है——

सवत १७३२ वैशाप मास उज्जल पुनि दीस
तृतीया अक्षय शनीसमेत भविजन का मगल सुप देत

जयपुर सूची भाग ३ पृष्ठ २६

उर्वशी नाममाला के प्रणेता निश्चिय ही इन से भिन्न हैं। वे तो माथुर विप्र थे। शाहजहाँ के समय से ही इनका आदर मुगल राज्य में होता था। सं० १७३७ की प्रतिलिपित, "उर्वशी नामाला" की एक प्रति मेरे संग्रह में सुरक्षित है।

२०३ **शिवलाल** (पृष्ठ ५९) इस कवि को "कर्मविपाक" का अनुवादक माना गया है, पर अंतिम पुष्पिका (पृष्ठ ३२७) से तो वह प्रतिलिपिकार मात्र मालूम पड़ते हैं।

२०५ श्रीघरानन्द (पृष्ठ ५९) खोज विवरण मे "ये भरतपुर के रहने वाले थे और इन्हों ने अलंकार विषय पर "साहित्यसार चितामणि" नामक ग्रंथ की रचना की। इन्होंने कुछ राजाओं और महाराजाओं का अपने आश्रयदाता के रूप मे उल्लेख किया है"। विवरण पृष्ठ ५९। इनका विशेष परिचय इस प्रकार है--

यह भरतपुराधीश महाराजा सूरजमल्लकी महारानी किशोरी के दानाध्यक्ष श्री मिश्र रामलाल के पुत्र थे। इनका जन्म नाम घासीराम था जैसा कि इन्होंने अपनी अन्य संस्कृत रचनाओं मे स्वीकार किया है।

मिश्रबंधु विनोद भाग २ पृष्ठ ६०७ पर घासीराम जी का उल्लेख करते हुए इनका कविता काल सं० १८१० और मृत्यु काल-सं० १८१५ सूचित किया है। समसामयिक अन्यान्य एतिहासिक साधन और कवि द्वारा अपनी रचनाओं में प्रयुक्त संवतों से विनोदकार का कथन अप्रामाणिक ठहरता है। कवि के समय आदि के विषय में अधक कल्पना की आवश्यकता ही नही है वह अपनी रचनाओं मे अपने विषय मे अपेक्षित प्रकाश डाल चुके है। सं० १८१५ में तो वह जन्में भी होंगे या नही? यह प्रश्न ही है। भरतपुर कवि रामलाल या राम और संख्या १४६ वाले कवि मोतीराम इनके शिष्य थे--

घरानन्द के विद्यागुरु भरतपुर की तात्कालिक संस्कृत पाठशाला के प्रधान अध्यापक पं० परमानन्द थे जैसा कि वह स्वंय अपनी रचनाओं में "दशविद्या महिम्न स्तोत्र, तत्वप्रकाश, व्यासस‍त्रार्थचंद्रिका और अनर्घराघव (रचना काल सं० १८७२)" उल्लेख कर चुके हैं।

ये भरतपुर नरेश रणजीतसिंह के कुवर बलदेवसिंह के यह विद्यागुरू नियुक्त किये गये थे। प्रस्तुत खोज विवरण मे जो "साहित्यसार चिंतामणि" का उल्लेख किया है

---

१. श्री मतघासीराम पद पदम सुभृग मकरंद।
तिह सिर धरि भाषा रचौं बहु विधि छंद प्रबंध॥ राम कवि रचित छंदसार से।

२. घरानन्देनाथ प्रवर परमानंद मुरुतो विदलव्धवा शुद्धा भरतनगरे विप्रलसिते॥
दशविद्या महिम्न स्तोत्

३. गुरू श्री परमानंदौ भमौविजयतेतराम।
यत्पादाब्ज परागस्य सेवनादर यह सुखी॥ श्री रामवल पुत्रस्य घरानन्दस्य निर्मितिः॥

४. श्री शंकर गुरू नत्वा परमानंद पदद्वयभ।

५. स्वगुरू परमानंद नत्वादरतः स्वकीये पितरौ च

वह इसी वलदेवसिंह के लिये वनाया गया था । ग्रथ में प्रत्येक प्रकरण की समाप्ति पर यह पद्य पाया जाता है—

श्रज चंद सूरज नद श्री रणजीतसिंह नरिंद है ।
वलदेवबुद्धि विलद ताकौ पुत्र सब कक है ।।
तिहि प्रीति सो साहित्य सग्रह सार चितामणि नयो ।
श्री धरानद कवीश कृत पिंगल प्रभा करि हित भयो ।।

इति श्री साहित्यसार चिंतामणी श्री महाराजा वृजेंद्र रणजीतसिंह कुमार वलदेवसिंह हेतवे श्री धरानदकवीद्र कृते पिंगल निरूपण नाम प्रथमा प्रभा पूणतामगात् १"

खोज विवरण में पृष्ठ २६ पर जो कहा गया है कि इसमें "कुछ राजाश्रो श्रौर महाराजाश्रों का श्राश्रयदाता के रूप में उल्लेख किया है" यह कथन विल्कुल असत्य है । पूरे ग्रथ का अत परीक्षण करने पर भी श्रौर किसी भी राजा या महाराजा का नाम श्राश्रयदाता के रूप में दृष्टिगोचर नही हुश्रा, हाता भी कैसे ? जव कवि भरतपुर के राजा को छोड कर कही गया ही नही तो यह कल्पना अन्वेषक महोदय ने न जाने किस श्राधार पर कर डाली ?

कविने अपनी रचनाश्रो में घासीराम, धरानद श्रौर कवी या राजकवि के रूपमें अपना उल्लेख किया है । इनकी रचनाएं प्रचुर परिमाण में मिलनी चाहिए, जो अज्ञात रचनाएँ मेरे अवलोकन में श्राई है वे इस प्रकार है —

दशविद्या, महिम्न स्तोत्र, अनघराघव वृत्ति, मृच्छकटिक विवरण, मदालसा विवरण, व्याससूत्रार्थ चद्रिका, कर्पूरजरी व्याख्या (अपूर्ण) द्वादशमासी श्रादि । इनकी लिपि सुदर श्रौर सुपाठ्य थी । ऊपर की पंक्तियो में मैंने कवि की जिन रचनाश्रो का सूचन किया है वे सब कवि के ही हस्तलेख में है । इन्होने नहतामी ५०० सौ से अधिक प्रतिलिपियाँ की होगी । इनका निजी पुस्तकालय इतना बडा था कि शायद ही कोई विषय ऐसा होगा जिस की पूर्ति इस सग्रह द्वारा न होती हो ।

यहा प्रसगत सूचित करना श्रावश्यक जान पडता है कि इस नाम के चार श्रौर भी विद्वान् हुए है, पर विस्तार भय से उनका परिचय देना सभव नही ।

२०६ श्रीकृष्ण भट्ट—(पृष्ठ ५६) इनकी रचना "शृंगार रस माधुरी" का परिचय दिया है जो वृ दावती बूंदी नरेश राव वुधसिंह के लिए रची गई थी । इत पूर्व खोज विवरण (सन् १६०६-११, स० ३०१) में सांचरयुद्ध नामक ग्रथ के रचयिता भी एक कृष्ण भटट का उल्लेख है जो जयपुर के महाराजा जयसिंह तृतीय के श्राश्रय में रहते थे । पता नही वे प्रस्तुत रचयिता ही है या अन्य कोई" ।*

---

१ कवि ने रचना में रचना काल नहीं दिया है, पर "भरतपुर कवि कुसुमाजली" के सपादक श्री कुजविहारीलाल गुप्त ने रचना काल स० १८७२ वताया है पर उसका श्राधार अज्ञात है ।

२ प० घासीराम श्रौर उनका साहित्य शीपक मेरा निवध देखना चाहिए ।

*खोज विवरण पृष्ठ ५० ।

सर्व प्रथम यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि गग शृंगाररस माधुरी और "साँभरयुद्ध" के पणेता श्रीकृष्ण भट्ट एक ही व्यक्ति हैं। संस्कृत और देश्य भाषा के यह धुरंधर विद्वान थे। इन ने अपने प्रशस्त वैदष्य के बल पर राज सभाओं में यशार्जन किया था बूंदी के राव बुधसिंह ने इनकी प्रतिभा से आकष्ट होकर ही अपने पास रख लिया था जैसा कि कवि हरिहर भट्ट रचित कलानिधि वंशपरिचयसूचक "कुल प्रबंध" के निम्न पद्य से फलित होता है—

श्रीकृष्णभटेटस्तनयस्तदानी श्रीलक्ष्मणादाहित लक्षणोऽभूत ।
बशीकृतो येन गुणैरूदारैबुंदीपतिः श्रीबुधसिंहभूपः ।।

कवि श्रीकृष्ण भट्ट ने बूंदी में रह कर "विदग्धरसमाधुरी" का भी प्रणयन किया था। दोनों माधुरियों में बुधसिंह की यशोगाथा वर्णित है। इनके अतिरिक्त "अलंकार कलानिधि" में भी उपर्युक्त नरेश की प्रशंसा इन शब्दों की है—

राव अनिरुद्धसिंह जके राव बुद्धसिंह,
रावरे सबल दल चलत तमक सों।
लाल कवि तित के भवाल पयमाल होत,
खूंदे हयभाल खुरताल की झमक सों।।
भारे हैत बारिधि अँध्यारे धर धार उजि,
यारे दामिनी के असि कारे की दमक सों।
गारे परें नदिन पगारे परैं बारिधिन,
गारे परैं अरित नगारे की धमक सों।।

कवि कालिक राजस्थान का राजनायिक बातावरण बहुत ही क्षुब्ध था। संघर्ष की धारा बड़े वेग से वह रही थी। बुधसिंह आबेरपति जयसिंह के बहनोई थे तथापि दोनों पारस्परिक संबंध अच्छे नहीं थे। इसका किंचित आभास कविवर रचित "ईश्वर-विलास" के सर्ग ७ और १२ से मिलता है। पर जयसिंह विद्यानुरागी और गुणपूजक नरेन्द्र थे। वे श्रीकृष्ण भट्ट जैसे प्रतिभा संपन्न कवि को अपनी सभा का रत्न बनाना चाहते थे, परिणामतः बुधसिंह से माँग कर अपनी सभा को गौरवान्वित कर ही लिया। इसका समर्थन कवि के प्रपौत्र श्री वासुदेव भट्ट द्वारा रचित "राधाख्य चंद्रिका" के इस दोहे से होता है—

बूंदीपति बुधसिंह सौं लायै मुखयों जाचि ।
रहे आइ आम्बरे में प्रीति रीति बहु भाँति ।।

आंबेर आने के बाद ही कवि ने "अलंकार कलानिधि" नामक कृति का प्रणयन किया। प्रत्येक कला की समाप्ति पर यह पंक्ति उल्लिखित है—इति श्रीमहाराजाधिराज-महाराज श्रीसवाई जयसिंह वचना डडजप्तकविकोविदचुडाणि श्रीकृष्ण कविकलानिधि विरचिते अलंकारकलानिधा रस ध्वनि निरपणम्र इत्यादि।

इस कृति का आधार स्तंभ काव्य प्रकाश है। परन्तु स्मरणी है कि काव्य प्रकाश के उद्भट टीकाकार कठिन स्थानों के मार्मिक तथ्योद्घाटन में जहाँ कृत कार्य न हो सके थे उन स्थानों की विशद व्याख्या इस कृति की मौलिक विशेषता है।

उदाहरण सहित हावभाव, काव्य लक्षण, शब्दार्थ निरूपण, अर्थव्यंजना, रसलक्षण, व भेद, ध्वनि निरूपण अधम काव्य शब्द और अर्थ चित्रण, गुण निरूपण, नवीन एवं प्राचीन काव्यशास्त्रियो के अभिमतो से गुणों का स्वरूप व भेद प्रभेद, अलकार दोष, नायक नाइका भेद आदि गभीर समीचीन समीक्षण अन्यत्र प्राय दुर्लभ है।

अपने समय के बहुराजमान्य पडित श्रीकृष्ण के जीवन पर आंशिक प्रकाश हरिहर भट्ट ने डाला है तथापि इनके प्रारभिक वैयक्तिक काल पर तिमिर का आवरण पड़ा हुआ है। साहित्यिक जीवन के क्रमिक विकास पर प्रकाश डालने वाली सामग्री इनकी कृतियों को छोड़ कर अन्यत्र अप्राप्त है। यो तो इनकी १६ रचनाएँ उपलब्ध की जा चुकी है पर मेरा अनुमान है कि इनका और भी साहित्य मिलना चाहिए। जहाँ-जहाँ कविवर रहे हैं वहाँ के प्राचीन ज्ञानागारो में अन्वेषण अपेक्षित है, इन पक्तियो के लेखक को अनायास ही शोध यात्रा में इनकी दो महत्वपूर्ण रचना प्राप्त हो गई थी, इनमें से एक तो इनके प्रारभिक साहित्य रचना काल पर प्रकाश डालती है। कवि ने अपनी कई रचनाओ में रचना काल सूचित नही किया है यह भी इनकी साहित्यिक विकासात्मक अन्वेषणा में बहुत बडी बाधा है अब तो एक ही मार्ग रह जाता है कि इनकी कृतियो की प्राचीन से प्राचीन प्रतियाँ कब तक की उपलब्ध होती हैं। यह अनुसधान का विषय है। इनकी प्रथम रचना कौन सी है। कहने का साधन नही है।

कवि का जन्म काल अज्ञात है। प्रो० कठमणिजी शास्त्री ने अनुमित जन्मकाल स० १७२५ (उत्तर भारतीय आन्ध्र (तैलग) भट्ट वशवृक्ष) की भूमिका पृष्ठ ५३ स० १७४० या ३५ लगभग माना है। अनुमानत वह ३०-३२ वष की अवस्था में बूदी गये होगे। द्वितीय अभिमत उपयुक्त पतीत होता है। कारण कि मेरे सग्रह में कवि कृत "हरिनाम मौक्तिकमाला" की एक प्रति स० १७६६ की जैन मुनि प्रतापविजय द्वारा प्रतिलिपित है। कवि की अद्यावधि प्राप्त रचनाओ की प्रतियो में यही प्राचीनतम ज्ञात होती है। इसकी रचना ३० वर्ष की वय की मानी जाय तो श्री मथुरानाथजी का अनुमान ठीक बैठता है। सभव है वैदुष्य और यौवन समन्वित व्यक्तित्व ने बूंदीपति को आकृष्ट किया हो। जीवन का माधुर्य तभी तो माधुरियो में प्रवाहित हुआ है।

वृतमुक्तावली, पद्यमुक्तावली, सुदरीस्तवराज, ईश्वरविलास, वेदान्तपचविंशति अलकार कलानिधि, साभरयुद्ध, जाजऊ जुद्ध, बहादुर विजय, शाररस माधुरी, विदग्ध रस माधुरी, उपनिषद् की गद्यात्मक टीकाए, रामचद्रोदय, नखशिख, दुर्गाभक्ति तरगिणी, वृतचद्रिका, आदि कवि की यश कीर्ति को अमर करने वाली रचनाएं हैं—

इनके अतिरिक्त और गीतिकाव्य विषयक कृति है "रामगीत"। अन्य ज्ञानागारों में भी इसकी कई प्रतियाँ मिलती हैं।

भट्टारक और हेमराज में कालिक साम्य है। विश्व भूषण अटेर के पाटाध्यक्ष थे। जगद्भूषण इनके गुरू थे। मपने "राजस्थान के अज्ञात साहित्य वैभव" में विश्व-भूषण और उनके साहित्य विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

हेमराज अच्छे गद्यकार और कवि थे। सुप्रसिद्ध रूपचद पांडे इनके गुरू थे। गणितसार, गोमटटसार, द्रव्यसग्रह, (र० का० १७३१ माघ सुदि १०) पचास्ति काय,

नयचक्र भाषा, प्रवचनसार, आदि इनकी कृतियाँ है। प्रस्तुत खोज विवरण में भी इनकी दो रचनाओं का परिचय दिया गया है सं० ८७। आदि नाथ स्तोत्र और भक्तामर स्तोत्र को परिचयकार ने दो भिन्न कृति माना है, पर वास्तविक रूप से दोनों एक ही कृति है। आदिनाथ स्तोत्र का ही नाम भक्तामर स्तोत्र है।

यहाँ पर एक बात का स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है कि जयपुर से प्रकाशित सूची भाग ४ पृष्ठ ६५७ पर इसी हेमराज कृत बावनी का उल्लेख है, परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि वह कृति इस हेमराज कृत न होकर श्वेताम्बर मुनि उपाध्याय हेमराज की है। समान नामा कवि की रचनाओ मे ऐसी स्खलनाएँ आमतौर से हो ही जाया करती हैं। प्रत्येक खोज कर्त्ता से सावधानी की अपेक्षा भी कैसे की जाय? जहाँ महारथियों थोड़े से प्रमाद में भयंकर भूल ही नहीं हो जाती, प्रत्युत उसकी परम्परा चल जाती है। अब इसके प्रमाण की, कम से कम यह तो आवश्यकता नही हैं।

२०३ **वीतरागदेव**—(पृष्ठ ६४) "जैन सिद्धान्त विषयक रचना "ग्रंथ सुभाषित"[1] के ये रचयिता खोज मे नवोपलब्ध हैं। ग्रंथ की रचना संबत १७९५ वि० में हुई थीं जिसकी प्राप्त प्रति सन् १७९९ की लिखी हुई है।"

सर्व प्रथम यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि ग्रंथ सुभाषित जिस भाषा मे उपलब्ध हुआ है उसका प्रणेता कोई वीतराग देव नामक व्यक्ति नहीं है। पर वीतराग कथित्त धार्मिक सिद्धान्तों को अभिव्यक्ति करनेवाला यह संस्कृत भाषा का संग्रहात्मक ग्रंथ अवश्य है जिसका अनुवाद पं० खुशालचंद काला ने सं० १७९५ में समुपस्थित किया। इसका वास्तविक नाम तो "सुभाषितावली"[2] है। सन् १९२६-२८ के खोज विबरण मे इसका उल्लेख आ चुका है। पाठ तो उस विवरण में भी बहुत ही भ्रष्ट तपा है।

२३३ **यादवराय**—(पृष्ठ ६६) इनका परिचय कराते हुए खोज विवरण के पृष्ठ ६६ पर लिखा गया है कि ये खोज में नवोपलब्ध हैं। ढोला मारवणी नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ के रचयिता हैं। इनका निवास स्थान जैसलमेर था और इन्होंने प्रस्तुत ग्रंथ की रचना किसी यादवराज हरिराज के लिए की—

"यादवराज श्रीहरिराज। जोड़ातासु कौतुहल काज ॥ जोड़ी जैसलमेर मझार"

इस पद्य का अर्थ पृष्ठ ३८१ पर इस प्रकार दिया है—

अर्थात् जादवराज ने श्रीहरिराज के लिए इस ग्रंथ को जोड़ा। जादवराज जैसलमेर के निवासी मालूम होते हैं जैसा कि वह स्वतः कहते हैं कि ग्रंथ निर्माण वहाँ हुआ—"जोड़ी जैसलमेर मझार" उपर्युक्त उद्धृतांश में सचाई केवल इतनी ही है कि ढोला मारवणी नामक कृति का प्रणयन जैसलमेर मे यादवराज हरिराज के लिए हुआ। शेष वृत्त सर्वथा निराधार ही नहीं बल्कि कपोल कल्पित है। विस्मय की बात तो यह है कि प्रशस्ति के अंत में कर्ता का नाम वहुत ही स्पष्ट है—"वाचक कुशल लाभ इम

१. खोज विवरण पृष्ठ ६४।

२. खुशालचंद काला के लिये देखें इसी परिमार्जन की सं० १३०।

कहइ" । इन शब्दो पर न जाने क्यो अन्वेषक और निरीक्षक महोदय का ध्यान नही गया ? और यादवराज जो रावल हरिराज (वास्तविक नाम हरराज है) का विशेषण है, को इस कृति का प्रणेता मान लिया गया ।

किसी हरिराज का ऊपर नाम आया है वह और कोई नहीं जैसलमेर के राजकुमार, जो राउल मालदेवजी के पुत्र थे, है और यादवराज इनका विशेषण है । जैसलमेर के शासक यदुवशी है, यह शायद ही बताने की आवश्यकता रहती हो । हरराज का राज्यकाल स० १६२८-१६३४ तक का रहा है । ये लोक कथाओ के विशिष्ट अनुरागी थे । इन्ही के लिए खरतगच्छीय वाचक कुशलाभ ने वि० स० १६१७ में जैसलमेर "ढोला मारवणी" का प्रणयन किया । यह कथा "आन द काव्य महोदधि"[1] काव्यमाला के सप्तम गुच्छक में प्रकाशित है जिसकी अतिम प्रशस्ति का आशिक भाग यहाँ उद्धृत करना आवश्यक जान पडता है—

जादव राउल श्रीहरिराज । जोडी तास कुतुहल काज ॥
सवत सोल सत्योत्तर वरप । आपातीज दिवस मन हरप ॥
जोडी जैसलमेर मझार । वार्ता सुप पामें ससर ॥
चतुर सुगुणई मन गह गहे । वाचक कुशललाभ इम कहे ॥

ढोला मारवणी के प्रणेता ने इसी राजकुमार हरराज के लिए एक और लोककथा का निर्माण किया था जिसका नाम है—माधवानल कामकुदला चौपाई ।[2] इसका अतिम भाग इस प्रकार है—

सवत सोल सतोहतरइ । जैसलमेर मझारि ।
फागण वदि तेरसि दिवस । विरची आदितवारि ॥
गाहा दूहा चापाइ । कविता कथा सवध ।
कामकुदला कामिनि । माधवानल सवध ॥
कुशललाभ वाचक कहइ । सरस चरित्र सुप्रसिद्ध ।
राउल माल सु पाटधर । कुमर श्रीहरिराज ॥
विरचि ए सिणगार रस । तास कुतुहल काज ।

कवि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार है—

(१) तेजसार रास रचना काल स० १६२४ वीरमपुर ।
(२) अगडद रास „ „ „ १६२६ „ ।
(३) स्तभन पार्श्व स्त० ।
(४) नवकार छद ।
(५) भवानी छद ।
(६) गोडी पाश्व छद ।
(७) श्रीपूज्यवाहण गीत ।

---

१ आनन्द काव्य महोदधि भाग ७ पृष्ठ ६५ ।
२ आनन्द काव्य महोदधि भाग ७ पृष्ठ १८४-५ ।

कवि जैन मुनि था अतः उनके जैसलमेर के निवास होने का प्रश्न ही नहीं उठता, जैसा कि खोज विवरण में उसे इस नगर का निवासी लाया है। कुशललाभ लोककथा साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् थे पर अन्य कवियों के समान इन ने अपना परिचय किसी भी कृति में विस्तार से नहीं दिया, केवल तेजसार रास की अंतिम प्रशस्ति में इतना ही सूचित किया है कि वे उपाध्याय अभयचंद या अभयधर्म के शिष्य थे।

श्रीखरतरगछि सहि गुरू राय गुरू श्रीअभयचंद उवझाय।
सोलहसइं चौवीसइं सार श्रीवीरमपुर नयर मझार ॥१४॥
अधीकारइजिन पूजा तणइ वाचक कुसललाभ इम भणइ।
जे वाचें नइ जें साँभलई तेहनाँ सहू मनोरथ फलई ॥१५॥

इति श्रीतेजसाररास पूजा विषये संपूर्ण ॥ संवत १७६५ परष मास पोसे विद अमास दिनें गुरुवारे समाप्त।*

१० **बनारसी**—(पृष्ठ) कविवर बनारसी की रचनाओं का परिचय देते हुए वैराग्यपचीसी का भी, समावेश उन्हीं की कृतियों में कर दिया गया है। यद्यपि कालिक वैशम्य है, विवरणकार का मन तो इसे सुप्रसिद्ध बनारसी की रचना मानने में झिझकता रहा है, पर विशेष श्रम न कर जैसे कोई विश्लेषक पिंड छुड़ाता है वैसे उसने यह लिखकर संतोष कर लिया कि जो कुछ भी हो प्रस्तुत बनारसी भी जैनी ही थे इसका अर्थ तो यही माना जायगा कि यह रचना किसी अन्य बनारसी की है। शोध करने पर भी दूसरे बनारसी का पता न चल सका, चलता भी कैसे? आश्चर्य तो इस बात पर है कि पूरी रचना में कहीं भी बनारसी का नाम तक नहीं है, बल्कि इसके विपरीत प्रणेता का नाम कृति में विद्यमान है—भैया की यह विनतीपृष्ठ ६.१३

यहाँ भैया शब्द से तात्पर्य है भैया भगवतीदास से, जो कविवर बनारसी के साथी सत्संगी थे। पांच मित्रों में इनका स्थान तीसरा था। वह आगरा निवासी ओसवाल थे हिन्दी के अच्छे कवि और गद्यकार थे। इनका साहित्य रचना काल सं० १६८७—१७५५ तक का रहा है। नाटक समयसार के अतिरिक्त सं० १७११ मे पं० हीराचन्द प्रणीत पंचास्तिकाय में इनका उल्लेख है। जिस प्रकार बनारसी विलास में बनारसी के ग्रंथों का संकलन किया गया है ठीक उसी प्रकार भैया भगवतीदास की ६७ कृतियों का संग्रह ब्रह्मविलास में दृष्टिगोचर होता है।

१६ **चरणदास**—(पृष्ठ) समस्त खोज विवरणों में प्राप्त ग्रंथों में इन ने अपने आपको शुकदेवजी का शिष्य वताया है। शुकदेवजी में और चरणदास में कितना कालिक अंतर है, यह बताने की शायद ही आवश्यकता रहती है। ज्ञानापैक्षया वह इनके गुरू थे। स्वामी जी के १०८ शिष्यों में रामस्वरूप भी एक थे। इन्होने गुरू भक्ति से प्रेरित होकर "श्री गुरू भक्तिप्रकाश" नामक स्वामीजी का चरित्र लिखा है। उसमें एक कथा द्वारा बताया गया है कि शुकताल में चरणदास को शुकदेवजी ने दर्शन दिये थे, तभी से वह इन्हें अपना गुरू मानते हैं। चरणदासी संप्रदाय के मुनियों* द्वारा रचित जितनी भी कृतियां

---

*निज संग्रह की प्रति से।

*चरणदासी संप्रदाय में सन्तों की उपाधिमुनि नही होती है।—सं०

अवलोकन मे आई उन सबमे सब प्रथम शुकदेवजी को नमस्कार किया गया है। इस सम्प्रदाय के साहित्य का अनुशीलन वाछनीय है।

३० गोरखनाथ—(पृष्ठ) इनकी रचनाओ का विवरण दिया गया है जिसमे एक योगमजरी भी है इसी नाम की एक कृति इन पक्तियो के लेखक के देखने मे आई है गोरख योगमजरी। प्रणेता के कथनानुसार यह हठयोगप्रदीपिका का हिंदी अनुवाद है इसे देवमुरारि स्वामी के शिष्य नरोत्तमदास या गिरि ने स० १८०० मे बूदी मे प्रस्तुत किया था। अन्य खोज विवरणो मे विचारमाला के प्रणेता अनाथदास के एक मित्र नरोत्तमदासगिरि का उल्लेख मिलता है। अनाथदास ने अपनी रचना में देवमुरारि स्वामी का भी उल्लेख किया है, पर कालिक अतर दोनो में ७५ वर्षो का है। नही कहा जा सकता है कि वह मित्र यही नरोत्तमदास गिरि है या कोई अन्य ?

३६ हस्ति—(पृष्ठ) इन द्वारा रचित सस्कृत भाषा के ग्रथ "वैद्यवल्लभ" के हिन्दी अनुवाद का परिचय दो प्रतियो के आधार पर दिया है। वद्याकल्प चौ० भी इनकी रचना मानी गई है। इसे भी अनूदित कृति ही बताया गया है। दोनों कृतियो का रचना काल अन्वेषक महोदय को प्राप्त न हो सका। अत परिचय के अत मे लिखा गया कि "ग्रथो की भाषा से ये राजस्थानी विदित होते हैं। अन्य परिचय अज्ञात है।" पृष्ठ ३३।

उपर्युक्त विवरण मे कवि का नाम ही अपूर्ण दिया है। इनका पूरा नाम है हस्तिरुचि गणि जैसा कि विवरण मे दिये गये पाठ से ही सिद्ध है (पृष्ठ १४१) यह तपागच्छीय रुचि शाखा के यति थे, अठारहवी शती के पूर्वार्द्ध में इस शाखा के अनुगामी कई कवि और विद्वान् विद्यमान थे। यह असदिग्ध तथ्य है कि कवि हस्तिरुचि ने अपनी कृति में रचना स० नही दिया है, पर इसकी कुछ प्राचीन प्रतिया गोडल मे प्राप्त हुई है और उन्ही के आधार पर इसका प्रकाशन भी किया गया है। प्राचीन प्रतिका अतिम उल्लेख इस प्रकार है—

श्रीमत्तपागच्छे महोपाध्यायश्रीउदयपुचि शिष्य श्रीहितरुचि गणि शिष्य कवि हस्तिरुचि गणिना रस नयनमुनीन्दु वर्षे विरचितोऽ्ध ग्रथ।

इस से स्पष्ट हो गया है कि वैद्यवल्लभ की रचना स० १७२६ हुई और इसके रचयिता गणि हितरुचि के शिष्य थे।

वैदवल्लभ मे कविश्री की वर्षो की आयुर्वेदिक साधना सकलित है। दैनिक जीवनोपयोगी प्रयोगो का इसमें अच्छा समावेश किया गया है। यह कृति बनते ही लोकप्रिय हो गई। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि प्रणयन के ठीक दो वर्ष बाद ही अर्थात् स० १७२९ में किसी मेघ नामक पडित ने इस पर विवेचनात्मक टीका लिख कर अधिक लोकभोग्य बनाया[१]।

---

१ रूपचन्द पडित प्रथम द्वितिय चतुर्भुज नाम
तृतीय भगौतीदास नर कौंरपाल गुण धाम। श्री गुरुभक्तिप्रकाश, पृष्ठ ४२।

१ वि० स० १७२९ वर्ष भाद्रपद मासे सिते पक्षे भटट मेघ विरचित सस्कृत टीका टिप्पण सहित सपूर्ण टीकाकार सनातन धर्मावलबी था। वह अपने को गौतम गोत्रीय, नन्द अवटकीय बताता है। वशानुक्रम से वह परम शैव है। प्रपितामह नागर भट्ट पितामह कृष्ण भट्ट, पिता नीलकण्ठ थे।

[इ]सके अतिरिक्त हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती भाषा में इस पर कई व्यक्तियों [ने] स्तबक और विवेचन लिख कर, अपने ढंग से परिवर्तन परिवर्द्धन कर इसकी [उ]पयोगिता को स्वीकार किया है। यही कारण है कि सीमित समय मे ही इसके [सं]स्करण हो गये। इस विवरण में जो पाठ दिये है उनका क्रम अन्य प्रतियों से मेल [न]हीं रखता।

वंद्याकल्प चौपाई संस्कृत में कवि हस्तिरुचि ने लिखी हो ऐसा सुना तो नहीं गया, [न] किसी ज्ञानागार मे ही इसकी प्राप्ति हुई है। यद्यपि कवि का नाम अंतिम भाग में, "कहि कवि हस्ति हरिनों दास" (पृष्ठ १४४) आया है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह कोई वैष्णव कवि रहा होगा "हरिनो दास" शब्द ही इसे कृष्णोपासक सिद्ध कर देता है।

८७ रसिक संदर—(पृष्ठ) इस कवि के विषय मे अन्य खोज विवरण की समालोचना में प्रकाश डाल चुका हूँ, यहाँ केवल इतना ही सूचित करना पर्याप्त होगा कि इनकी एक अज्ञात रचना इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में है[1]। नाम है गोपीप्रेमप्रकाश।

९६ सुंदरदास—(पृष्ठ) इनके द्वारा रचित रामचरित्र का विवरण १९२५ की प्रति लिपि के आधार पर दिया गया है। मेरे संग्रह में इसी राम चरित्र की एक प्रति १८वीं शती गुटके में सुरक्षित है। अतः इससे पूर्वका कवि समय निश्चित है। चरित्रकार ने अपने गुरू कालु का उल्लेख किया है। यह व्यक्ति बही तो कहीं नहीं है जिनका सूचन पंद्रहवें त्रैवार्षिक विवरण सं० १०४ मे हुआ है। यह अन्वेषणीय है।

१०२ उदय—(पृष्ठ) इनका उल्लेख कई खोज विवरणों में आया है। प्रशृत विवरणान्तर्गत सं० ११२ में कृष्ण परीक्षा का परिचय एक खंडित प्रति के आधार पर दिया गया है। मेरे संग्रह में इसकी दो प्रतियाँ है एक खंडित जिसमें प्रारंभ के २१ पद्य नहीं है एक पूर्ण दोनों हस्तलेखों के आधार पर विवरण में दिये गये पृष्ठ २६७ के पाठ को मिलाने पर पर्याप्त पाठान्तर मिले और यह भी अनुभव हुआ कि सं० १०२ बी में जो कृष्ण प्रतीत परीक्षा का आदि भाग दिया है वह सं० १०२ ए का ही प्रारंभिक भाग है और सं० १०२ ए का अंतिम भाग दिया है वह इस कृति का अंश न होकर दामोदर लीला का अन्त्य भाग है, जो इसी कवि उदय की स्वतंत्र कृति है। तात्पर्य कृष्णपरीक्षा और कृष्णप्रतीत परीक्षा—जो अन्वेषक ने दो भिन्न कृति मानी है वस्तुतः दोनों एक ही रचना है।

कवि की दो अज्ञात रचनाएँ उपलब्ध हुई है, जिनका उल्लेख अद्यावधि प्रकाशित खोज विवरण एवं हिन्दी साहित्य के किसी भी इतिहास में नहीं मिलता। मेरा तात्पर्य चंद्रावली चरित्र आर सुजान संवत समे से है। इन कृतियों से विदित होता है कि कवि उदय ने राधाकृष्ण के माध्यम से केवल व्रज रीति के ही यशोगान नहीं गाये अपितु इतिहास के प्रति भी उनके हृदय में अनुराग था, सुजान संवत समें में कवि में भरतपुर नरेश सूर्यमल्लजी जाट का गुणगान करते हुए तात्कालिक व्रज की सामाजिक और

---

१. परिचयार्थ देखें राजस्थान का अज्ञात साहित्य वैभव (शीघ्र प्रकाश्यमान)।

सास्कृतिक स्थिति का सुदर चित्र खीचा है। उस समय के इतिहास पर भी इससे प्रकाश पडता है। कृति का रचना समय स० १८४५ कार्तिक पूर्णिमा है।[1]

कवि के सबध में विस्तार से मैं अठारहवें खोज विवरण के परिमार्जन में लिख चुका हू।

१०५ वीरभद्र—(पृष्ठ) इनकी रचना वुढिया लीला का विवरण देते हुए अन्य परिचय अप्राप्त होने की सूचना दी है।

वीरभद्र की वाललीला या ब्रजलीला भी उपलब्ध है। सरस्वती भवन, उदयपुर, में इसकी स० १८७६ फागुन सुदि १० गुरसवार की लिखी ६० पद्यात्मक एक प्रति विद्यमान है। इन पक्तियो के लेखक के सग्रह में भी ७५ पद्यो की यह लीला स० १८२४ की प्रतिलिपित है। मिश्रबधु विनोद भाग २ पृष्ठ १४५ पर भी वीरभद्र का उल्लेख है, जिसका अनुमित समय स० १८६४ से पूर्व का स्थिर किया है। अभय लीला गायक वीरभद्र विषय साम्य को देखते हुए तो एक ही प्रतीत होते हैं। ये परम वैष्णव थे। इनकी और सस्कृत भाषा की सम्प्रदायमूलक कृति भी प्राप्त हुई है—

इति श्रीवैष्णवभजनसिद्धान्तसार सग्रहे वीरभद्र कृते पाखण्डदलन सपूर्ण।

स० १६२६-२८ के त्रैवार्षिक खोज विवरण मे भी एक वीरभद्र का उल्लेख आया है, वह सभवत इनसे कोई भिन्न प्रतीत होते हैं।

रहा प्रश्न इनके समय का, जब तक कोई इनकी स० १८२४ के पूर्व की प्रति उपलब्ध नही हो जाती तब तक स० १८२४ के पूर्व तो इनका समय स्वत सिद्ध है ही।

४ अभयसोम—(पृष्ठ ४४) इनकी "मानतुग—मानवती चउपई" (रचनाकाल १७२०) का परिचय देकर इतना ही सूचित किया है कि "इसके अतिरिक्त इनका और कोई वृत्त ज्ञात नही।" विवरण में चउपई का रचना काल इस प्रकार दिया है—

सवत सतरह वीस इधु सोमसुदर प्रसारइ।
अभयसोम इणि परि कहइ [2]

जब कि अन्य प्राप्त प्रतियो में इसका प्रणयन समय स० १७२७ आषाढ सुदि २ गुरुवार बताया गया है—

सवत सतरै सतवीसै धुरै सुदि आसाढ बीजै दिनै गुरेह
खरतर सहगुरु जिणचद जयकरु तेहनै राजै सोहग सुदरु
सुदर सोमसुदर प्रसादै अभयसोम इणि परि कहै[3]

---

१ इति श्रीकृष्णजू की प्रीतपरीक्षा सम्पूर्ण ॥ शुभमस्तु। लिपनार्थे लाला शरप्रसाद मुन्दी घर वैरनगर मधये, पठनार्थ राजाजी दरीयावसीघजी के वास्ते पढै तिनिक राम राम वचना। मिती भाद्रव कृष्णा ११ सनिचर वार स० १६२८ के रामदास वैसनो की पोथी सो लिषी। पत्र १५।

२—खोज विवरण पृष्ठ १७४।

३—जैन गूजर कविश्रो, भाग ३ पृष्ठ ११६७।

ज्ञात होता है कि विवरणकारने कुछ पाठ छोड़ दिया है। मुद्रित अंश भी शुद्ध नहीं है। जहाँ "प्रसारइ" छपा है वहाँ "प्रसादइ" पाठ होना चाहिए था। यदि विवरण पूरा लिया जाता तो कवि के गुरु का नाम भी मिल ही जाता। लोक कथा साहित्य की दृष्टि से यह चउपई सरस रचना है। विवरणकार ने विशेष परिचय देते हुए लिखा है "मानवती ने श्रावकाचार विहित अष्टक्रमों का भलीभाँति आचरण किया था।" वास्तविक बात तो यह है कि मानवती उच्च श्रावकाचार को अपने जीवन में स्थान देकर मोक्ष लाभ किया होगा "श्रीवकाचार विहित अष्ट कर्मो का आचरण" वाक्य ही भ्रामक है।

अब तो ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट हो गया कि अभयसोम खरतरगच्छी आचार्य श्री जनचंद्रसूरि के प्रशिष्य और सोमसुंदर के अंतेवासी थे, और सं० १७२७ में सूचित चउपई का सृजन किया। इनकी अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैः—

(१) वैंवर्भी चौपाई र० का० सं० १७११ चैत्री पूर्णिमा।
(२) विक्रमादित्य खापड़िया चौ० र० का० सं० १७२३ सिरोही।
(३) विक्रमादित्य लीलावती चौ० र० का० सं० १७२४।
(४) वस्तुपाल तेजपाल रास र० का० सं० १७११ श्रावण।
(५) विवाहपडल स्थबक।

प्राप्त कृतियों के आधार इनका साहित्य साधना काल सं० १७११-१७२९ है।

११ आनन्दघन—(पृष्ठ ४६) इनकी रचना चौवीसी का परिचय देकर केवल इतना ही लिखा गया है कि "यह राजस्थान के सहने वाले थे" जैन समाज में यह महात्मा बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। इनकी आध्यात्मिक भाव-भूमि की रचनाएँ रुचिशील जैनियों के कंठ में सदा विराजमान रहती आई है। आज तक प्राप्त चौबीसियों में जितना आदर इसे मिला है और जितनी जैनत्वकी झांकी इससे मिलती रही है, वह औरों में दुर्लभ ही है।

यह कहाँ के निवासी थे? इसे जानने का प्रमाणभूत साधन तो प्राप्त नहीं है पर कहा जाता है कि ये अधिकतर मेदिनीपुर मेड़ता मे रहे हैं। वही इनकी साधना-भूमि मानी जाती रही है। इनके संबंध में अनेक किबदंतियाँ प्रचलित है। उनका सार इतना ही है कि ये उच्च प्रकार योगी और परम साधक संत थे। ज्ञान और क्रिया का इनके जीवन में अद्‌भुत समन्वय था। जैन समाज के इन मर्मी कवि की रचनाएँ सभी सम्प्रदाय के साधु मुनि प्रेम से गाते हैं। इनकी दूसरी महत्वपूर्ण रचना है "बहुतरी"। इनमें कबीर के समान समन्वयमूलक उच्च विचार व्यक्त हुए हैं। "राम कहौ रहमान कहौ" इनकी अमर कृति है। इनका पूर्वावस्था का नाम लाभानन्द बताया जाता है। जन समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान और कवि उपाध्याय यशोविजयजी इन्हे आदर्श पुरुष मानते थे।

जिस चौवीसी का उल्लेख प्रस्तुत खोज विवरण में किया गया है, उसके २२ स्तवनों के रचयिता तो आनन्दघनजी स्वयं है और शेष दो के प्रणेता प्रसिद्ध योगी और

गवरी नदन गज वदन सिधि वुधि दे सुडाल ।
विमल विनायक वाँणि दे ज्यूं गुंथ्युं गुणमाल ॥३॥
निरमाया निरभव निडर निराकार निरवाण ।
निरालब निगुण निचल सो परमेस्वर जाण ॥४॥
महिरवाण मादर पिदर रहिता गुण रहिमाण ।
माथै ईश्वर को नही सो परमेश्वर जाण ॥५॥
जगत उधारण जगत गुरु जगत कर्ता जग नाथ ।
जग वधव जगदीम सोइ रजिक मीच जिण हाथ ॥६॥
पट्काया रपवाल गुरु लिव पट्भापा लीण ।
तत्व ग्रहै तत्व उपदिसै गुण से तत्व प्रवीण ॥७॥
महा निरम्मल ग्रातमा जत मत निरमल जाण ।
तन मन त मान जीयतमा से महात्मा वपाण ॥८॥
काम क्रोध माया मच्छरा मोहि लोभ मन माँहि ।
जीता जग जीतो उदै जीते जती कहाय ॥९॥
जदै जोगी लै वहै विदै जाणी न देह ।
तृष्ना माया कलुपता तजै सु जोगी देह ॥१०॥
ग्रनल उरद्धै ले रहै मन रप्यै लिव माहि ।
छदै विदन चातरै सो मरै न बुढ्ढा होय ॥११॥
ग्रलन बिंद मर्मैरदै मीट न ग्राँणे कोय ।
चित रप्ये रमिणि में मरे न वुढ्ढा होय ॥१२॥
ग्राछा खावै सुख सूयै ग्राछा पहिरे सोइ ।
ग्रति ग्राछी रमणी रहै सो मरै न बुढ्ढा होय ॥१३॥
गध सूरत भापा रहत रहत जोति रति प्राण ।
मन चित चेतन रहत तब हुं मीच भइ जाण ॥१४॥
ग्रविनयासी गुणनुं लिपै जाणै सज्ञा नास ।
सर्वग्राही हुइ रहै सोक दास सन्यास ॥१५॥
भग ग्राया देप्या नही फिरै ग्रपूठा ग्रान ।
भागा मन भग सुं उदै तजहु भया भगवान ॥१६॥
दत्त कहै पुत्ता सुंणो दे कम मन वच कान ।
भगवा कीहा पयू नही भग छूटा भगवान ॥१७॥
जेथ तेथ देपै विष्णु विष्णु भूत भैरव ।
सब ही जागै विष्णु को जाण सो वैष्णव ॥१८॥
माला तिलक न सग्रह्या मुंड मुंडाया नाहि ।
यू जाँणै वेष्णव उदै विष्णु सबाही माहि ॥१९॥
कुलरी घररी वसरी जिण मैडी सहकार ।
मन मुंडै मोडा हुग्रा सो मोडा ससार ॥२०॥

मुँडत होणों कठन छू मुँषवणो असन्न ।
से मंडन उदै कहै ज्वांणा मुंडया मन ।।२१।।
डिंडाजिण उत्पातकी पिड प्रगट्टै ज्याहिं ।
सौ पिंडत उदौ कहै थेये प्रभ्काल कल मांहि ।।२२।।
समता रमता रहै ममता देश विदेश ।
करता डर वरता उदै दिल सौ दरवैस ।।२३।।
दरवेसी दुनीयान में रज्जी रज्ज सरेस ।
को कहि कैसे घरगै लगै द्राह छीयै दरवेस ।।२४।।
भिक्षा लै भिक्षा दीयै भूषा आदिम देषि ।
सिष्या दै सिक्षान कौ .... ।।

आगे के पत्र गायब है ।

विवरण में संख्या १६ वाले उदयराज भी "गुण बावनी" वाले ही प्रतीत होते हैं ।

वैद्य विरणी प्रबंध भी एक कृति है जिस के रचयिता उदयराज हैं, पर स्थान, रचना काल के अभाव मे कहना कठिन है कि वह रचना किस उदयराज से सम्बद्ध है । किसी सूरजमल को संबोधन कर उदयराज ने पर्याप्त पद्य लिखे हैं ।

२० **कनकसोम—(पृष्ठ ४८)** इनकी "आषाढभूत चौपाई" का विवरण दो प्रतियों के आधार पर दिया गया है । इसका रचना काल सं० १६३८ विजया दशमी है । "रचयिता का नाम केवल ग्रथान्त में मिलता है । इसके अतिरिक्त चरित्र कुछ भी ज्ञात नहीं" ।[1] कवि गुरुका नाम तो रचना के प्राथमिक भाग मे ही उल्लिखित है—

माणिकसागर मुझ गुरुनि चरणै नामे सीस ।

अन्वेषक ने पाठ कुछ ऐसे ढंग से प्रतिलिपित किया है कि जब तक ठीक पदच्छेद न किया जाय तब तक कुछ भी समझ मे नहीं आ सकता । कवि परिचय की सामान्य सामग्री कृति मे उपलब्ध होते हुए भी प्रेषट पाठ संयोजन से विवरणकार को परिचय विषयक असमर्थता प्रकट करनी पड़ी ।

यहाँ प्रसंगत: स्पष्टीकरण आवश्यक जान पड़ता है कि आषाढभूति चौपाई की जितनी भी प्रतियाँ अवलोकन में आई हैं उनमे बहुत कम ऐसी हैं जो पाठ भेद की दृष्टि से पारस्परिक साम्य रखती हों । उदाहरणार्थ खोज विवरण की दो प्रतियों मे पाठ वैषम्य है । जैन गूर्जर कविओं भा १ पृष्ठ १४६ पर प्रकाशित पाठ मे भी भिन्नत्व है । मेरे संग्रह में इस चौपाई की जो प्रति है उस में इसे धमाल कहा गया है ।

पाठ विषयक भिन्नत्व अधिकांशत: प्राथमिक भाग में ही है अन्त भाग लगभग सब मे समान है ।

कविवर कनकसोम अमसमाणिक्य के शिष्य थे । इनकी विविध रचनाओं से विदित होता है कि ये वहु पठित स्थविर थे । इनके वैयक्तिक जीवन पठ पर प्रकाश डालनेवाली

१. खोज विवरण पृष्ठ ४८ ।

सबध विजयगच्छ से था। ये एक प्रकार से राज्याश्रित से थे। इसी समय मे एक और मान हुए हैं जिनकी रचना "कविविनोद या प्रमोद" नाम से मिलती है। कुछ लोगो का मानना है इसी मान कृत मानव तीसी होनी चाहिए पर पुष्ट प्रमाण का अभाव है।

खोज विवरण में जिस प्रति से परिचय दिया गया है उसमें ३ उन्माद हैं, पर मेरे सग्रह में इसकी चार प्रतिया हैं उन सब में चार उमाद प्रकरण हैं। खोज विवरण कार ने शिकायत की है कि प्रथम उमाद कहा समाप्त होता है पता नही चलता, जहाँ गूढ रूप वर्णन की समाप्ति है वहाँ प्रथम उन्माद समाप्त होता है। यहा सूचित कर देना आवश्यक जान पडता है कि सभी प्रतिओ में पाठ समान रूप से नही मिलता।

मान मुनि के समय में उदयपुर विजयगच्छ का अच्छा केन्द्र था। राजविलास जैसे ऐतिहासिक कृति का निर्माण इन्ही मान मुनि द्वारा हुआ था। यद्यपि यह, कृति ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित है, पर आज भी एक अच्छे सस्करण की आवश्यक्ता है* जिस में इस कृति के ऐतिहासिक मूल्याकन के साथ इनकी अन्य कृतियो की तुलना की जा सके। उदयपुर और निकटवर्ती प्रदेश में मान का पर्याप्त साहित्य उपलब्ध होता है। तात्कालिक प्रतिया मिलती हैं, इनके स्फुट कवित्तादि सैकडों की सख्या में विद्यमान हैं, समय की माग है कि इन सभी का सामूहिक प्रकाशन वाछनीय है। मान के वतमान उत्तराधिकारी के पास इनके सबध में जो लिखित सामग्री है, उनका मूल्याकन, तात्कालिक इतिहास की दृष्टि से अनिवाय है।

इसी नाम के और भी मुनि हुए हैं जो इस प्रकार हैं—

१ मान मुनि—महिमासिह, जा खरतगच्छी शिवनिधान के शिष्य थे।

२ मान—इनका उल्लेख सन् १६३२ ३४ के खोज विवरण मे आया है। लक्ष्मण चरित्र, नरसिंह चरित्र, नखशिख, हनुमान पचासा, आदि इनकी रचनाएँ हैं।

३ मान—माताजी का गीत, तमाखूपच्चीसी, और फर्रुखशियर के कवित्त ये रचनाएं किसी मान कवि कृत हैं। रचयिता ने किसी भी कृति मे रचना काल नही दिया है पर जिस गुटके मे तमाखूपच्चीसी और फर्रुखशियर के कवित्त प्रतिलिपित है उसका लेखन काल स० १७७४-१७८० है। त० प० का प्रतिलिपि काल स० १७७६ और फर्रुखशियर कवित्त का १७८० है। इन उल्लिखित सवतो से तो रचनाओ का पूव कालिक होना स्वत प्रमाणित हैं। फर्रुखशियर कवित्तो मे कवि ने सवन बादशाह का वातमानिक प्रयोग किया है जो इस बात का परिचायक है कि उनकी विद्यमानता में ही ये लिखे गये थे। बादशाह की सत्ता का पूरा समर्थन किया गया है। फर्रुखशियर का राज्य काल स० १७६९-१७७५ तक का रहा है। अत सुचित समय अतर्गत काल में ही कवित्त लिखे गये थे। ये रचनाए किस मान कृत है प्रमाणाभाव मे निश्चित कह सकना कठिन है।

---

* ना० प्र० सभा, द्वारा इसका एक सुसपादित सस्करण प्रकाशित किया गया है। —स०।

२०९ **रघुवर**—पृष्ठ १२३। इनके प्रेमविनोद का वर्णन करते हुए दृष्टिकूटक कविता का वैशिष्टय बताया है और उदाहरण स्वरूप यह पंक्ति उद्धृत की है—

सारंग ने सारंग गह्यो सारंग पहुँच्यो आय-- पृष्ठ १२३।

वस्तुत: यह रचना रघुवर कवि की नहीं है कारण कि प्रेम विनोद का प्रणवनकाल सं० १९२९ है और उपर्युक्त पद्य १८ वीं शताब्दी के गुटकों में प्राप्त होता है। मैं अपने निजी सग्रंहस्थ गुटके से इसी आशय का आंशिक परिवर्तित रूप उद्धृत कर रहा हूँ।

सारंग सारंग कुंच सारंग लीधो हत्थ।
जल सुत विष वैरी भयो सब सिणगार कयत्थ॥
सारंग सारंग कुं चली सारंग आवत दीठ।
हार चीर सारंग सरण सारंग सरण पयठ॥
सारंग सारंग कुं गह्यो सारंग बोल्यो आय।
जो सारंग सारंग करै तो मुखको सारंग जाय॥
सारंग सवै निसह भर सारंग उभो बार।
उठ सारंग सारंठ गह तातै सारंग मार॥

सूचित पद्य के हांशिये पर सारंग शब्द के संभावित अर्थ भी इस प्रकार दिये हैं--

सारंग नाम--अस्त्री, मोर, हिरण, सर्प, कुंभ, पांणी, खडठ, चौर, मूर्ख, दीपक, काजल, वालंभ प्रीतम, पर्वत, रवि, ससि, भ्रमर, अश्व, कुंजर, कुरज, पपीहा, सिंह। अनेकार्थ साहित्य मे अन्यत्र और भी सारंग शब्द के अर्थ मिलते हैं।

२५० वटुनाथ या वटुकनाथ—पृष्ठ १३७। शनिचरित्र और रसवल्ली का विवरण दिया गया है। लेखक ने स्वपूर्वजों का परिचय विस्तार से दिया है। उनके अस्तित्व समय और निवास स्थान के विषय में टिप्पणीकार माने है। केवल भाषा के आधार पर यह संभावना प्रकट की गई है कि यह राजस्थान के या गुजरात की ओर के जान पड़ते हैं। इन पंक्तियों के लेखक की विनम्र सम्मति में यह वटुनाथ या बटुकनाथ वही होने चाहिए जो भरतपुर निवासी और वहाँ के नरेश बलवंतसिंह के लिए जिन्होंने "रामपंचाध्यायी" का सं० १८९६ आश्विन पौर्णिमा को सृजन किया था। इनके पिता का नाम भी ऋषि राम था। अपनी कृति में वह अपने को वटुनाथ या वटुकनाथ सूचित करते है। विवरणीकान्तर्गत वर्णित दोनों कृतियां भी इन्हीं कवि कृत विदित होती हैं। प्रश्न रह जाता है आश्रयदाता के नाम का उल्लेख का समाधान में कहा जा सकता है कि संभव है उपर्युक्त कृतियों (जिनका प्रतिलिपि काल विवरण ने सं० १८७५ दिया है) के प्रभाव से ही इन्हें राजदरवार में समुचित स्थान प्राप्त हुआ हो और तदुत्तरवर्त्ती रचना रास पंचाध्यायी में राजा की प्रशंसा की गई हो।

२८८ सुंदरलाल—पृष्ठ १५३। विवरण में इनकी "सनेहमंजरी", "निकुंजरस मंजरी" और सिद्धांत आदि फुंटकर पद विषय वर्णन कृतियों का समावेश किया है। मुझे अपनी अनुसंधान यात्रा में एक ऐसा २० वी शती के प्रारंभ काल में लिखा गुटका प्राप्त हुआ है जिस में जयपुर के कतिपय अज्ञात कवियों की रचनाएँ प्रतिलिपित हैं। इसी में दो प्रस्तुत कवि की रचनाओं का भी समावेश है गंगाभक्ति विनोद (जगन्नाथ

पागडदिकि धागडदिकि पागडिकी पागटदिकि पर्र्र्र्र
हट पिउ घट कबूतर री बोली मुडहि मुडा गहि व्यक्रमवसर
विजयत तन नर नरिंद समुहड भिडग
कल्याणराव रण रस चढत नर नारिद समुहड भिडग ॥५॥

इसके अंत में लेखन पुष्पिका इस प्रकार है—

इति श्री राजा कल्याणमल्ल री पाढगति सपूर्णम् प० श्री श्री हर्ष सागर जीतच्छिष्य ऋद्धि सागरेण लिपि कृत शीघ्र शिणला ग्रामे चेला पुस्यालचद वाचनार्थ ॥श्री रस्तु॥

३०१ सेवासिंह—(पृष्ठ १५१) इन द्वारा रचित "नल चरित्र" या नैषध का परिचय दिया गया है। कवि की नामावली जो अब की वार प्राप्त हुई है के आधार पर पूरा वशवृक्ष दिया गया है। इसमे कवि के पितामह लुहगराइ को फतेपुर राज्य का सस्थापक बताते हुए नगर की स्थिति राजस्थान मे वताई है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से विचारणीय है। कवि कहां के थे ? यह अभी यहां गौण है। मुख्य प्रश्न है क्या राजस्थान शेखावाटी स्थित फतहपुर किसी लुहागराइ ने वसाया था ? अन्यान्य ऐतिहासिक तथ्यो से सिद्ध है कि सूचित फतहपुर क्यामखानी नवाब फतहखा ने स० १५०८ चैत्र शुक्ला ५ के दिन अपने नाम से वसाया था जैसा कि "क्यामखारासा" की इन पक्तियो से प्रमाणित है—

नीव दइ पटकोटकी येक द्योस कहि जान।
नगर फतिहपुर आपनौं करयौं फतन असथान ॥३७७॥
नयो वसायो फतिहपुर हौ सरवर उद्यान।
नाव आपनै फतेहखा करयो वडो असथान ॥३७८॥
पदरहसै जु अठात्तरै वस्यो फतहपुर वास।
सुद पाचै तिथ ही तबहि और चैतको मास ॥३७९॥
सन सत्तावन आठसै जगमे करयो प्रकास।
माह सफर दिन बीसवै वस्यो फतहपुर वास ॥३८०॥
\+ \+ \+ \+
करयो फतिहपुर फतिहखा इनहि आइ तिह बार।[1]

इसके अनन्तर नवावो ने ही इस नगर का बिकास किया। लुहागराइ नामक कोई प्रतिभाशाली शासक वहां रहा हो। किसी इतिहास मे इनका उल्लेख नही पाया जाता। यद्यपि खोज विवरणकार ने पृष्ठ ६१६ पर यह पक्ति भी उद्धृत की है "लुहगराइ तेहि ध्रुवन राज्य फतैपुर थप्पिय" सभव है और कोई फतहपुर रहा होगा। खोज विवरणकार ने शेखावटी वाले फतहपुर से इसका सबध व्यर्थ ही स्थापित करने का प्रयत्न किया।

३०६ स्यामदास—(पृष्ठ १६०) इनके द्वारा रचित भागवत धर्म के स्तभ समान विष्णुस्वामी के अपूर्ण चरित्र का परिचय देते हुए रचयिता स्यामदास के अस्तित्व समय विषयक अनभिज्ञता प्रकट की है।

---

१ कवि जान कृत "क्याम खां रासा" पृष्ठ ३२।

घोलीवावड़ी, उदयपुर स्थित रामद्वारा में एक हस्तलिखित गुटका सं० १७७३ का प्राप्त हुआ है। उसमें अन्य अज्ञात रचनाओं के साथ स्यामदास प्रणीत स्यामबतीसी या चतुराष्टक संकलित है। इसमें भगवान कृष्ण की स्तुति भावपूर्ण भाषा में की गई है। रचना सरस और प्रांजल है। इसके प्रत्येक पद के अन्त में श्याम "या" स्यामदास का नाम आता है ऐसा लगता है कृतिकार परम वैष्णव हों। संभव है कि विष्णु स्वामी चरित्र के रचयिता भी यही स्यामदास हों, क्योंकि विषय साम्य से कल्पना को बल मिलता है। उदयपुर सूरजपोल स्थित निम्बार्क मठ के हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह में स्यामदास वैष्णव द्वारा प्रतिलिपित कृतियों की संख्या पर्याप्त है और उनका समय लगभग १८वीं शती है। स्फुट काव्य संग्रहों में भी स्याम या स्यामदास के कृष्णभक्ति परक पद्य पाये जाते हैं। इनकी भाषा ब्रज है।

रहा प्रश्न इनके समय का, अभी तो इस संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि सं० १७७३ के पूर्व ये विद्यमान थे।

३०८ हंसराज – (पृष्ठ १६१) इनकी "ज्ञान द्विपंचाशिका" की अपूर्ण खंडित प्रति से कृति का परिचय खोज विवरण में दिया गया है। रचना काल अज्ञात है। वह अपने को बर्द्धमानसूरि का शिष्य बताता है।

इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में यथ ज्ञान द्विपंचाशिका की पूर्ण प्रति विद्यमान है जिसका आदि पद्य इस प्रकार है—

ओंकार रूप ध्यये गये है न जानै
पर परतत मत मत छहं माहि गायो है।
जाको भेद पावै स्यादवादी और कहा
जानै मानै जातैं आपा पर उरझायो है।।
दरबतैं सरबस एक है अनेक तो भी
परजै प्रवांन परि ठहरायो है।
ऐसो जिनराय राजा राज जाकै पाय पजै
परम पुनीत हंसराज मन पायौ है।।१।।

वर्द्धमानसूरि के ये शिष्य थे जैसा कि इस कृति के अंतिम पद्य से प्रकट है। इसी कवि की एक और अनुदित कृति नेमिचन्द्र रचित "द्रव्य-संग्रह" का बालाववोध "जैन गूर्जर कविओ" भाग ३ पृष्ठ १६३४ पर उल्लिखित है। इसकी अंतिम प्रशश्य दिया है। इससे प्रकट है कि कवि खरतरगच्छ का अनुयायी था और वर्द्धमानसूरि का शिष्य। पर समझ में नहीं आता कि ये वर्द्धमान सूरि कौन से थे? क्यों कि खरतगच्छीय पट्टावलियों में और तत्कालिक अन्य ऐतिहासिक साधना से पता नही चलता कि जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग कवि ने किया है, उस समय इस नाम के कोई आचार्य हुए है। कवि प्रदत्त प्रशस्ति इस प्रकार है—

द्रव्यसंग्रह शास्त्रस्य बालाबोधो यथापतिः।
हंसराजेन मुनिना परोपकृतये कृतः।।

पौर्वापर्य विरुद्ध यल्लिखितं मयका भवेत ।
विशोध्य धीमता सर्वं तदाधाय कृपा मयी ।।
खरतरगच्छनभोगणतरणीना वर्द्धमानसूरिणा ।
राज्ये विजयनिनिष्टा नीक्षोय सहसि मासेव ।।

लेखन काल स० १७०६ है अत इस काल के पूर्व इनकी स्थिति सुनिश्चित ही है । इस नाम के और भी जैन कवि हुए है, पर उनका समय १७ या १६ शती है ।

३१३ हरि कवि– (पृष्ठ १६३) विवरण मे इनकी "भाषाभूषण टीका" का परिचय दिया है । आगे बताया गया है कि रचयिता ने कुछ अपना भी वृत्त दिया है जिसके अनुसार ये त्रिपाठी ब्राह्मण थे । पिता का नाम रामघन था जो शालिग्रामी सरजू और गगा के सगम पर स्थित सारन जिला के अतर्गत गोआ परगना मे चैनपुर ग्राम के निवासी थे ये (रचयिता) इसे छोड मारवाड मे जा बसे—

सालग्रामी सरजू की मिली गग सो धार ।
अतराल सौ देश है सो सारनि सरकार ।।
परगन्ना गोआ तहा लसै चैनपुर ग्राम ।
तहा त्रिपाठी रामघन वास कियो अभिराम ।।
ताके सुत "हरि कवि" किया मारवाड मे वास ।
भाषा भूषण ग्रथ की टीका हरी प्रकाश ।।
परोहित श्रीनद को मुनि शाडिल्य महान ।
मैं हौं तिन के गोत मे मोह

टिप्पणीकार ने उपर्युक्त पक्तियों मे कवि का परिचय उन्ही के शब्दो मे दे दिया है। कवि ने "भाषा भूषण" की टीका मे स्थान का उल्लेख नहीं किया है, पर इसी कवि की एक 'वर्णाभरण", इन पक्तियो के लेखक को प्राप्त हुई थी जिसकी मूल प्रति तो लेखक आगरा की "कु० मु० हिंदी विद्यापीठ" को भेंट कर चुका है—जिसकी अतिम प्रशस्ति मे कवि ने अपना कुछ विशेष परिचय देते हुए मारवाड के निवास स्थान किशनगढ का निर्देश इस प्रकार किया है—

राजत सुबे बिहार में है सारनि सरकार ।
सालग्रामी सुरसरित सरजू सोम अपार ।।३८।।
सालग्रामी सुर सरित मिली गग सो आय ।
अतराल में देस सो हरि कवि को सरसाय ।।३६।।
परगना गोआ तहा गाव्व चैनपुर नाम ।
गगा सौं उत्तर तरफ तह हरि कवि को धाम ।।४०।।
सरजूपारी द्विज सरस वासुदेव श्री मान ।
ताको सुत श्रीरामघन ताको सुत हरि जान ।।४१।।
नवापार मैं ग्राम है चढ़या अभिजन तास ।
विस्वसेस कुल भूपवर करत राज विभास ।।४२।।

मारवाड में कृष्णगढ तिय किय हरि कवि वास ।
कोस जू कर्नाभरन यह कीनौ है जु प्रकाश ।।४३।।

प्रशस्ति से कवि के पितामह का नाम बासुदेव ज्ञात हुआ आइ कृष्णगढ निवास भी । खोज विवरण के पृष्ठ ३१३ पर नागरी प्रचारिणी सभा की जिस प्रति से विवरण लिया गया है उसका प्रारंभिक अंश छूट गया है । मैने अपने संग्रह की प्रति निकाल कर देखा तो उक्त अनुभव हुआ । त्रुटितां इस प्रकार है—

।। गणेशाय नमः ।।

अथ हरिचरणदासजी[1] कृत भाषाभूषण सूत्र लिष्यते

दोहा

तुलशी सोधित चरण मैं गल तुलसीदल माल ।
विहरत राधा संग मैं जमुना तट नंदलाल ।।१।।

अथ लअंकार, अथ उपमा उछन,

उपमानरुउपमेय जहां वाचक धर्म सु चारि ।
पूरन उपमा हीन तहां लुप्तोत्तमा विचारि ।।२।।

अथ पूर्नोपमा उदाहरण—

अंबुज से लोयन अमल मधुर सुधा सी वान ।
ससि सो उज्जवल ति वदन पल्लव से मृदु पान ।।३।।

मिश्र बंधु विनोद और तदनुगामी लद्यावधि प्रकाशित हिन्दी और राजस्थानी भाषा के इतिहासों में इन्हे किशनगढ़ का मूल निवासी ही बताया गया था । उपर्युक्त दोनों उद्धरणों से अब तो भ्रामक परम्परा समाप्त होनी चाहिए ।

इसी त्रैवार्षिक विवरण मे संख्या ३१५, ३१६ में जिस हरिचरणदास का उल्लेख है वह हरि कवि ही है । अर्थात् सं० ३१३,३१५, और ३१६ वाले कवि भिन्न न होकर एक ही व्यक्ति है । पर परिचय जिस ढंग से दिया गया है उससे तो यही प्रतीत होता है कि संभवतः ये तीन भिन्न व्यक्ति हों । रामायण सार बिहारी सतसई टीका, जसवंतसिह कृत भाषा भूषण टीकाकार एक ही महानुभाव है ।

कवि हरिचरणदास व्रजभाषा के सुकवि और उत्कृष्ट विवेचनकार थे । इनकी टीकाओं का पारायण करने का जिन्हे अवसर मिला है वह कह सकते है कि उनकी रहस्योद्घाटन की क्षमता अद्भुत थी । विषय समर्थन इन ने अपनी विशद् वृत्तियों जो उदाहरण दिये है उनसे इनकी विशाल अध्ययनशीलता का आभास मिलता है । जिन दिनों किशनगढ़ में इनका निवास था उन दिनों वहाँ का साहित्यिक बातावरण भी अनुपमेय था । वृंद के वंशज भी साहित्यिक साधना मे लीन थे । वहाँ के तात्कालिक नरेश महाराज बहादुरसिंह (राज्य काल सं० १८०६-१८३८) और बिडदसिंह (रा० का०

१. हरिचरणदास कृष्णगढ़ नरेश के आश्रित कवि थे । अतएव किशनगढ़ उनका निवास स्थान है जन्म स्थान नही । —सम्पादक

१८३८-४५) भी साहित्य एव कला के अनुरागी थे। बहादुरसिंह के कृष्ण भक्तिपरक कतिपय स्फुटपद मिले हैं और विडदसिंह की गीत गोविंद की विस्तृत टीका, किशनगढ़ के राजकीय सरस्वती भडार में विद्यमान है जिसका प्रणयन हरिचरणदास की सहायता से किया था। महाराजा हरिचरणदास को अति सम्माननीय दृष्टि से देखते थे। इनका चित्र भी किशनगढ मे मैंने देखा था।

कवि को राज्याश्रय प्राप्त होने से निराकुल भाव से साहित्यिक साधना का जो अवसर मिला था उसका इनने अच्छा उपयोग किया। परिणाम स्वरूप इनकी ग्रंथ रचनाएँ इस प्रकार उपलब्ध हैं—

(१) कविवल्लभ रचना समय स० १८३५।
(२) भाषा दीपक „ „ १८४४।
(३) श्रुतिभूषण।
(४) सभाभूषण—प्रकाश।
(५) लघु कर्णभरण कोश।
(६) बृहत्कर्णाभरण कोश।
(७) रसिक प्रया टीका।
(८) बलभद्र कृत नखशिख टीका।

ये राज्याश्रित कवि होते हुए भी स्वाभिमानी प्रकृति के कवि जान पडते हैं। इनके द्वारा रचित राजाओं की प्रशसा में एक भी पद्य उपलब्ध नही किशनगढ़ के सरस्वती भडार में इनकी समस्त रचनाओं का एक बहुत बडा सुंदर जिल्दबद गुटका है जो स० १८४५ मे ही कवि की विद्यमानता में राज्य की ओर से तैयार करवाया गया था।

अज्ञात कर्तृक रचनाएँ

अठारहवें त्रैवार्षिक विवरण के परिशिष्ट ३ में उन रचनाओं के आदि और अत भाग दिये हैं जिनके प्रणेताओं का पता न चल सका था, किन्तु ध्यानपूर्वक देखने से अनुभव हुआ कि इस विभाग में कतिपय कृतियाँ ऐसी भी समाविष्ट हैं जो परिशिष्ट दो में आनी चाहिए थी क्योंकि उनमें रचनाकारो के नाम स्पष्ट दिये हुए हैं। इन रचनाओं के प्रणेताओं के सबंध में अन्यान्य तत्सबधी मान्य साधन न भी प्रयुक्त किये जायँ और केवल अन्वेषण कर्ता की सामग्री को ही प्रमाणभूत आधार माना जाय तो भी "अजनासुदरी का" अचलदास खीचीरी बात "भक्तामर स्तोत्र" आदि का समावेश परिशिष्ट दो ही में होना वांछनीय था। इनमे एक प्रणेता तो ऐसे भी हैं जिनका विवरणपूर्व प्रकाशित खोज वृत्तान्तो मे आ भी चुका है, जैसे हेमराज।

३२५ अजनासुदरी कथा—इसके रचयिता मुनिमाल या मालदेव हैं जैसा कि विवरण के पृष्ठ ९६२ पर दी गई अतिम प्रशस्ति के निम्न अश से प्रकट है—

सील भलो तिण पालीयो जसु गावइ मुनि मालरे।

इनका पूरा नाम मुनि मालदेव था, पर अजनासुदरी कथा के समान ही अपनी अन्य रचनाओं भी "मुनि माल" शब्द का ही व्यवहार किया है। मिश्रबधु विनोद में

किव का उल्लेख करते हुए इनका अस्तित्व काल सं० १६५४ बताया गया है जो ठीक नहीं है। प्रति के प्रतिलिपि काल को ही विनोदकार ने रचना समय मान लेने से यह प्रचन्ति हो गई है। कवि का वास्तविक समय तो सं० १६१४ के लगभग पड़ता है जैसा कि इनकी एक कृति "कल्पान्तर्वाच्य" से सिद्ध है। जैन गूर्जर कवियों में कवि की उपलब्ध रचनाओं का सविस्तृत परिचय दिया है। इनकी अन्य रचनाएं इस प्रकार हैं—

पुरंदर चौपाई, सुरसुंदरी चौ० राजल नेमि धमाल, देवदत्त चौ०, मालदेव शिक्षा भोज प्रबंध, विक्रमपंचदंड कथा, बृहद्गच्छ गुर्वावली, पदुमरथ चौ० बीरांगद चौ० स्थूलभद्र बारहमासा, शीलबत्तीसी, वीर पंच कल्याणक स्त०, वीर पारणक स्त० इनके अतिरिक्तस्फुटपद स्तुतिपरक साहित्य प्रचुर परिमाण में प्राप्त है।

कवि ने अपना सामान्य परिचय स्व रचना वीरांगद चौपाई मे इन शब्दों में दिया है—

श्रीवटगच्छ गच्छहि पुण्यप्रभसुरीस ।
भावदेवसूरीसर भाग्यवंत तसु सीस ॥
चउपई प्रबंध इसउ उलट धरि अंग ।
श्रीमालदेव तुसु सीस कहइ मन रंगि ॥

ये भावदेवसूरि के शिष्य थे। इनका संबंध भटनेर की बडगच्छीय शारदा से रहा है।

३३४ आदिसर रेखता—इस कृति के प्रणेता हंसकीर्ति नामक व्यक्ति है। इस रचना की एक प्रति सं० १७४३ की प्रतिलिपित जयपुर के ज्ञानागार मे सुरक्षित है।[1]

३७५ त्रिलोक दीपिका चौपाई—इसके रचयिता नागोरी गच्छीय सदारंग के शिष्य थे। कवि ने अपने गुरू का नाम देकर के ही संतोष कर लिया है। इसकी पूर्ण प्रति राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर मे सुरक्षित है। उसमे भी सदारंग शिष्य का ही उल्लेख है अन्यान्य जैन ऐतिहासिक साधनों से सदारंग का समय १८ वी शती है। विवरण के पृष्ठ १०२६ पर जो संवत दिया है वह रचना काल न होकर गुप्ति विषयक संकेत है। विवरण पाठ इतना अशुद्ध छपा है कि उसमे से सार निकालना कठिन काम है। विषय का विवरण देते हुए सूचित किया गया है कि "सृष्टिका क्रम निर्द्धारित करते हुए जगत की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है" वस्तुतः बात यह है कि इस कृति मे जैन परम्परा मान्य चौवीस दंडक का विशद्वर्णन है जिसके आधार पर जीव चारसति में भ्रमण करता है। इन चौवीस दंडकों को आगे तक भाग मे गिनाया गया है। पर अन्वेषक महोदय ने जो पाठ प्रस्तुत किया है वह इतना भ्रष्ट है कि वस्तुस्थिति तक पहुंचने ही नहीं देता। में समझता हूँ अन्वेषक ने भी इसे साफ समझने की चेष्टा नही की है। तभी तो विवरण में जहाँ-जहाँ दंडक पाठ था वा सर्वत्र मंमक शब्द पढ़ लिया है। अब अर्थ कोई बैठाना चाहे तो कैसे बैठे ? भ्रष्ट पाठ से पदच्छेद भी इस प्रकार हो गया कि ज्योतिष व्यंतर वैमानिक जैसे शब्द भी शुद्ध रूप से मुद्रित न हो सके। जैन समाज मे बहुत कम ऐसे गृहस्थ मिलेंगे जिन्हें दंडक कंठस्थ न हो।

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची भाग ५।

३६४ भक्तचरितावली—इसमें महाराजा वदनसिंह का भी नाम आया है, जो भरतपुर के पिता थे। इनका समय स० १८७६ के पूर्व बताया है, वह तो ठीक, पर ऐतिहासिक साधनो मे सिद्ध है कि इनका स्वर्गवास स० १८१२ मे हुआ था। स० १७७५ में तो वह भरतपुर राज्यान्तर्गत "डीग" के शासक हो चुके थे। मुझे लगता है कि "भक्तचरितावली" के रचना काल के आधार पर ही वदनसिंह का इस प्रकार से चलता उल्लेख कर दिया है। जब किसी का निश्चिय उपलब्ध हो तो, कम से कम ऐमे ऐतिहासिक और साहित्य दृष्टि से प्रमाणभूत समझ जाने वाले ग्रथो में समय का उल्लेख ठीक-ठीक होना चाहिए।

काव्य रचना में परम निपूण जिस शिवराम भट्ट को उल्लेख किया है वह भरतपुर के पास कठौरी के निवासी रमानाथ भट्ट के पिता थे। इनकी प्रशसा और निंदा तत्रस्थ कवि राम ने अनेक पद्यो द्वारा की है। शिप्टता के नाते भडौवा प्रकट करना उचित नही जान पडता।

३६६ भक्तामर स्तोत्र—इसके अनुवादक हेमराज हैं। कृति में नाम दिया है। पद्रहवें खोज विवरण में इनका उल्लेख भी जा चुका है। इस कृति का उर में भी समावेश है। फिर कोई कारण नही था कि पूव गवेपित कवि को अज्ञात घोपित किया जाय। इम अनुवाद की अतिम पक्ति में "हेमराज हित हेत" शब्द आये हैं इससे सभवत विवरण-कार को भ्रम हो गया प्रतीत होता है कि रचना किसी ने हेमराज के हितार्थ रची होगी। जैन समाज में इनकी यह रचना अत्यन्त प्रसिद्ध है, शताधिक प्रतियाँ ज्ञानागारो में मे उपलब्ध होती हैं। कवि का परिचय मै पद्रहवें खोज विवरण के परिमार्जन में दे चुका हूँ अत यहाँ पिष्टपेपण व्यर्थ है।

४१६ समर कवित्त—यह कोई स्वतत्र रचना नही जान पडती, अपितु किसी रचना का अश मात्र है। सभव है सुप्रसिद्ध कवि सोमनाग के छद हो ?। जो पद्य पृष्ट १०६० पर दिये हैं वे युद्ध स्वरोदय से सवद्ध हैं। सोमनाथ की कृति सग्रामदप्पणे देखनी चाहिए। सकृत में महाभारत, नरपतिजयचर्या, समरसार युद्धस्वरोदय, मुकुदविजय, युद्धजयोत्सव आदि कृतियाँ एतद्विपयक प्राप्त है। इनमें से कुलपति, तीर्थराज और राम कवि द्वारा कुछेक का अनुवाद भी हो चुका है।

श्री शेर बहादुर झा

हिन्दी में नासिक्य प्रक्रिया

भाषा के विश्लेषण एवं उसकी शिक्षण-विधियों को वैज्ञानिक रूप प्रदान करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है, कि उसके विविध स्वरूपों की परीक्षा करके उन्हे उचित संज्ञा प्रदान की जाय। किसी पक्ष की स्पष्ट एवं वैज्ञानिक व्याख्या का अभाव शिक्षक और छात्र दोनों को संदिग्ध अवस्था में छोड़ देता है। अनुस्वार को लेकर हिन्दी में भी एक ऐसी ही संदिग्ध अवस्था दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत परंपरा के अनुसार हिन्दी के संदर्भ में जहाँ ध्वनियों का उल्लेख किया जाता है वहाँ अनुस्वार को भी हिन्दी ध्वनियों में सम्मिलित किया जाता है। परंतु केवल परंपरा को आधार मानकर हिन्दी में अनुस्वार स्वीकार करना न उचित ही है, और न वैज्ञानिक ही। इस लेख में इसी समस्या के समाधान का किंचित प्रयत्न किया गया है।

अनुस्वार के ध्वनिमूल्य (phonetic value) के संबंध में प्राचीन और आधुनिक ध्वनिविदों ने गंभीरता से विचार किया है परंतु आज तक वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं।[१] इतना अवश्य उल्लेख है कि नासिक्य प्रक्रियाओं (nasal processes) के अन्तर्गत नासिक्य व्यंजनों और अनुनासिक स्वरों के अतिरिक्त अनुस्वार को एक तीसरी कोटि की ध्वनि माना गया है।[२] नासिक्य-व्यंजनों की उच्चारण-विधि के संबंध मे तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में उल्लेख मिलता है कि इनके उच्चारण में करण की वही स्थितियाँ होती हैं जो स्पर्श व्यंजनों के उच्चारण में होती हैं। इनके साथ जब नासिक्य प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है, तब विविध नासिक्य व्यंजनों का उच्चारण होता है।[३]

---

१. The Phonetic value of this feature hawever has provided a problem for Phoneticion wether anceint medieval or modern.

Pnonetic in Ancient India—Allen, London 1953 पृ० ४१

२. But apart from about the account given by our treatises, and also the system of writing presents us a third sub-category of nazalization processes. The name which this third feature bears is 'anuswara',

वही पृ० ४१

३. TP (तैत्तिरीय प्रातिशाख्य) further pionts out that the articulator is as for the corresponding oral consonants applied to the stop series (स्पर्श, स्पृष्ट) this process gives rise to nasal consonants.

वही पृ० ३९

उक्त नासिक्य प्रक्रिया का प्रयोग स्वरो के साथ करने पर अनुनासिक स्वरो का उच्चारण होता है। शुद्ध स्वरो से अनुनासिक स्वरो का भेद स्पष्ट करने के लिए प्राचीन ग्रथो मे अनुनासिक स्वरो के लिए 'रक्त' शब्द का प्रयोग किया गया है।[1]

जैसा कि ऊपर कह आए है कि नासिक्य-प्रक्रिया के अन्तर्गत अनुस्वार को नासिक्य-व्यजन और अनुनासिक स्वर से भिन्न तीसरी कोटि की ध्वनि माना गया है, जिसका ध्वनिमूल्य और उच्चारण विधि स्पष्ट नही। पाणिनि ने अनुस्वार की उच्चारण विधि न बताकर उस ध्वनि की तुलना वीणा की ध्वनि से करते हुए 'अलाबु वीणा निर्घोष'[2] कहकर स्पष्ट करने का प्रयास किया है। आधुनिक ध्वनिविदो ने इसे अनुनासिकता युक्त दीर्घ स्वर (Nazalization and lengthening of vowel) की सज्ञा भी दी है। इस मत के मानने वालो मे ह्विटनी भी है।

अनुस्वार का ध्वनिमूल्य अस्पष्ट होने पर भी किन ध्वन्यात्मक प्रकरणो (phonetic contexts) मे उसका व्यवहार होता है, इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। अनुस्वार का व्यवहार सस्कृत में अन्तस्थो से पूव माना गया है[3]। उदाहरणार्थ वश, हस, सहार, सवाद आदि शब्दो में श, स, ह, व, य, से पूव ध्वनि अनुस्वार है। इस सदर्भ में आज की आदर्श हिन्दी में वस्तुत उच्चारण की क्या स्थिति है, तथा श, स, ह, व, य, से पूर्व कौनसी ध्वनियाँ उच्चरित होती है, यहाँ हम उनको ध्वन्यात्मक सकेतो (phonetic symbols) द्वारा वर्गाकार कोष्ठक में स्पष्ट करेंगे।

(१) हिन्दी में [s] तथा [ʃ] से पूर्व [n] का उच्चारण सुनाई पडता है। यथा —

हस [hans]
कस [kans]
ससार [sansa r]
सस्कृत [sanskrit]
वश [wan ʃ]
दश [dan ʃ]

(२) [h] से पूव दो स्थितियाँ है—अनुनासिकता अथवा कोमल तालव्य नासिक्य व्यजन की। यथा —

सिहासन [sĩha san] / सिघासन [singha san] सिह [sĩh] / सिघ [singh]

१ In connection with the vowels working of the process is similarly quiete clear Here again anunāsika-is regularly used as opporsd to 'suddha' pure non-nazalized vowels Another term however also used by some of the tretises namely rakta 'Coloured' वही पृ० ३९

२ पाणिनीय शिक्षा, २३।

३ RP (ऋग् प्रातिशाख्य) classes it with vowels and fricatives as lacking contact वही पृ० ४१

[३] [v] अथवा [w] के पूर्व दन्त्योष्ठ्य [m̤] अथवा द्वयोष्ठ्य [m] का उच्चारण होता है। यथा:—

संवाद [sam̤ va:d] / [samwa:d]

(४) [j] के पूर्व जिस ध्वनि का उच्चारण होता है वह अनुनासिक श्रुतिस्वर (dipthong) है। यथा:—

संयम [Sãijam]

संयत [Sãijat]

[j] से पूर्व की ध्वनि श्रुतिस्वर ही है, यह जानने के लिए यदि हम उक्त शब्दों का उच्चारण बिना अनुनासिकता के करने की चेष्टा करें तो उक्त शब्दों का उच्चारण इस प्रकार का होगा:—[Saijam], [Saijat]

अत: स्पष्ट है कि जिन ध्वन्यात्मक, प्रकरणों में संस्कृत में जहाँ अनुस्वार बतलाया जाता है,वहाँ हिन्दी में उक्त ध्वनियों की अवस्थिति है।

हिन्दी के नासिक्य व्यंजन स्वनिम

उपर्युक्त ध्वनियों को जिन स्वनिमों (Phonemes) के अन्तर्गत वितरित किया जा सकता है, वे इस प्रकार स्थिर किए जाते हैं।

(१) /m/–यह द्वयोष्ठ्य नासिक्य व्यंजन स्वनिम है। इसके दो संस्वन (allophones) हैं [m] तथा [m̤]। प्रधान का उच्चारण द्वयोष्ठ्य ध्वनियों के पूर्व होता है, तथा शब्द की आदि मध्य एवं अंत्य स्थिति में इसका उच्चारण मिलता है। [m̤] का उच्चारण शब्द के अन्तर्गत केवल दंत्योष्ठ्य ध्वनि [v] के पूर्व होता है। उक्त उदाहरणों द्वारा यह स्पष्ट किया जा चुका है।

(२) /n/—वर्त्स्य नासिक्य व्यंजन स्वनिम है। [n] का उच्चारण शब्द की आदि, मध्य और अंत्य स्थिति मे होता है। शब्दांतर्गत इसकी स्थिति इस प्रकार है।

(२.१) तवर्ग तथा j, w, h से पूर्व। यथा:—

पंत [pant]
अन्य [anj]
अनन्वय [ananwaj]
वन्हि [wanhi]

(२.२) च वर्ग से पूर्व

चंचल [cancal]
अंचल [ancal]
कंज [kanj]

(२.३) ट वर्ग से पूर्व

कंटक [kanṭak]
डंडा [ḍanḍa:]
डंठल [ḍanṭhal]

(२.४) [ʃ] तथा [s] से पूर्व

हंस [hans]
कंस [kans]
वंश [wanʃ]
संसार [sansa:r]
संस्कृति [sanskriti]

मानदंड मान लें तो, ये अन्य भाषाएं भी स्थूल अर्थ में लिंगयुक्त भाषाओं के अंतर्गत आ जाती हैं। भारोपीय एवं सामी हामी वंशों की भाषाओं में यह विशिष्ट कुतूहल जनक प्रयोग या तो पृथक्-पृथक् स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ या परस्पर प्रभाव से या उनके एक सामान्य मूलभूत स्रोत के कारण उद्भूत हुआ। यह एक विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि यद्यपि यूरोप की तथा भारत की आर्य भाषाओं का अलगाव कुछ चार हजार वर्ष पूर्व हुआ, तथापि लिंग-विधान में जिन तीन प्रकार के स्थित्यन्तर इधर हुए, उन्हीं तीन तरह के परिवर्तन उधर (यूरोपीय आर्य भाषाओं में) हुए। समान पृष्ठभूमि ध्वनि-विकार, सादृश्य, मानव सहज सरलीकरण की प्रवृत्ति आदि कारणों से यह समान विविध स्थिति उत्पन्न हो गई। हिन्दी, पंजाबी, सिन्धी आदि में जैसे नपुं० लिंग तिरोहित हुआ, वैसे ही "अपभ्रष्ट" लैटिन के रूपांतर फ्रांसीसी, स्पेनिश, इटालियन आदि में भी केवल दो लिंग रह गये और पुंल्लिंग व स्त्रीलिंग के बीच में समस्त संज्ञाओं का विभाजन होने लगा और अनिर्दिष्टता तथा कुछ सीमा तक दुर्बोधता तो रह गई। हमारे यहाँ लिंगानुसार क्रियारूप भी बदलने लगा तो वहाँ निर्देशक शब्द (article) के लिंगानुसार परिवर्तन का प्रारम्भ हुआ। मराठी और गुजराती में जैसे तीन लिंग टिक गये हैं वैसी ही स्थिति जर्मन, डच् और रूसी में भी है। इनमें से रूसी में लिंग प्रयोग अधिक व्यवस्थित जान पड़ता है। उसमें साधारणतया ओकारान्त संज्ञाएँ नपुंसक लिंग, व्यंजनांत संज्ञाएँ पुंल्लिंग एवं आकारान्त संज्ञाएं स्त्रीलिंग होती हैं। तीसरे, बंगला, उड़िया और असमिया तथा अंग्रेजी के बीच में समान स्थिति है।

किन कारणों से और कैसे भाषाओं में लिंगभेद का उदगम तथा प्रचलन हुआ—यह एक अत्यंत जटिल भाषावैज्ञानिक समस्या है। आधुनिक काल में ब्रुगमन, फ्रेजर, जेस्पसन, ह्विटनी, वाद्रिएम, एटविसल, बरो, बाबूराम सक्सेना आदि विद्वानों ने इस पर विचार किया है। एक अभिमत यह है कि यह प्रणाली भाषा की आंतरिक व्यवस्था मात्र है और बाह्य-वर्गीकरण से इसका संबंध नहीं है। दूसरा वाद यह है कि विचार-वर्गीकरण के प्रयत्न से इस पद्धति का आविर्भाव हुआ। हमारे प्राचीन वैयाकरणों को लिंग-विधान व्याख्या करने के लिए कुछ अबोध्य ही लगा था। पतंजलि मुनि अपने व्याकरण महाभाष्य में प्रश्न करते हैं कि "खट्वा" और 'वृक्ष' का स्त्री० एवं पुं० प्रयुक्त करना कैसे उचित है ? तट, तटी और तटम् का उदाहरण देकर वे पूछते हैं कि एक ही वस्तु में तीनों लिंगों की कल्पना कैसे की जा सकती है ?[1] कैयट, नागेश भट्ट आदि के भाष्यों और भर्तृहरि के "वाक्यपदीय" में कल्पना और विचार-वर्गीकरण की ओर संकेत किया गया है। संस्कृत व्याकरणकार लिंगानुशासनों के द्वारा संज्ञाओं के लिंगों के प्रयोग का सविस्तार उल्लेख करते हुए अक्सर यह कह कर तृप्ति का अनुभव करते हैं कि लिंगमशिष्यामिति, लोकाश्रयत्वात् लिंगस्य। शेषतु ज्ञेय शिष्टप्रयोगत।

१ पतंजलि विरचितम् पाणिनीय व्याकरण महाभाष्यम् भार्गवशास्त्रिणा सम्पूर्य संस्कृतम्-चतुर्थ खण्डम्-१-२ पृ० १६ से ३१ (बम्बई, १९५२)।

सरलीकरण की प्रवृत्ति

बौद्ध लेखकों की संस्कृत में लिंग परिवर्तन बहुतायत से पाये जाते हैं। एडजर्टन ने बतलाया है कि यह रूप-निर्देशित लिंगभेद के टूट जाने की प्रारम्भिक स्थिति थी।[१] परिनिष्ठित संस्कृत में भी यह एक विशेषता थी कि भिन्न लिंग प्रयोग शिष्टों की एक प्रकार से विवक्षा माना गया था। पालि, प्राकृत एव अपभ्रंश सर्वसाधारण की भाषाएँ थीं और उनमें ध्वनिविकारों का क्रम अबाध गति से चला। पदाकृति के बदल जाने से लिंग में संदिग्धता या परिवर्तन का होना स्वाभाविक था। आचार्य हेमचन्द्र बताते हैं कि "अपभ्रंशे लिंगमतन्त्रं व्यभिचारिप्रायो भवति"।[२] पुं० तथा नं० इन दोनों लिंगों के लिए अ, इ और उ अन्त्यस्वर समान हो गये जिससे इन दोनों के बीच मे बड़ी उलझन होने लगी। विभक्ति प्रत्ययों का भी एकीकरण हो चुका था। इन कारणों से अपभ्रंश की लिंग-प्रथा मे मात्रा की शिथिलता आ गई। मागधी अपभ्रंश मे इस प्रवृत्ति के प्रबलतर हो जाने से उस अपभ्रंश से उत्पन्न आधुनिक भाषाओं मे लिग पूर्ण रूपेण निर्लक्षित हो गये।

मराठी मे अ, इ, उ कारान्त और कुछ ईकारान्त संज्ञाएँ भी विभिन्न तीनों लिंगों की हो सकती हैं। संस्कृत तत्सम आ, ई, ऊकारान्त संज्ञाएँ तथा ठेठ मराठी की बहुधा ई अन्तवाली संज्ञाएँ तो स्त्री० होती हैं। ठेठ मराठी की आकारान्त संज्ञाएं प्रायः पुं० मानी जाती हैं। ठेठ मराठी की ओ और ऊ कारान्त संज्ञाएँ स्त्री० तथा पुं० दोनो की हो सकती हैं यथा चंडू (पुं०), जलू (स्त्री०), लाहो (पुं०), बायको (स्त्री०)।

मराठी और गुजराती में प्राणिवाची संज्ञाओं मे कभी-कभी क्रमशः 'ए' और ऊं जोड़ कर स्त्रीपुंस्त्व से परे सामान्य प्राणिविशेष या प्राणिसमूह विशेष को नं० में द्योतित किया जाता है—यथा (मराठी) बकरा, बकरी, बकरें (नं०), मुलगा (लड़का), मुलगी, मुलगें (नं०), (गुजराती) बकरो, बकरी, बकरूं (नं०), छोकरा, छोकरी, छोकरूं। मराठी व गुजराती नं० के संबंध मे एक कुतूहल जनक बात यह है कि कभी-कभी स्त्रियों के लिए आदरार्थ में नं० बहुवचन प्रयुक्त होता है, यथा श्रीमती गंगाबाई आलीं आहेत, श्रीमती गंगाबैन आव्याँ छे।

कारक परसर्ग एवं क्रियारूप

मराठी षष्ठी विभक्ति प्रत्यय चा, ची और चे लिंगानुसार रूप बदलते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि यह सचमुच संबंध कारक परसर्ग नहीं है, अपितु "संबंधी विशेषण" का प्रत्यय है और चूंकि मराठी में संबंध कारक नहीं है, यह संबंध कारक का काम दे रहा है किन्तु कारक की कसौटी पर यह खरा नहीं उतरता। मराठी में

१. Buddhist Hybrid Sanskrit (Grammar and Dictionary)—Part I PP. 39-41 (New Haven 1953).

२. अपभ्रंश व्याकरण-सूत्र ४४५ पृष्ठ ९०-९२—शालिग्राम उपाध्याय द्वारा हिन्दी में अनूदित। (दिल्ली, १९५८)।

चा ची-चें आदि की जो स्थिति है वही पजाबी दा-दी-दे एव हिन्दी का-की-के की है। इनको कारक प्रत्यय की अपेक्षा विशेषण साधक परसग कहना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। शिवनाथ के इस मत में कि "यह सबध कारक कारको के अतर्गत नही रखा जा सकता"[1] तथ्य है। हिन्दी, पजाबी और मराठी में यथार्थ में कोई विभक्तिक रूप लिंगानुसार भिन्न नही है।

आधुनिक भारतीय भाषाओ मे लिंग भेद के टिकने मे लिंगानुवर्ती क्रियारूप भेद का सहारा भी प्राप्त हो गया। भारतीय की पूर्वावस्थाओ मे लिंगानुसार क्रियारूप नही बदलता था। मराठी और गुजराती मे तीन लिंग के लिए तीन तीन रूप बन गये तथा हिन्दी एव पजाबी में लिंगानुसार दो-दो। इन दोनो में नपुसक लिंग रूपो का बोझ तो हट गया, किन्तु क्रिया रूप भेद का एक नया बोझ आ मिला। मराठी मे लिंगानुसार क्रिया रूप भेद होने का कारण रामचद्रभिकाजी जोशी यह जताते हैं कि अनेक क्रियापद मूलत विशेषण थे।[2] विशेषणो मे लिंगभेद होता था और होता है। कुछ विशेषण जब क्रियापद के रूप में परिवर्तित हो गये तब भी लिंग भेद ने उनका साथ न छोडा। हिन्दी क्रिया रूप के सम्बन्ध में धीरेन्द्र वर्मा ने विचार किया है और बतलाया है कि सस्कृत और हिन्दी कृदत में लिंग भेद के होने के कारण कृदन्त से उत्पन्न हिन्दी क्रियाओ में लिंगभेद आ गया।

सस्कृत, हिन्दी, पजाबी, उर्दू, मराठी और गुजराती मे सज्ञाओ के लिंगभेद स्थूल रूप से निम्नलिखित तालिका द्वारा दिखाये जा सकते है।

सज्ञा	सस्कृत	हिन्दी, पजाबी और उर्दू	मराठी	गुजराती
अकारान्त (या व्यजनान्त)	पु०, न०	पु०, स्त्री०	पु, स्त्री० न०,	पु०, स्त्री० न०
आकारान्त	प्राय स्त्री०	पु०, स्त्री०	पु०, स्त्री०	पु०, स्त्री०
इकारान्त	पु०, स्त्री०, न०	स्त्री०	पु०, स्त्री०	पु०, स्त्री०
ईकारान्त	प्राय स्त्री०	पु०, स्त्री०	पु०, स्त्री०, न०	पु०, स्त्री०
उकारान्त	पु०, स्त्री०, न०	पु०, स्त्री०	पु०, स्त्री०, न०	पु०, स्त्री०
ऊकारान्त	पु० स्त्री०,	पु०, स्त्री०,	पु०, स्त्री०,	पु०, स्त्री० न०

इन भाषाओ की लिंग सबधी विशिष्ट स्थिति का द्योतन करने के लिए इनके लिंगविधान को व्याकरणिक लिंगपद्धति (Grammatical Gender) कहा गया है। परन्तु यह अभिधान पूर्ण रूप से सतोषकर नही जान पडता। इनमें लिंग रूप, समन्वय अथवा रूढि के अतिरिक्त एक अन्य मुख्य बात पर भी निर्भर है। "काफी" या "छुट्टी" इसलिए स्त्रीलिंग है कि ये सज्ञाएँ ईकारान्त की हैं, और तदनुसार क्रियारूप आदि लागू होते हैं।

१ "हिन्दी कारको का विकास" पृ० ८०।

२ मराठी भाषेची घटना पृ० १४०-१४१ (पूर्ण १६००)

किन्तु भाई, बहनोई, ननदोई, धोबी, माली आदि संज्ञाएँ ईकारान्त की होते हुए भी उनके ईकारान्त क्रियारूप प्रयुक्त नहीं होते हैं। हम "मेरी बहनोई आगई है" नहीं कह सकेंगे, क्योंकि यहाँ अर्थ का सवाल है। यहाँ लिंग के लिए अर्थ ही सर्वोपरि है। यहाँ लिंग शब्दार्थानुवर्ती है। यहाँ यह (Lexical Gender) कहा जा सकता है। अतः इस समस्त लिंग-विधान को Lexico-grammatical Gender System) (शब्दार्थ-व्याकरणिक लिंग-विधान) कहना अधिक सँगत होगा।

द्राविड़ प्रणाली

आर्य लिंग की तुलना में द्राविड़ लिंग नियमित और सुगम रहा है। द्राविड़ भाषाओं में भी एक विशिष्ट लिंग-प्रणाली विद्यमान है। उनमें लिंगानुसार संज्ञाओं का विभाजन सुनिश्चित रहा है, जिससे किसी पेचीदगी या उलझन के लिए स्थान ही नहीं रह जाता। इसका मूल कारण यह प्रतीत होता है कि द्राविड़ लिंग आर्य लिंग की भांति संज्ञा के रूप के फेर में न पड़ कर, सीधे अर्थ से संबंधित रहा। अतएव, संज्ञा कालक्रमेण घिसपिस जाय, सरलीकृत हो जाय, संज्ञा-संज्ञा में सादृश्य जो भी हो, नई संज्ञाओं की गठन हो या विदेशी संज्ञाओं को अपनाया जाय, उसका कोई असर लिंग पर नहीं पड़ सकता। फिर भी उसे कोरी प्राकृतिक लिंग व्यवस्था नही कह सकेंगे। एक अन्य विचार से भी द्राविड़ों ने काम लिया जान पड़ता है।

प्राचीन तमिल वैयाकरणों ने दो मुख्य वर्गों को उयर् तिणै (उन्नत वर्ग) और अल्तिणै (सामान्य या निम्न वर्ग) कह कर अभिहित किया है। तेलुगु व्याकरणकारों ने इन वर्गों के लिए महत्-अमहत् पद प्रयोग किये हैं। पहले वर्ग में मनुष्य और दूसरे मे निम्न प्राणी एवं जड़ पदार्थ रखे गये। उच्च वर्ग मे दो उपविभाग-आण् पाल् (पुरुष विभाग) तथा पेण् पाल् (स्त्री विभाग)—माने गये। इस प्रकार, एक तो प्राकृतिक लिंग भेद रखने वाले अन्य प्राणियों और निर्जीव वस्तुओं को एक सामान्य निम्न वर्ग मे बिठाया और उन्नत वर्ग में मात्र स्त्री-पुरुष भेद किया गया। इन भाषाओं में बहुवचन प्रत्यय स्त्री एवं पुरुष के लिए एक समान है; अन्यथा विभिन्न लिंगों के अनुसार भिन्न-भिन्न वचन प्रत्यय जुड़ते हैं। उक्त बहुवचन समानता तृतीय पुरुष सर्वनाम और क्रिया-रूप के लिए भी अन्वित होती है; अन्यथा, तृतीय पुरुष मे लिंगानुसार भिन्न सर्वनाम है। इन भाषाओं में विशेषण के रूप लिंगानुसार विकृत नही होते।

क्रियारूप

तमिल और कन्नड़ मे प्रथम एवं द्वितीय पुरुष मे क्रियारूप लिगानुवर्ती नही है। पर तृतीय पुरुष एक वचन मे प्रत्येक काल मे लिंगानुसार क्रियारूप बदलता है यथा—(तमिल) अवन् नडंदान् (वह चला); अवल् नड़न्दाल् (वह [स्त्री०] चली; अदु नड़न्ददु (वह [न०] चला); अवर् नडन्दार् अथवा अवर्गल् नड़न्दार्गल् (वे [पु० या स्त्री०] चले); अवैंगल् नड़न्दन (वे [न०] चले)। यह एक रोचक बात है कि तेलुगु एक वचन मे स्त्री० एवं न० लिंगों के लिए एक सामान्य क्रिया रूप चलता है जैसे रमा वच्चिनदि (रमा आई) बंडि वच्चिनदि (गाड़ी आई)। यह विशेष रूप से दृष्टव्य है कि दक्षिणी भाषाओं मे से

मलयालम में लिंग-व्यवस्था अत्यंत सरल हो चुकी है। उसमें लिंग के कारण क्रियारूप किसी भी पुरुष में नही बदलता। इसके अतिरिक्त, क्रियारूप वचनानुसार भी नही परिवर्तित होता है। अन्य द्राविड भाषाओ से मलयालम यह एक बडा भेद रखती है। कहा जा सकता है कि मलयालम लिंगविधान अंग्रेजी-बंगला लिंगवत् हो गया है।

दक्षिणी भाषाओ में मनुष्य-शिशुओ को बोलचाल में एव साहित्य में भी साधारणतया निम्नवर्ग में रखने की परिपाटी है (जैसे अंग्रेजी की रूढि है—इसमें इट् सर्वनाम शिशु को भी लागू होता है), क्योकि छोटी आयु के बच्चो के सबध में स्त्री पुरुष भेद जताने की आवश्यकता प्रतीत नही होती। द्राविड भाषाओ में चिरपरिचित प्राणियो के लिए जैसे गाय, भैंसा, लिंगानुसार भिन्न सज्ञाएँ हैं, किन्तु असंख्य पशु-पक्षी आदि सूचक सज्ञाओ का, आवश्यकता पडने पर, लिंग वर्ग सूचक पद पहले जोड कर, स्त्रीत्व अथवा पुरुषत्व दिखाया जाता है (जो रीति हिन्दी मराठी आदि भाषाओ में भी प्रचलित है)—यथा (तमिल) आण्-नरि (नर-गीदड), पेण्-नरि (मादा गीदड)। किन्तु ऐसे पुरुष या स्त्री सूचक उपसर्ग के लगने पर भी उसके एक वचन-बहुवचन एव क्रियारूप न० वर्ग के ही रहते हैं। आधुनिक विद्वानो ने उक्त उन्नत वर्ग को विवेक युक्त जाति (रैशनल जेंडर) और सामान्य वर्ग को विवेकरहित जाति कहा है। जब ये भाषाएँ अन्य भाषाओ से सज्ञा ग्रहण करती हैं, तब उनके लिंग-प्रयोग की कोई सदिग्धता पैदा नही होती। ऐसी नवागत सज्ञाओ को ठीक त्रिविध वर्गों मे रखा जाता है। इसमें अपवाद या यादृच्छिकता नही रहती।

बहुवचनरूप

द्राविड पद्धति में मनुष्य का स्त्री पुरुष भेद तो व्याकरणिक रूपो में कुछ सीमा तक जरूर प्रतिबिंबित हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि निम्न प्राणियो को एक व्यावहारिक अनुकूलता के लिए सामान्य वर्ग में प्रयुक्त करना पडा, क्योकि कुछ इनेगिने निम्न प्राणियो को जैसे गाय-बैल, भैंस भैंसा जिनके स्त्री पुरुष भेद से आर्थिक दृष्टि से मनुष्य को मतलब है, छोड असंख्य पशु, पक्षी और इतर प्राणियो का लिंग भेद कर बताना आवश्यक नही है और दूर से देखते ही ऐसे भेद का पता लगाना अनेक सदर्भों में सभव भी नही है। इस स्थिति का अनुभव करके प्रयोग की सुविधा के लिए इन सब को सामान्य या न० वर्ग में रखना सयुक्तिक मालूम होता है।

इन भाषाओ में स्त्री एव पुरुष के लिए एक समान बहुवचन रूप रहा है। इसका कारण यह जान पडता है कि समूहवाचक में स्त्री पुरुषानुसार सदैव भेद करना दुस्तर है। इसलिए कुछ भाषाओ में बहुवचन में दोनो लिंगो के हेतु एक समान रूप का प्रयोग करने की प्रवृत्ति रही है, उदाहरणार्थ अंग्रेजी में बहुवचन 'दे' तीनो लिंगो के लिए प्रयुक्त होता है। जेस्पर्सन ने बतलाया है कि प्राय सभी गोथिक भाषाओ ने स्त्री एव पुरुष दोनो के हेतु एक सामान्य बहुवचनरूप बना लिया है।[1] हिन्दी में भी यह प्रवृत्ति दिखाई देती है, यथा स्त्री भी "हम आते हैं, जाते हैं" कह देती है।

1 Philosophy of Grammar pp 226—243

स्त्री के लिए

तेलुगु में स्त्री० एकवचन रूप के लोप का एक कारण स्त्री की सामाजिक स्थिति हो सकती है। व्याकरणिक रूपों की संख्या कम करने की प्रवृत्ति तो है ही। किन्तु स्त्री० एकवचन का विलीनीकरण न० के साथ क्यों हुआ, पुं० के साथ क्यों नही? इसका कारण यह हो सकता है कि शब्द रूपगत स्त्रीपुरुषभेद तो करना था। ग्यारहवी सदी के तेलुगु वैयाकरण नन्नय भट्ट ने स्त्री को विधिपूर्वक अमहत् याने जड़-वस्तु एवं निम्नप्राणियों के वर्ग में रख दिया (स्त्री पशुजडान्विनाऽन्ये महदाख्या:)। पुरानी कन्नड मे स्त्री को अपवाद रूप मे न० में प्रयुक्त किया जाता था। प्राचीन कन्नड़ व्याकरणकार केशिराज ने लिंग प्रयोगानुसार, साधारण तीन के अतिरिक्त अन्य छ: वर्गों का उल्लेख किया है—पुनपुंसकालिंग, पुस्त्रीलिंग तथा स्त्रीनपुंसकलिंग अर्थात् दोनों लिंगों मे प्रयुक्त होने वाली संज्ञाएँ, समस्तलिंग, वाच्य या विशेष्याधीन लिंग और अव्यय लिंग। मराठी मे एक चौथे या सामान्य लिंग का उल्लेख करते हैं। यह सामान्यलिंग उपर्युक्त प्रकार का उभयलिंग या त्रिलिंग है। विश्रुत भाषातत्त्वज्ञ डा० काल्डवेल् ने यह अभिमत व्यक्त किया है कि शायद संसार मे अन्य किसी भाषा या भाषाकुल के लिंग विधान की अपेक्षा द्राविड़ लिंग पद्धति अधिक पूर्ण एवं अधिक व्यवस्थित है।

ऊपर द्राविड़ लिंग पर विचार करते समय हमने देखा कि सामान्यतया निम्न प्राणियों के संबंध मे लिंग भेद की एक व्यावहारिक कठिनाई भी है। जब हम हिन्दी मे कोयल गा रही है या लोमड़ी भाग गई कहते हैं, आशय यह नही कि वह अवश्यमेव मादा हो, वह नर भी हो सकता है। हिन्दी मे बिच्छू, फेरू, उल्लू, गोजर आदि पुं० हैं और रोहू, चिड़िया, चील, बछिया आदि स्त्री० काक या कोआ, शुक या तोता पुं० मे चलते हैं तो मैना, कोयल स्त्री० में। मैना, कोयल सुरीली ध्वनि बोलती हैं। उनकी इस ललित कला के कारण शायद वे स्त्री में प्रयुक्त होने लगी हैं। मराठी में मांजर (बिल्ली) स्त्री व न० मे, मुगूस हुकर (सुअर) पुं० और न० मे व्यवहृत होते हैं। उसमें मैना, सुसर (घड़ियाल जलजन्तु) स्त्री हैं तो पोपट (तोता), उदीर (चूहा) पुं० और बदक, चिलट (घुर घुरा) आदि न० हैं। निम्न प्राणियों के लिंग के सम्बन्ध में जेस्पर्सन् ने स्वीडिश भाषा के एक मजेदार विपर्यय का उदाहरण दिया है।

"What is the name of that ape ? She is called Charles, for it is a he. In Swedish apa (ape) is feminine"[1]

मराठी, तमिल, कन्नड़ और अँग्रेजी में मनुष्य के विषय मे जब लिंग का पता नहीं हो, न० का प्रयोग होता है। मराठी— कोण आले (कौन आया ?), तमिल—अदु यार् (वह कौन ?) कन्नड़—अदु यारु ? (वह कौन ?), अंग्रेजी—व्हू ईस् इट् ? इट् ईस् आय् (वह कौन है ? वह मैं हूँ)। संतान, औलाद जिनके अर्थ बच्चा, बच्ची दोनों हो सकते हैं, हिन्दी में स्त्री० है। सवारी जो पुरुष के लिए भी लागू होती है, ईकारान्त के कारण स्त्री० में चलती है। संस्कृत में औलाद का अर्थ देनेवाली संज्ञा अपत्य, तोक

---

1. Philosophy of Grammar, p. 230.

न० है और मतान पु०। अनादर के अर्थ में विकल्प से सस्कृत में नट को, वेश्या को क्रमश नटम्, क्षुद्रम् कह कर न० में रखा गया है। पत्नी के लिए कलत्र के अतिरिक्त दम्, तल्पम् न० सज्ञा भी है। मनुष्य के समूह के हेतु, जिनमें दोनो लिंगो के लोग समाविष्ट होते है, भाषाओ में तीनो लिंगो का प्रयोग हुआ है। हिन्दी में लोग पु०, भीड स्त्री० है। स्त्री लोग आये है, स्त्री लोग आई है दोनो कहते है जबकि मराठी में सखीजन, स्त्रीजन पु० है। अंग्रेजी में सिस्टर-आर्गनाइजेशन, न कि ब्रदर-आर्गनाइजेशन कहने की परिपाटी है। मराठी और द्राविड भाषाओ में सरकार, शासन न० है तो हिन्दी में पहली स्त्री, और दूसरा पु० है। पतजलि मुनि ने बतलाया है कि सस्कृत में जब लिंग का पता नहीं हो और किसी वस्तु के गुण के सबध में सदेह हो तो न० का व्यवहार होता है (एव हि दृश्यते लोके निरज्ञाने अर्थे गुण सदेहे च नपु सकलिंग प्रयुज्यते)।

लिंगान्तर

सस्कृत, मराठी आदि नपुसकलिंग युक्त भाषाएँ भी भाव-वाचक सज्ञाओ को अवश्य मेव न० में नही रखती हैं। सस्कृत में गर्व, द्रोह पु० है तो धैर्य, पुरुषत्व न०। वैसे ही मराठी भाव-वाचक सज्ञाएँ तीनो लिंगो में बँटी है और हिन्दी में दोनो में। कभी-कभी वस्तुओ की बडाई-छोटाई, मोटाई-पतलाई आदि का अतर बताने के उद्देश्य से सज्ञाओ के प्रत्ययस्तर में परिवर्तन करके लिंगान्तर कर दिया जाता है। किन्तु ऐसे रूपातर से कही-कही अर्थ भेद भी हो गया है। उदा —ताला ताली (ताली 'ताला' का केवल लघुरूप नही है, चीटा-चीटी, मक्खा-मक्खी (माखा-माखी) आकार में बडे-छोटे तो होते हैं, किन्तु वे एक ही जन्तु के अर्थात् उसी कीट विशेष के गुरु-लघु रूप नही हैं। सस्कृत में लघुत्व-द्योतक 'इका' जुडने से पूर्व ही यदि सज्ञा स्त्री० हो तो 'इका' लगने पर स्त्री० ही रहेगी, यदि पहले स्त्री० नही हो तो 'इका' जुडने पर स्त्री० हो जाती है, यथा—कुभ-कुभिका, खट्वा-खटविका, लता-लतिका, पुस्तक-पुस्तिका। किन्तु क परसग के लगने पर लिंग वही रहता है—वृक्षक, करण्डक।

विश्वास, दार्शनिक विचार, कविकल्पना आदि का भी कुछ सज्ञाओ के लिंग-निर्णय में योग रहा है। सस्कृत, हिन्दी, मराठी आदि में भूमि के पर्यायवाची सभी शब्द स्त्री० में प्रयुक्त हुए हैं। भाषाओ के नाम, वे किसी भी स्वर या व्यजन से अन्त होते हो, स्त्री० में ही चलते हैं। शायद इसीलिए भाषाओ के नामो को ईकारान्त में रखने की प्रवृत्ति है—कन्नडी, बगाली, असमामी, तेलगी। साधारणतया नदी के नाम भी स्त्री० में प्रयुक्त होते है। सूर्य, चन्द्र, शनि, मगल आदि ग्रह मानव का हिताहित करने वाले देवता माने गए और उनके नाम पु० में रखे गए। किन्तु इन ग्रहो के वाचक द्राविड शब्द नायिरु, नेसरू, तिंगलु आदि न० में ही चलते हैं। सूर्य का पर्यायवाची सज्ञा रवि कन्नड में न० में प्रयुक्त हुई है (रवि मूडिदम्, रवि मूडिदुदु)। सस्कृत में ब्रह्मन् सज्ञा पु० एव न० दोनो में प्रयुक्त हुई है। न० में प्रयुक्त होने में दार्शनिक विचार कारण था। सृष्टि के मूलकारण एव परमचेतन सत्ता को बतलाने के लिए स्त्री पुरुष भेदातीत तृतीय लिंग का प्रयोग किया गया। अन्यथा एक देवता के अर्थ में उसके लिए पु० का व्यवहार हुआ है।

सामान्य रूप

लिंगातीत सामान्य क्रियारूप के प्रयोग के विषय में मराठी द्राविड़ भाषाओं से कुछ मेल खाती है। मराठी में वर्तमान काल के बहुवचन में प्रत्येक पुरुष में एक-एक सामान्य क्रिया रूप तीनों लिंगों के लिए काम देता है। प्रथम पुरुष पुं० एकवचन का क्रियारूप ही उस पुरुष के बहुवचन के तीनों लिंगों के लिए प्रयुक्त होता है। इस काल में प्रथम पुरुष एकवचन में स्त्री० व न० के लिए एक रूप है, अन्यथा एक वचन में लिंगानुसार क्रिया विकृत होती है। भूतकाल मे प्रथम एवं द्वितीय पुरुष के बहुवचन में तीनों लिंगों के लिए एक-एक सामान्य रूप है, किन्तु तृतीय पुरुष में लिंगानुसार भिन्न रूप हैं। इस काल में भी प्रथम पुरुष पुं० एक वचन का क्रियारूप ही उस पुरुष के बहुवचन के तीनों लिंगो के लिए प्रयुक्त होता है। इस काल के प्रथम पुरुष एक वचन में वर्तमान काल की भांति स्त्री० एवं न० के हेतु एक समान रूप है, अन्यथा एकवचन में लिंगानुसार विभिन्न रूप है। भविष्यत् काल में क्रियारूप न्यूनतम है। दोनों वचनों मे प्रत्येक पुरुष मे तीनों लिंगों के लिए एक-एक समान रूप चलता है। ऐसे सामान्य रूप हिन्दी में नही है, प्रत्येक काल में प्रत्येक वचन में लिंगानुसार क्रियारूप बदलता है। दक्खिनी हिन्दी में भूत काल में भी क्रिया कर्ता के लिंग का अनुसरण करती है जैसे मै उनको लिखा हूँ, मै चाय पिया हूँ, मै रोटी खाया। भावे प्रयोग में हिन्दी मे क्रियापद सर्वदा तृतीय पुरुष पुं० एकवचन में रहता है जबकि मराठी मे न० में। जब पुरुष और स्त्री के लिए एक सामान्य क्रिया का उपयोग करना पड़ता है, तब उसे पुं० में रखते हैं। समाज मे स्त्री का गौण स्थान ही इसका कारण समझा जा सकता है। किन्तु जब निर्जीव वस्तुओं के संबंध में बोला जाता है तब क्रियारूप अवश्यमेव अन्तिम कर्तृ-पद के लिगानुसार होता है।

प्रथम तथा द्वितीय पुरुष सर्वनाम कुछ भाषाओं मे लिंगातीत ही है और तृतीय पुरुष मे लिंगानुसार भेद किए गए हे यथा मराठी मे तृतीय पुरुष एकवचन के लिए तो, ती, ते और बहुवचन के लिए त्या ती, हे। इन के साथ छः अन्य निर्देशवाचक सर्वनाम है। हा, ही, हे आदि। तृतीय पुरुष के इन बारह सर्वनामो की जगह हिन्दी मे केवल चार हैं वह, वे, यह, ये। मराठी में तो, त्या, हा आदि कहने से या तमिल में अवन्, अवल्, अदु अथवा कन्नड़ मे अबनु, अवलु, अदु आदि कहने से जैसे स्वतंत्र रूप से लिंग बोध होता है वैसी बात हिन्दी मे नही है।

तत्सम संज्ञा

संस्कृत अकारान्त पुं० शब्द हिन्दी मे साधारणतया पुं० मे रखे जाते हैं। किन्तु संभवतः फारसी पर्यायवाची संज्ञाओं की देखा देखी जय, तान, देह, शपथ ऐसे कुछ स्त्री० में चल पड़े है। संस्कृत में 'इ' में अन्त होनेवाली पुष्कल पुं० संज्ञाएँ है, यथा अंजलि, ऊर्मि, कलि, कुक्षि, ग्रंथि, तिथि, दुंदुभि, नाभि, निधि, पाणि। इस अन्त्यस्वर की ऐसी संज्ञाएँ, वे संस्कृत मे पुं० स्त्री० या न० किसी लिंग मे हों, हिन्दी मे स्त्री० मानी जाती है। किन्तु मराठी और गुजराती मे इसमे भी संस्कृत का अनुसरण करने का प्रयत्न किया गया है। हिन्दी में ईकारान्त के सादृश्य पर ह्रस्व इकारान्त का भी स्त्री० के साथ विशेषीकरण

हो गया है। ऐसी निर्दिष्टता 'उ' में अन्त होने वाली संज्ञाओं के संबंध में नहीं है। अश्रु, ऊरु, वास्तु (पु० व न०), वेणु, शंकु जैसे संस्कृत पु० शब्द हिन्दी में पु० में ही चलते हैं। परन्तु ऋतु, धातु स्नायु, वायु (पु० व न०) सरीखे शब्द हिन्दी में स्त्री० में प्रयुक्त होते हैं। अनेक संस्कृत आकारान्त स्त्री० संज्ञाएँ तद्भव के रूप में हिन्दी में अकारान्त हो गई हैं जैसे खट्वा-खाट, नासा-नाक, बुभुक्षा-भूख, निद्रा-नींद, वरयात्रा-बरात, जिह्वा-जीभ, टकशाला-टकसाल। यद्यपि इनका लिंग पहचानने का आकारान्त का साधन हट गया, फिर भी उनके लिए स्त्री० का प्रयोग जारी रहा है। संस्कृत में आकारान्त सामान्यतः स्त्री० सूचक है, पर इसके उलटे ठेठ हिन्दी संज्ञाओं में आकारान्त पु० का द्योतक है। अतः इस स्वरान्त की हिन्दी में प्रचलित संस्कृत तत्सम संज्ञा एवं ठेठ हिन्दी की संज्ञाओं में परस्पर लिंग प्रयोग विरोधता दृष्टव्य है। हिन्दी की कतिपय ऐसी संज्ञाएँ भी हैं जो आकारान्त (इया प्रत्यययुक्त) होते हुए भी स्त्री० हैं। ऐसी संज्ञाएँ विशेषतः लघुता सूचक होती हैं। फारसी-अरबी से ली हुई इलाज, चमन, जवाब, जवाहर, जशन, जिक्र, जेब, जेहन, नश्तर, शहर आदि पु० हैं तो जगह जीन, जुल्म, तारीख फिक्र, सिफारिश इत्यादि स्त्री० हैं। इन मूल से आई आकारान्त संज्ञाओं की बात भी ऐसी ही है।

व्यंजनान्त की अथवा समान अन्त्यस्वर की ऐसी भी संज्ञाएं हैं जो एक ही अर्थ की होती हैं, किन्तु भिन्न लिंग में चलती हैं। अर्थानुसार लिंग भिन्नता रखने वाली संज्ञाएँ भी हैं। एक ही भाषा के क्षेत्र में प्रदेशगत या बोलीगत लिंगभेद भी परिलक्षित होता है। ऐसी भी कुछ संज्ञाएँ मिलती हैं जो, भाषाओं में भिन्न भिन्न लिंगों में प्रयुक्त होती हैं। पुष्कल नवागत विदेशी संज्ञाओं के लिंग प्रयोग में संदिग्धता एवं तरलता है। इनके प्रयोगों में अन्त्यस्वर साम्य, अर्थसाम्य एवं सादृश्य का योग रहता है।

एकवचन, बहुवचन, विभिन्न कारक, भूत-वर्तमान-भविष्यत् आदि की प्रक्रियाओं द्वारा हम कुछ निश्चित विचार भेद व्यक्त करते हैं, जैसे 'वह गया था'—'वह जायगा'। यहां क्रिया रूप के भेद से कालभेद का विचार जताया गया। यह व्याकरणिक रूपभेद विचार-भिन्नता को प्रकटित करने का काम देता है। किन्तु यह बात कुछ भाषाओं की लिंग-प्रक्रिया के संबंध में प्रायः नहीं कही जा सकती। प्राचीन भाषाओं में समन्वय की दृष्टि से एक ही व्याकरणिक विचार को वाक्य में दोहराया जाता था, जैसे, शुद्धेन जलेन, अन्येषु प्रसिद्धेषु नगरेषु, सः वृद्धः पुरुषः। हम हिन्दी में शुद्ध से जल से, अन्य में प्रसिद्ध में नगरों में नहीं कहते, विशेषणों में भी विभक्ति प्रत्यय नहीं जोड़ते हैं। किन्तु लिंग के संबंध में व्याकरणिक पुनरुक्ति रह गई है। 'उनकी गोरी गाय आठ सेर दूध देती है।'—इस वाक्य में स्त्रीत्व का विचार चार जगह अभिव्यक्त किया गया है। स्वयं गाय का अर्थ ही है कि वह मादा पशुविशेष है, याने, 'गाय' कहने से उस प्राणी के स्त्रीत्व का बोध हो जाता है। फिर भी हम 'की,' 'गोरी,' देती'—इन रूपों के द्वारा भी गाय के मादापन को वाक्य में पुनरुक्त करते हैं।

हिन्दी की संज्ञाएँ, बहुधा, व्यंजनान्त (यद्यपि ये अकारान्त में लिखी जाती हैं), अकरान्त, आकारान्त, और उकारान्त में बटी हैं। यद्यपि इनमें से प्रत्येक कोटि में लिंग की दृष्टि से दुविधा है, तथापि व्यंजनान्त और अकारान्त में इस उलझन की मात्रा

अधिक है। इनमे लिग सूचकता का नितांत अभाव है। वस्तु एवं भाव-वाचक इ, ईकारान्त संज्ञाएँ प्राय: स्त्री में ही चलती हैं। ध्वानिविकास, संज्ञारूप, समन्वय, स्त्रोत, रूढ़ि, कल्पना, सादृश्य, अर्थ, विशेषीकरण आदि विविध कारणों से लिग-प्रयोग मे हिन्दी, मराठी आदि भारोपीय भाषाओं मे अत्याधिक जटिलता विद्यमान है। अतः समुचित रूप से, सुविधापूर्वक, संज्ञाओं के लिग की धारणा कर रखने के लिए स्मृति को पर्याप्त सहारा नही मिलता है। भाषाएँ गतिशील होती हैं और उनमे प्रयत्नलाघव एवं सरलीकरण की प्रवृत्तियाँ काम करती रहती हैं। अतः, जहाँ बोधगम्यता, अर्थ की बारीकी अथवा अन्यथा अभिव्यक्ति की क्षमता में कमी नहीं आती हो वहाँ लिंग-प्रयोग का सरलीकरण स्वाभाविक और अपेक्षणीय जान पड़ता है। ऐसे संदर्भो मे भिन्न लिग प्रयोग वैकल्पिक वा आलंकारिक माने जा सकते है।

डा० विश्वनाथ प्रसाद

सांस्कृतिक एकता के विकास में पारिभाषिक शब्दावली का योग

भाषा एक ऐसा व्यावहारिक साधन है, जिसका समुचित प्रयोग अज्ञान एवं पक्षपात की दुरभिसंधियों को निर्मूल करता हुआ राष्ट्रीय एकता तथा सार्वभौम सहयोग की पुष्टि करता है। भावों और विचारों के संप्रेषण का एकमात्र माध्यम भाषा ही है। आधुनिक युग में विज्ञान ने अपनी नयी उपलब्धियों के द्वारा आधुनिक भाषाओं की अन्तश्चेतना के विस्तार और विकास में जो कार्य किया है, उसे भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि वैज्ञानिक चिंतन को ही छोड़ दिया जाय तो विशुद्ध साहित्य भी तत्वहीन और पंगु हो जाता है। यही कारण है कि सभी उन्नतिशील देशों में पिछले कुछ दशकों की पत्र-पत्रिकाएं सापेक्ष-सिद्धान्त, परमाणविक भौतिकी, खगोल-विद्या विषयक नवीन आश्चर्यों आदि जैसे विषयों को पर्याप्त स्थान देती आई हैं। कम उन्नतिशील देशों में भी यह प्रवृत्ति बढ़ती हुई दिखाई देती है, क्योंकि यह व्यापक रूप में अनुभव किया जा रहा है कि भाषा द्वारा व्यक्त वैज्ञानिक विचारों का संघात प्रत्यक्षतः किसी भी देश के औद्योगिक एवं शिल्पीय उत्थान से संबंधित है।

हमारे देश की भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं में भी ऐसी ही प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। व्यावहारिक रूप से जनसामान्य की जिज्ञासा शान्त करने के लिए भारतीय भाषाओं की पत्र-पत्रिकाएँ अब वैज्ञानिक विषयों को पर्याप्त स्थान दे रही हैं। परन्तु इस क्षेत्र की विस्तीर्ण खाई को पाटने के लिए अभी बहुत-कुछ करना है। भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य की कमी का कारण मुख्यतः यह है कि पिछले दो सौ वर्षों में इन भाषाओं की अभीष्ट उन्नति नहीं हो सकी थी, जो मानवीय क्रियाशीलता के नवीनतम कार्य-क्षेत्रों के बीच उन्हें आधुनिक सभ्यता के वैज्ञानिक तथा शिल्प विषयक पर्याप्त सामर्थ्य प्रदान कर सकती। उन्नयन के मार्ग में यह गतिरोध विदेशी शासन का परिणाम था। अँग्रेजी के एकाधिकार ने शिक्षा और प्रशासन से भारतीय भाषाओं को पूर्णतः बहिष्कृत कर दिया था। खेद है कि इसी कारण हमारी विज्ञान एवं शिल्पविद्या संबंधी शब्दावली अब भी पिछड़ी हुई है और देशी भाषाओं में विज्ञान के अच्छे लेखकों एवं अनुवादकों का इतना अभाव है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि भारतीय भाषाओं ने इस अवधि में बिलकुल

में एक ही संवेगात्मक एवं बौद्धिक प्रतीति सन्निविष्ट है। प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने ठीक ही कहा है कि उनके मूल एवं प्रेरक तत्व एक ही है और मानसिक वातावरण जिसमें वे पनपी हैं, एक समान रहा है। सभी ने पश्चिमी विचार तथा प्रभाव से एक ही प्रकार के संघातों का सामना किया है। यहाँ तक कि दक्षिणी भाषाएँ भी जो द्रविड परिवार की मानी जाती हैं, एक समान परिस्थितियों में फली-फूली हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि इन बड़ी-बड़ी भाषाओं में से प्रत्येक भाषा केवल भारत के किसी भाग की ही भाषा नहीं है, अपितु वह इस देश के बहुरूपीय विचार, संस्कृति एवं अभ्युदय की अभिव्यक्ति करती हुई अनिवार्यतः भारतवर्ष की भाषा है*।

ये सभी आधुनिक भारतीय भाषाएँ २००० विषय-स्वरूपा हैं। तमिल को छोड़कर ये सभी अपभ्रंश से निकली हैं। संस्कृत और प्राकृत के बाद अपभ्रंश ने साहित्यिक सम्मान प्राप्त किया था। आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास उन परिवर्तनों का परिणाम है, जो बीच की अनेक अवस्थाओं से होते हुए अपभ्रंश में घटित हुए। अपभ्रंश के प्राप्त अभिलेख कुछ महत्वपूर्ण स्थानीय-विभेद प्रस्तुत करते हैं। पर प्रत्यक्षतः अपभ्रंश का प्रायः एक ही रूप लिखित बंगला और गुजराती में मिलता है। फिर भी उच्चारित रूप में अपभ्रंश अपनी स्थानीय भाषायी और नृवंशीय परिस्थितियों में विभिन्न प्रादेशिक लक्षणों से युक्त रही और ये ही लक्षण कालांतर में आधुनिक भाषाओं के रूप में विकसित हुए। इन नवीन भाषाओं का आविर्भाव एक ही समय में हुआ हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पर कुछ आगे पीछे करके इनमें से अधिकांश १०वीं शताब्दी के मध्य में उद्भूत हुईं।

भारतीय लिपियाँ

जिस प्रकार भारतीय भाषाओं का एक ही उद्गम है उसी प्रकार इनकी लिपियाँ भी ब्राह्मी से उदित हुई हैं। जहाँ तक लिपियों का संबंध है, नागरी (सामान्य रूप से संस्कृत, हिन्दी और मराठी के लिए व्यवहृत) बंगला, असमी, उड़िया, मराठी, गुजराती तथा गुरुमुखी लिपियों में भगिनी-सभगिनी-संबंध है। वे परस्परतः एक दूसरी के अत्यंत निकट है। इन्हें एक ही लिपि के विभिन्न रूप कहा जा सकता है। दक्षिण भारतीय तमिल, तेलुगु, कन्नड तथा मलयालम लिपियाँ भी एक समान हैं और ये भी उक्त सिद्धांत का अनुसरण करती हुई न्यूनाधिक मात्रा में देवनागरी के ही विच्युत रूप अपनाती हैं। यद्यपि ये सभी आधुनिक भारतीय भाषाएं अपने-अपने लिपि संकेतों का व्यवहार करती हैं, तथापि इन भाषाओं की लिपियाँ तथा वर्ण एक समान ध्वनि-व्यवस्था एवं सांकेतिक गठन पर आधारित हैं। तमिल का थोड़ा-सा विभेद यह है कि उसकी वर्णव्यवस्था में महाप्राण ध्वनियों का अभाव है। उर्दू अपवादस्वरूप है, क्योंकि यह अरबी-फारसी की अपूर्ण लिपि का व्यवहार करती है। इन सब में प्रधान एवं व्यापक रूप में व्यवहृत देवनागरी लिपि है, जो १४ करोड़ से अधिक लोगों द्वारा हिन्दी, मराठी, नेपाली तथा वृहत्तर भारत तक की संस्कृत के लिए प्रयुक्त होती है। गुजराती में केवल इतना भेद है कि देवनागरी की शिरोरेखा

* 'हिस्ट्री आफ बंगाली लिट्रेचर', साहित्य एकेडेमी, १९६१ के प्राक्कथन से।

नहीं लगाई जाती। गुरुमुखी, उड़िया तथा बँगला लिपियों मे अधिक विषमता नहीं है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इस साम्य का कारण यह है कि ये सभी, प्राचीन ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई है, जिसका व्यवहार ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में देश में सवत्र होता था। केवल कुछ उत्तरी-पश्चिमी भागों में खरोष्ट्री का प्रचलन था। इस प्रकार देवनागरी का हमारी सभ्यता एवं इतिहास से दीर्घकालीन संबंध है। ब्राह्मी लिपि से भी बहुत पहले की—मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की लिपि पर दृष्टि डालने पर भारतीय लिपियों की महान् परम्परा का बोध होता है। यही कारण है कि राष्ट्रीय संघटन समिति ने समस्त भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि की ही संस्तुति की है।

भारतीय भाषाओं का उदय

भारत की वर्तमान परिस्थिति में भारतीय भापाओं के विषय में निष्पक्ष जानकारी की अत्यन्त आवश्यकता है। वर्तमान तथा भविष्य को ध्यान मे रखते हुए भारतीय भाषाओं के पारस्परिक सम्बन्ध को ठिकाने से समझ लेना चाहिए। भारतीय भापाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन भाषायी समस्याओं तथा इनके द्वारा उत्पन्न अन्य प्रकार की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक उलझनों को हल करने में अत्यन्त सहायक होगा। हमें महर्षि पाणिनि के आदर्श को सदैव सामने रखना चाहिए, जो भाषाविज्ञान को एक अपूर्व और महत्तम भेंट देने वाले अग्रदूत थे। भारतीय भाषाओं का वर्णनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन इस दृष्टि से होना चाहिए कि वे किस प्रकार अपने प्राचीनतम रूपों से आधुनिकतम रूपों तक एक दूसरे से सम्बन्धित रही है और पारस्परिक आदान-प्रदान करती गई है। साथ ही यह भी देखना होगा कि इन भाषाओं में वैज्ञानिक एवं पारिभाषिक साहित्य का विकास कैसे-कैसे होता रहा है।

आकृति की दृष्टि से भारतीय भाषाओं को चार परिवारो में विभाजित किया जाता है—भारत-आर्य, द्रविड़, आस्ट्रो-ऐशियाटिक तथा तिब्बत-चीनी। उत्तर-भारत की भारत-आर्य भाषाओं का विकास भारत की अत्यन्त शक्तिशाली, साहित्यिक एवं सर्वव्यापी भाषा संस्कृत के प्रभाव मे मध्यकालीन प्राकृत तथा अपभ्रंश अवस्थाओं के उपादानों से हुआ है। प्रभाव की दृष्टि से द्रविड़ परिवार का भी कुछ वैसा ही महत्त्व है। द्रविड़ कुल के अन्तर्गत तमिल, तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम भाषाएँ आती हैं। ये भारतीय प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग तक ही सीमित हैं और लगभग १० करोड़ व्यक्ति इन भाषाओं को बोलते हैं।

संस्कृत के बाद तमिल ही एक ऐसी भाषा है, जो मौलिकता और विपुलता से विमंडित रही है। ईसा-पूर्व-काल से ही उसमें प्राचीन एवं समृद्ध साहित्य का सृजन होने लगा था। कन्नड़ का भी कुछ प्राचीन साहित्य है, जिसका इतिहास प्रायः इसी काल तक चला जाता है। तेलुगु की प्राचीनतम कृतियाँ ईसा की ११वी शताब्दी से मिलती है। मलयालम मुख्यतः तमिल तथा संस्कृत पर आधारित है और उसका इतिहास १२वी शताब्दी से उपलब्ध होता है।

सस्कृत मे प्रयुक्त बहुत से शब्द द्रविड भाषा से आए। सस्कृत के गठनात्मक विकास-क्रम की दृष्टि से भी द्रविड भाषा का प्रभाव महत्त्वपूण है। द्रविड परिवार ने ही सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रश के कालक्रमिक विकास को अधिकाधिक परिचालित किया। यह स्वीकृत तथ्य है कि ईसा-पूर्व कुछ शताब्दियो में सस्कृत में व्यवहृत शब्दो में बहुरूपता थी और यही समय प्राकृत तथा अपभ्रश का उदय-काल था। अत हिन्दी, गुजराती, मराठी, असमी, बँगला तथा अन्य भाषाएँ द्रविड कुल को रिक्थ रूप में अपनाती हैं।

आस्ट्रो-एशियाटिक का प्रभाव द्रविड तथा भारतीय आर्य भाषाओ की अपेक्षा कम महत्त्वपूर्ण नही है। भारतीय आर्य-भाषाओ के ध्वनि-प्रक्रियात्मक एव व्याकरणिक अध्ययन में आस्ट्रो-एशियाटिक भाषाओ के योगदान को अत्यन्त महत्ता के साथ अनुभव किया जा रहा है। इसके विपरीत तिब्बत-चीनी का प्रभाव कुछ ही शब्दो तक सीमित है। ये शब्द प्राय असमी तथा बँगला की कुछ समीपस्थ बोलियो में प्राप्त होते हैं।

इन विभिन्न परिवारो की भाषाओ एव बोलिया में कुछ मूलभूत गठनात्मक भिन्नताओ के होते हुए भी, वे हजारो वष के पुराने सामाजिक एव सास्कृतिक सपर्कों के कारण एक समान विकास एव एकीकरण के पथ की ओर अग्रसर होती रही हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से ही इन भाषाओ में प्राय एक ही जैसी विकास-पद्धति तथा अनेक समान लक्षणो की उद्भावना मिलती है और इनका इतिहास बडी आसानी से खोजा जा सकता है। द्रविड भाषाएँ जहा एक ओर शब्द-भाडार साहित्यिक विचार-धारा और कुछ व्याकरणिक पक्षो की दृष्टि से भी सस्कृत की अत्यन्त ऋणी है, वहाँ दूसरी ओर भारतीय आय-भाषाएँ भी द्रविड भाषाओ की ऋणी हैं। आय-भाषाओ में मूर्धन्य ध्वनियो का होना सभवत द्रविड भाषाओ के ध्वन्यात्मक प्रभाव का अत्यन्त ठोस प्रमाण है। आधुनिक भाषाओ मे नामपदो के साथ परसर्गों का व्यवहार, क्रियागत गठन-साम्य, सयुक्त क्रियाएँ तथा प्रति-ध्वनित शब्दो का अस्तित्व आस्ट्रो-एशियाटिक अथवा कोलारियन परिवार की देन का परिचायक है। दक्षिणी भाषाओ में तमिल तथा मलयालम भाषाएँ प्राय समान लक्षण युक्त भाषाएँ हैं तथा उनमें कुछ अशो में पारस्परिक सुबोधता भी है। कन्नड तथा तेलुगु भाषाओ में भी अनेक समानताएँ हैं।

भारतीय आयवग की भाषाओ के अन्तगत उडिया, बँगला तथा असमी भाषाओ में बहुत अधिक पारस्परिक साम्य है। इसी प्रकार गुजराती तथा राजस्थानी में घनिष्ठ समानता है। वस्तुत १६वी शताब्दी के अन्त तक ये दोनो भाषाएँ अभिन्न थी। प्रत्यन्त भागो की समीपस्थ भाषाओ में दूरस्थ भाषाओ की अपेक्षा अधिक समानता है। पजाब से लेकर मिथिला तथा असम तक की भाषाओ तथा बोलियो ने हिन्दी के गठनात्मक एव आन्तरिक व्यवहारो को पुष्ट एव विकसित करते हुए उसे इस देश की सवमान्य भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित किया है।

भारत की सभी आधुनिक भाषाएँ ग्रहणशील भाषाएँ हैं। सस्कृत शब्दावली के

अतिरिक्त ये भाषाएँ फारसी शब्दों से भी कुछ अंशों में प्रभावित रही हैं। प्रभाव की यह प्रक्रिया १८वीं शताब्दी के मध्य तक चलती रही और उसके बाद अँग्रेजी शब्द भी आने लगे। अँग्रेजी सत्ता के एकछत्र-शासन तथा अँग्रेजी शिक्षा के प्रसार से भारतीय भाषाओं पर अँग्रेजी का अधिकाधिक प्रभाव पड़ता गया।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में निहित लक्षणों का जो विकास दृष्टिगोचर होता है, उसका प्रधान कारण यही है कि इनमें शब्दावली तथा साहित्यिक आदर्शों का स्वरूप संस्कृत से प्राप्त हुआ है। यहाँ तक कि तमिल भी सांस्कृतिक धरातल पर संस्कृत का ही आश्रय लेती है। साहित्यिक भाषाओं के अतिरिक्त बोलचाल की भाषाओं का भी आधुनिक भाषाओं के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इनके द्वारा राष्ट्रीय भाषाओं की प्रगति के साथ-साथ पारिभाषिक शब्दावली के क्षेत्र में समवाय संबंध प्रतिफलित होगा। संस्कृत, पालि तथा प्राकृत भाषाओं में यही प्रवृत्ति काम कर रही थी, जिसके कारण वे भारत के बाहर भी भारतीय संस्कृति की अभिव्यंजना का शक्तिशाली माध्यम बन सकी थी।

भारतीय भाषाओं में जो अंतःस्थित मूलभूत एकता है, उसी ने उन्हें सामंजस्य एवं आत्मसात्करण की ओर अग्रसर किया है और उसी ने प्रतीयमान वैभिन्यों के बीच भी शताब्दियों से भारतीय जीवन एवं विचारों में समान स्वरूप का निर्माण किया है। देश में औद्योगीकरण एवं नगरों की प्रगति के साथ-साथ संवहन के वैज्ञानिक साधनों, यथा, रेडियो, फिल्म, टेलिविजन आदि के द्रुतगामी विकास से भाषायी अन्तर्मिश्रण तथा एकीकरण की प्रक्रिया में अधिकाधिक प्रखरता और सुगमता आती जायगी।

प्रायः शिल्पज्ञ और विज्ञानवेत्ता ही अपने उद्देश्यों के लिए नवीन परिभाषिक शब्द ईजाद करते हैं। इन के निर्माण में--धातु, पूर्व-प्रत्यय, परप्रत्यय आदि संघटक तत्वों का भाषाओं के सामर्थ्य के अनुसार किस प्रकार व्यवहार किया जाय, इस विषय में प्रायः भाषाविदों से सहायता लेते हैं। पर पारिभाषिक शब्दावली की सृष्टि प्रधानतः विज्ञानियों और शिल्पज्ञों द्वारा ही होती है, क्योंकि वे ही अपने विचारों की अभिव्यक्ति में वैज्ञानिक शब्दों की आवश्यकता का ठीक-ठीक अनुभव करते हैं।

यह सौभाग्य की बात है कि इस देश के गण्यमान वैज्ञानिकों ने पहले से ही इस कार्य को अपने हाथों में ले लिया है। अभी हाल में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के स्थायी आयोग की ओर से स्नातक-स्तर तक की भौतिकी, गणित, रसायन, भूगर्भ, प्राणिविज्ञान, वनस्पति विज्ञान तथा भूगोल की पारिभाषिक शब्दावली के स्थिरीकरण के लिए देश के विभिन्न भागों के चुने हुए विज्ञानवेत्ताओं की कई बैठकें और गोष्ठियाँ बुलाई गईं, जिनमें सर्वसम्मति से ऐसी शब्दावली स्थिर करने का प्रयास किया गया, जो सभी भाषाओं के अनुकूल हो। ऐसी सार्वजनीन शब्दावली भारत की सामान्य संस्कृति तथा जीवन में निहित उस एकता को विकसित करने तथा स्थिर करने में सहायक होगी, जो हजारों वर्षों से क्रियाशील रही है।

पिछले वर्ष १९६२ में आयोग की ओर से पारिभाषिक शब्दावली के भाषा-वैज्ञानिक पक्ष पर विचार करने के लिए एक विशेष गोष्ठी का भी आयोजन किया गया था।

भापाविदो की इस सगोष्ठी में यह तय हुआ कि हिन्दी तथा प्रादेशिक भापाओ में अन्त-र्राष्ट्रीय शब्दो के लिप्यतरण में उच्चारण की अपेक्षा वर्ण विन्यास की एकरूपता पर अधिक वल दिया जाय। यह भी तय किया गया कि दक्षिणी तया पूर्वी भापाओ की सुविधा के लिए इन गृहीत शब्दो का लिग यदि कोई वैसा अनिवार्य व्याकरणिक प्रयोगजनित कारण न हो तो सदैव पुल्लिग ही रखा जाय।

भारत सरकार ने विश्वविद्यालयो तथा प्रतिष्ठित सस्थाओ की सहायता से हिंदी तथा अन्य भारतीय भापाओ में इस शब्दावली के सहारे पाठ्य-पुस्तकें तथा सदभ-ग्रन्थ तैयार करने की योजना क्रियान्वित की है। यो तो वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण इन सभी भापाओ में पहले से ही कुछ न कुछ होता रहा है, पर एक समान शब्दावली के आधार पर और एक वडे पैमाने पर वैज्ञानिक तथा तकनीकी पुस्तको के निर्माण का यह प्रयास एक ऐतिहासिक तथा राष्ट्रीय महत्त्व की घटना है।

इस प्रयास की चरम परिणति इस वात मे दिखाई देती है कि इसके सूत्रधार हैं भारत के प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता डा० दौलतसिह कोठारी। उनकी इस दिशा मे विशेप अभिरुचि और लगन है। वे ही आयोग के अध्यक्ष हैं और उनकी देख-रेख में पारिभापिक शब्दो के वास्तविक प्रयोक्ता और आविष्कर्ता, देश के जाने-माने विज्ञानी इस महत्त्वपूण राष्ट्रीय कार्य मे जुटे हुए हैं।

श्री० अगरचंद नाहटा

कवि दामोदर रचित मदन शतक

हिन्दी साहित्य में प्रेम काव्यों की प्रचुरता है पर अभी तक मुसलमान कवियों के द्वारा रचित प्रेमाख्यान काव्यों के सम्बन्ध मे जितनी खोज हुई है उतनी हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों के सम्बन्ध में नही हुई है। ऐसे कई प्रेम-काव्य हैं जिनकी हस्तलिखित प्रतियाँ काफी संख्या में प्राप्त हैं प्रस्तुत काव्य की अपनी शैली है एवं उसकी विशेषताएं भी उल्लेख योग्य हैं। प्रथमतः पद्यो के साथ-साथ गद्य का भी इसमें प्रयोग हुआ है और दूसरा इसके बीच में जो एक गुप्त प्रेम पत्र सांकेतिक रूप में दिया गया है वैसा अभी तक और किसी भी काव्य में नही मिलता। इस गुप्त प्रेम पत्र के सम्बन्ध मे हमने कई वर्ष पूर्व एक लेख भी प्रकाशित किया था।

राजस्थान मे मदन शतक का काफी प्रचार रहा है। इसकी आठ-दस प्रतियाँ तो हमारे 'अभय जैन ग्रन्थालय' में ही हैं। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में भी चार-पाँच प्रतियाँ हैं जिनमे से दो सचित्र प्रतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अभी तक इस काव्य की जितनी प्रतियाँ मिली हैं उनमें सबसे प्राचीन प्रति वि० सं० १७११ की लिखी हुई है, इसलिए इसकी रचना सं० १७११ से पहले तो हो ही चुकी थी, पर निश्चित समय तथा कवि परिचय में ज्ञात नही "जैन गुर्जर कवियों" भाग ३ मे दामोदर कवि के मदन कुमार रास का विवरण प्रकाशित हुआ है इस रास की रचना सं० १६६९ वि० आश्विन शुक्ल दशमी गुरुवार को जालौर में हुई है इसकी प्रशस्ति से यह निश्चित हो जाता है कि जैन कवि दामोदर ही मदन शतक के रचयिता कवि 'दाम' हैं। और मदनशतक की रचना सं० १६६४ वि० के पहले हो चुकी थी। प्रशस्ति के दोहे इस प्रकार हैं:—

"**मदन शतक ना** दूहड़ा, **एकोत्तर** सय सार।
ते पणि महि **पहिला** किया, जाणई चतुर विचार॥
कथा सरस जाणी सयल, सील तणइ अधिकार।
मदन नरिन्द तणु चरित, मई विरच्यो विस्तारि॥
सोलह सय उगणोत्तरई, पुर **जालोर** मझारि।
आसु सुदी दशमी किया, कथा बन्ध गुरु वारि॥
रिपि **सुरपतिनी चउपई**, दान कथागुण गेह।
उठ शतक साधक सरस, प्रथम रची मइ तेह॥"

वार्ता

इतनी बात कही । तब राजा जागिउ । शुक राजा पासे आई बैठो । रति सुन्दरी माहि गई । मदन कुमार का रूप देख्या । मोहित भई । कामदेव की पूजा करी मदन कुमार को आत्म भाव दिखावे, कामदेव की स्तुति करै ।

अथ स्तुति

मन की आशा सब फरी[1], दरमा को अकूरि ।
नफा आज मोको भया, पीर गई सब दूरि ।।१२।।
उद्यम करि आई इहा, तुम्ह पूजन को ध्यान ।
मन की इच्छा पूरि प्रभु, इतनी खिजमति मान ।।१३।।
हानि भई भव दुख की, रति पति तव दीदारि ।
होरी जोरी मिली रमौ, राति दिवस नरनारि ।।१४।।
तिन की लीला देखि अब, आई मैं तुम्ह पासि ।
उन परि दियउ जोवन तिलक, गीत कला गुन रासि ।।१५।।
महिमा तेरी विस्तरो, इद्र भुवनि ससारि ।
आवहि पूजइ सुर असुर, जस गावहि नर नारि ।।१६।।

वार्ता

ए पांच दुहे कहे । तब मदन कुमर अघे अक्षर वाचि समझिउ । रति सुन्दरी घरि गई प्रियवदा दासी सेती मन की वात कही ।

रति सुन्दरि वाक्य

प्रियबदा सुनि बात तूं, मेरी जीवा धार ।
पीर न मन की तू लहै, कासू कहुँ पुकारि ।।१७।।

दासी वाक्य

स्वामनि अपनै चित्ति की, वेगि सुनावहु पीरि ।
कहे विना किउ जानियै, सुदरि परै मन पीर ।।१८।।

रति सुन्दरि वाक्य

कामदेव कैगेह महि, देख्या पुरष रतन ।
देही ए आइ इहा, रह्या उहां[3] ही मन ।।१९।।

दासी वाक्य

सुदरि चिता दूरि तजि, लिख्यउ न मेटै कोइ ।
करि परिपच सुलक्षणि, आनि[4] मिलावउ सोइ ।।२०।।

वार्ता

राति पहिर एक गई । तब दून्यो पुरुष भेष करि । असवार होइ दरवाजै गई ।

१ तिहांही, २ अत, ३ फली, ४, मनकी ।

दोहा

वेगि उठौ वे पौलिए, खोलो ए दरबार ।
मित्त मिलन कौ जात है, ठाढ़े राज कुवार ।।२१।।

वार्ता

तिहांथी वाग मांहि गई। कामदेव की हजूरि। व्याह किया । जोबन का फल लिया ।

रति सुन्दरि वाक्यं

दोहा

मात पिता कुल लाज तजि, तुम्ह सुं वंध्यो नेह ।
मत पिउ बादर छांह जिउ, झटकि दिखावहुं छेह ।।२२।।

मदन वाक्यं

दोहा

जगि जन बंध्या जंत का, सिव[1] करे कर जोर ।
सुन्दरि का मन पेम की, प्रीति धरै भव कोरि ।।२३।।

रति सुन्दरि वाक्यं

पेम घटा घन ऊंनवी, मत बादर हुई जाइ ।
पीतम तबै पतीजीयै, जब वरषै झरलाइ ।।२४।।

मदन वाक्यं

सुन्दर वचन सा पुरष के, वर कै बीज समान ।
बोलै थोरा बहुत करि, निरवाहै असमान[2] ।।२५।।

वार्ता

राति प्रहर दोइ तहां रही, मदन का उतारा माली कै घरे कीया। पगि लागि घर कुं चली। तब मदन बोल्या समस्या समझ जाउ । जिउ चीरी भेजो ।

अथ समस्या

शशि १ गुण ३ वसु ८ रस ६ नयन २, युग ४, वान ५, मुनि ७, श्री हृक्षहः ।
इन्दु १ वार ७ वसुं ८ अन्त्यधरि, सुन्दरि वर्ग परक्ष ।।२७

वार्ता

परमार्थ समझि घरि गई। सदा दुपहरी वार कामदेव की पूजा करन जाइ। वाग मांहि मदन सेती मिलै । इण विधि छम्मास भये । तब गुणमाला रानी की दासी ए वात लखी। तब रानी सेती कहा ।।२८।।

दासी वाक्यं

रति सुन्दरि देह में, देखु बहुत विकार ।
वसत नगर मैं हिं इं, चतुर, नर लुंट्या कोई जार ।।२९।।

---

१. सेव । २. अवसान ।

राणी वाक्य

रे दासी तू खबर करि, रति सुन्दरि कँ प्यार।
कौन पुरप सेती जुरया, कहि सो वेग विचार ।।३०।।

वार्ता

दूजे दिन सत्र खबरि करि रानी सु कह्या। तब दून्यौं वागि गई कामदेव के देहुरे उपरि लुकि रही। तत्र ही मदन कुमार रति सुन्दरि पुनि आई। एकात मिले। तब राणी सेती कहे ।।३१।।

दासी वाक्य

वह कदली के झुम्महि,* पग्थ उठाए पाउ।
तन सेती तन मिलि रह्या, जिउ जल नवा सो राउ ।।३२।।

वार्ता

ए वात देखि रानी घरि गई। रति सुन्दरि फुनि घरि आई। रानी रति सुन्दरि सेती कहै ।।३३।।

राणी वाक्य

रति मति तेरी कहा गई, कौन करम 'तैं कौन।
लाज गमाई आपनी, कुल कु खफ न दीन ।।३४।।

रति सुन्दरि वाक्य

माता डर क्या कीजीयैं, मरना है इकवार।
चतुर संगि फल लीजीयैं, योवन के दिन च्यार ।।३५।।
देशि नगरि सब को सुनो, सुनहु नगर को राउ।
कामवचन थी मैं गहै, मदन कुमर के पाउ ।।३६।।

वार्ता

रानी रति सुदरि सेती कहै। मदन को सग छारि। और भले सेती व्याह करावु ।।३७।।

रति सुन्दरि वाक्य

पेम नीर महिरतन रति, मदन मधुप लैवास।
और पुहप गोचर हरा, किनि विधि पूरै आस ।।३८।।

वार्ता

नगर माहि वात प्रगट भई। कामि सुपना दिखाया। मदन देसाउर चल्या। तव शुक साथि रति सुन्दरि कु कागद भेज्यो ।।३९।।

---

*देख रमैं रति राई। फूला केरि सेज परि, सुख विलसैं मन भाई।

दोहा

सुन्दर अपने पेम की, प्रगट भई सब बात।
जो थिर होइ रहुं इहां, तो बिगरै सब धात[1] ॥४०॥
ताथें देसाउर चली, देही एह उदास।
जीउ सवादी पेम का, छारि रह्या तुम्ह पासि ॥४१॥
इनि कारन ससार महि, पंडित मरै न कोइ।
जै जीवति देही रहै, तौ फुनि मेरू होइ ॥४२॥
तुम जानहुगे मदन, कौ साचो चित कठोर।
विरह हमारा तन दहै, कुकि करू क्या सोर ॥४३॥
आउं थानि[2] देखिकै, धीर धरूँ तिह[3] वारि।
तव थै सुखती न्यु मिली, विल सहिगे[4] संसारि ॥४४॥

× × × × × × ×

वार्ता

शुकि कागद रति सुन्दरि कै हाथि दिया ॥५०॥

दूहा

रति सो कागद वाचिकै, खिन इक कीन करार।
छाती भीतरि दउ जरै, लहै न कोई सार ॥५१॥

वार्ता

अब मदन पीउ की तांइ रति सुन्दरि कागद भेजै।

अथ गुप्त लेख

उज मक्षा थाला बशथिट, थ द्द यु भा थि ब ज।
ले मि झ भ च हा डि ह्, छन्डहु शाध छलेज ॥५२॥
घौ ह्नि ह दी वु श ह्र छ क्षि दर्ज शाशी लि धबहु उछे।
बोबु हलि हु ह्र विउलि क्षिटु, जथ बेइ जथ दाछ ॥५३॥
उजंछ हर क्षिधुड़ यिटथछ, यिजउ जटप ६ पधीय।
जय तूनी यक्ष शाजड़ भि, लूथि भथु बस शीथ ॥५४॥
डोक्षरि धइलि धाधव, शिटक्ष रिक्षा ब स बे य।
लयि बथछ उजं सिए, सहु यिजं क्षेथ छक्ष ह्नि टंया ॥५५॥
शं ट उक्ष ह्नि लि ह्र टिथ सवछ प थिटु वथ छ अटोथ।
भुंबा त्रिसटु यि ज ब धु, उद ह्र ड उय क्षोब ॥५६॥
तांधि बिटी ही टंयच्छा वाधि रिटथवड ग्रंथ।
वजडु हुले पी इथछ, उघ यकटी वि वोछ ॥५७॥
डा हो शि ज ज डु ह्, धं ययु क्ष य ज त्र क्षि सं विजह्न भ।
श्री यि यि टुं थं ड वं ह जि ङि जं घेडिलिफ तु भेज ॥५८॥

---

१. बात, २. थानक, थाँकी, ३. ता नारि, ४. विलसति में।

श्री य क्ष य ठ क्षी लोव सि हु टि ज टा, ह् ज श थि माथ ।
क्षे वच सदा सदा भी ह् टी, सत्र थि ह्टी ही वाथ ॥५९॥
ट य भल छट थडा हरामि ड लु फक्षोले उछ ।
टाक्ष चड ह्रि क्षोयह् लभ छ चउ रग घ थ उछ चा छ ॥६०॥
थे पुट छ व ले प छ्रू, श्री य क्ष टु सभु श्राछ ।
ययिटफ घ ट घु व स छ, क्ष य क्ष थ मै यि घु फाछ ॥६१॥
श्री यक्ष श्री यद डाछ द छ, छतु टितु शयिभ यिउ छ ।
च व वीक्ष यि युक्ष ह टु लछी, टयक्षि भक्षाय च चाछ ॥६२॥
घि क्ष भवाडी ज स उचविट, चत्र ह्रि पि ल पछपथीष ।
वाभि साले नुश वाज ट थि, लय व ह् यू शी ह्री थ ॥६३॥

वार्त्ता

शुक कागद ले चल्या। मारग कागद खोया। मदन कुमार कु जाइ मिल्या। सविस्तर बात कही ॥६४॥

शुक वाक्य

स्वामी जब थैं तुम्ह चले दति सुंदरि कु छारि ।
तव थैं सा जिन विधि रहै, सो अब चित विचारि ॥६५॥
तब थैं तिनि छोरे सबै, चगे कापड चीर ।
चदन चद किरण तबै, तन लागै जीउ तीर ॥६६॥
छोरे साज सिगार सब, छोर्या मज्जन न्हान ।
छोरि सेज तलाईया, छोरे वीरे पान ॥६७॥
भोजन सरस न ले[1] कछु, छोरया ठडा नीर ।
साग सगीति सब तजि, लाल गुलाल अबीर ॥६८॥
टीका काजर परिहर्या, दुरि करे सब थान ।
वीना गेरे दूरि तब, मनिन सुहावे गान ॥६९॥
ना गावै मुखि ना हँसे, ना कछु करै विलास ।
निपरै भुइ साथरै, लम्बे लयत उसास ॥७०॥
अन पान को रुचि मिटी, वासर वरस विहाइ ।
विरहनि चकई जिउ रटति, रजनी खिन न सुहाई ॥७१॥
रू रू लागे वहुत भल, करता कै तनि तीर ।
ता विरही के सयर की, कछु एक जाने पीर ॥७२॥
मदन नीर विन विरह दौं, जा रे पजर घास ।
सारू कस्ह मेरी अबै, सफल फलै ज्यु आस ॥७३॥
खिनु घर भीतरि वाहिरै, खिन वारि आराम ।
विकल भई निशि दिन रहै, मदन मदन मुख नाम ॥७४॥
इनि विधि बहुत विलाप करि, लिखि दीन्हो मो लेख ।
मारग वहुत कथा भई, ता को सुनहु विशेष ॥७५॥

१ लेईसा ।

अथ कथा लेख

मालव देश उजेन पुर, वीर सेन राजान ।
तासु सुता कनकावती, पंच सखी कै साथ ॥७६॥
सचिव सुता कमलावती, पद्मावती पीय सेठ ।
जय विजया नृप मित की, कनकावती तहां जेठ ॥७७॥
पंचु सही विनोद करि, बैठी थी तरू छांहि ।
मै हार्यो बहु पंथ कौ, मुरछि पड्यो तिन मांहि ॥७८॥
कनकावती कागद गह्यो, वांच्यो नो समभाई ।
तव हुं बूझयो बहुत कहि, मधुर वचन वै लाई ॥७९॥
रति सुन्दरि नृप की सुता, लिखि भेज्यो ए लेख ।
मदत परिउ के पैम को, सब परमारथ ऐह ॥७९॥
मदन कुवर का नाम सुनि, पंचु भई उदास ।
उरि धरि पतिया घरि गई, परि हरि वाग विलास ॥८०॥
मात मिता सबके मिले, लहै न मन की पीर ।
बुझै तब आदर करि, कहत न आवै धीर ॥८१॥
माता सेती तब कह्यो, कनकावती मन भाउ ।
रानी राजा कुं कहै, नरपति करौ उपाउ ॥८२॥
पंडित पुर कै कोकि कै, नरपति कहै विचार ।
वेगि सुनावहु वाचिके, कैसो मदन कुमार ॥८३॥
पंडित पतिया करि गहा, वाचै ते मन लाई ।
माई के अक्षर सबै, अरथ न समझ्यो जाई ॥८४॥
तब नरपति पुर चौक महि, सुन्दर महल कराई ।
पतिया तहां वाचै रही, कोई विदेशी आई ॥८४॥
दिव्य चंदोवा पाटके, तिन तरियति या भांति ।
लोक लाख सेवा करे, तहां बैठे दिन राति ॥८५॥
कागद रह्यो उजेनपुर, मै तिह लाई बार ।
पंच सहेली तुम विना, यो बैठी निरधार ॥८६॥

वार्त्ता

मदन कुमार उजेनपुर गया। कागद नैननि देख्या। तब मूर्छित पर्या। ठंडा वाउ करि मदन सचेत किया। राजा कुं वात कही। तहां आय मदन सेती कहे कागद वांचि सुना वहु। अथ लेख वाचन—

दोहा

जिउ हमारा दास परि, करै तुम्हारी सेव ।
देही एह अभागिनी, संग न पावे देव ॥८७॥
रजनि भलि सुपने मिलूं, पापी दिवस न जाइ ।
सो शुभ दिन निशि जदि मिलु, उर सेती उर लाइ ॥८८॥

ज्यु मन मेरो गति करै, त्यु जो करै सरीर ।
तो प्रीतम तुम्ह पाउ गहि, दुरि करू तन पीर ।।८९।।
गौ मन वम दिवा वसै, पिक मन मास वसत ।
दत मरै ज्यु बीज वन, त्यू मेरे मन कत ।।९०।।
पकज चाहे रवि किरण, शशि क्यो रारै चकोर ।
हु साहिब कु त्यु सरू, ज्यु घन गरजति मोर ।।९१।।
या विधि कीनी कत तै, मा विधि करै न कोइ ।
अवगुण देखी छारियै, जर तट की विधि मोइ ।।९२।।
जाने पिउ गुन वन तुम तो मै बध्यो नेहु ।
प्रीति कुरगा सु अज्यौं, वेगि दिखायो छेह ।।९३।।
प्रीतम तै मो दोस विनु, क्यु कीन्ही परिहार ।
मै अबला बल हीन की, बहुरि न कीन्ही सार ।।९४।।
कत हृदय करुणा नही, ए दुख मो दे जाइ ।
काम लहरि उपजी अधिक, अजु न वरजै आइ ।।९५।।
रे सुक एह सदेस तु, प्रीतम कु पहुचाइ ।
रति की सार करो अबै, मत मरही विसु खोइ ।।९६।।
प्रीतम प्रीत लगाइ के, यो क्यो परिहरी जाइ ।
ऐसी मति तुम कु दई, करमि हमारे आइ ।।९७।।
विरह आगि उपजी अधिक, अहनिस दहै सरीर ।
साहिब देहु पसाउ परि, दरसन रूपी नीर ।।९८।।

वार्ता

कागद वाच्या । राजा हर्षित भया । शुभ मुहूत पच कन्या सेती मदन को ब्याह किया । करमोचन अर्द्ध राज्य दिया । मदन पच स्त्री के सग सुख भोग ।

अथाग्रे प्रबन्धो लिख्यते

वार्ता

वैताढय गिरि रत्नपुर नगर अरसिंह राजा ताके मदन मजरि बहिन । (बहुत रूप । चोसठि कला । महा दिव्य अत्यत रूप । आकाश री आभा की बीज । माहेवै (मदन) की तीज । इन्द्र की इन्द्राणी हु अधिक यौवन पाप्ति हुई । अहरे ललाई दिसण लागी । कुचा उपर श्याम बिन्द दिसण लागी । मुडै के विषै डावै ज्यु आल जजाल काढै छै । इये विध यौवन परिपूण भई) । तो भी राजा न ब्याहे । ता राजा कै कनक मजरी पत्नि पदम मजरि अरू कनक मजरी दुहु परस्पर बहुत प्रीति । इक दिन मदन मजरी कनक मजरी सेती कहै ।

मदन मजरी वाक्य

कनक मजरी देखि तु, भाई के ए सूल ।
जुवन मेरा जात है, ज्यु जगर' वर फूल ।।९९।।

कनकमंजरी वाक्यं

वहिनी मेरी वात सुनि, करि पापी को अंत[1]।
अपनी इच्छा कीजिये, पुरष मनोहर कंत ।।१००।।

वार्त्ता

इनि विधि वात विचारि दुन्यों वहाँ थी चली। उजेनपुर गई। मदनकुमर पौढ़्या देख्या। तव उचाइ विद्याधरि ले चली। मारगि आवति कनकमंजरी मदनमंजरी सेती कहै—

कनकमंजरी वाक्यं

वहिनी वात विचारि तु, जीवे पापी सोई।
मारे विनु ले जाइये, तो मनि पछतावौ होई ।।१०२।।
मरू महि कुंडर दुर्ग श्री, कामदेव को ठाम।
मदन पिउ तिहां छोरिकैं, सो अव कीजैं काम ।।१०३।।

वार्त्ता

मदनकुमार कुं तहाँ वैठाइ दुन्यो निज स्थान कि गई मदन अशोक वन ता माहि श्री महाविद्या को देहु रो मदनकुमार तहा वैठा ।।१०४।।

अथ मरूस्थली भाषा

तिणि प्रस्ताव ते नगर राय की पुत्री कनक सुन्दरि। मुहता रि सुता हरष सुन्दरि ते वेइ सखी तिणि प्रस्थान कि पुजा करवा आवी। मदन कुमार नों रूप देखि। कनक सुंदरि हरष सुंदरि सुं कहै ।।१०५।।

कनक सुंन्दरि बाक्यं

परणी परदेसे गई ते खखि केम मिलन्ति।
जिमि पंखण पंजर पड़ी, शिशु वनि भनि तरसन्ति ।।१०६।।
जैं किण ही परि कीजिये, ए सुन्दर भरतार।
तो मनिवंछित पामिये, होई सफल अंवतार ।।१०७।।

हरषसुंन्दरि वाक्यं

वात सखी जे थे कही, म्हाकैं ही मनि तेह।
इणि वातैं जां जीवियें, तां लगि रहे सनेह ।।१०८।।

वार्त्ता

पुजा करि मदन कुमार पासि आई। नाम पूछया।

मदन वाक्यं-गढ़ा

वन रिपु तासु रिपु तासु रिपु तसु रिपु रिपु पति नारि।
तसु सुत नामैं माहरू, सुन्दरि नाम विचारि ।।१०९।।

---

१. जंगी।

मदन वाक्य

कह्यो तुम्होरा नाम वहो ।

कनक सुन्दरि वाक्य

सारग तनया थके, इष्ट कुसुम तरु नाम ।
तमु आगे सु दर धरि, लहो परगारथ काम ।।११०।।

कनक सुन्दरि वाक्य

सयण सयोगिज उपजे, जन्म सफल जिणि होइ।
तसु आगे सुदरि धरि, नाम विचारहु सोई ।।११०।।

हरप सुन्दरि वाक्य (प्रहेलिका)

पढमक्षर मारग हरे, मध्यक्षर विण नम्र मचरै ।
अन्त्यक्षर विण चौपद थाइ, घयु तु पास नही सोराइ ।।१११।।
(खडग)

मदन वाक्य

पढ़मक्षर विण जग आधार, मध्यक्षर विण वपु सहार ।
अन्त्यक्षर विण दीपक होइ, राति रहो इण थानक साई ।।११२।।
(महल)

पढ मक्षर विण रम ना लहै, मध्यक्षर विभ जीण ते कहै ।
अन्त्यक्षर विण खड्गे होई, सुन्दरि पखि विचारो सोई ।।११३।।
(सारस पखी)

सुन्दरि वाक्य

नारि एक त्रिहु भवणे रमै, देव मनुष्य सहुने दमै ।
शा सतावण लागी आय, दरसण देव न छड्यो जाई ।।११४।।
(भूग लागी)

दोहा

एक पुरप प्रगट प्रवर, ताम न देखै कोइ।
सुन्दर कहु विचारि नै, सुखदाई जगि सोई ।।११५।।
(भोग)

सुन्दर वाक्य

तो लगि सुदरि धीर धरइ, जा लगि तम रिपु राज ।
सो निज घरि जब जाइसी, तव कर स्या सो काज ।।११६।।

वार्त्ता

इसी वात कहि घर गई । रात्रि समय तिण स्थानकि गई । मदन कुमार स्यो विवाह कियो। प्रात समै माहि नगर में वात प्रगट हुई पुर पति तिहा मदन कुमार पास आयो । रूप देखी वहुत रज्यो । निज घरि आणि राख्यो । विहु स्त्री ने सगि सुख भोगवै

तिसैं तैं बिद्या धरी आवी मदन स्त्री सहित देखी । मदन मंजरी कनक मंजरी सुं वहै ।

पूर्वी भाषा मदनमंजरी वाक्यं

एकाकी आपुणं इंहा छोर्या था एकंत,
प्रिय संगिम विधिना दियो याकौ भाग्य महंत ।।११७।।

वार्ता

रजनि समैं मदन कुं ले गई वताढ्य गिरि को राज्य दियो तब मदनमंजरी मदन पिउ सेती कहै ।।११८।।

मदन मंजरी वाक्यं

जोरि जोरि ए भली, करता करि परसाद ।
यौवन पका अंब जु, प्रीतम लेहु सवाद ।।११९।।
सार करौ पिउ राजकी, क्यों चितातुर आज ।
विद्या ए समरो समैं, और कहौ कछु काज ।।१२०।।

मदन वाक्य

सुन्दरि देखि विचारि तुं ठोरि रहै क्युंचित ।
विरहा प्रथम सनेह का, छाती जारे नित ।।१२१।।

अथ पूरौ प्रबन्ध

उजेन थी जब मदन अपहरया अरू पंचु सहली जागी । बहुत विलाप करि । प्रात्त समय सुक सेती कहै—

दोहा

कीर हमारे दोष विनुं मदन गया हम छारि ।
यौवन विरहा कंत विनुं, मारैं नारि पछारि ।।१२२।।

शुक वाक्यं

दुर्जन कोई ले गया, रजनी मदन उठाई ।
अबहुं देसाउरि चल्या, खबरि करूं तिहां जाई ।।१२३।।

शुक वाक्यं वार्त्ता

अनेक देसावर देखतां मदन कुमार कुं जाई मिल्या ।।१२४।।शुक०
साहिब सुनि ते सुंदरि झुरि झुरि मरे निरास ।
करि परसाद चलैं अबैं पूरहु तिनकी आस ।।१२४।।

वार्त्ता

शुक के वचन सुन मदन चल्या । श्रीपुरि आया रति सुन्दरि कुं जाइ मिल्या । तहां थी रति सुन्दरि लेई उजेनी गया । राज्य लीला भोगवैं । तब मदन सेती शुक कहै ।।१२६।।

शुक वाक्य

स्वामी चित्ति विचार तु, मात पिता निरधार।
छोरि इहा राजा भये, करि अब तिन की सार ॥१२७॥
जंपुर पति जयन की, तनया चम्पक माल।
तुम्ह कु मागी थी पिता, ता की करि सभाल ॥१२८॥

वार्त्ता

मदन कुमार शुक कु साथि ले अमरपुर गया। मात-पिता कु जाइ मिल्या। मदनकुवर की चपक माला सेती व्याह किया। तई मदन सुख सेती कहै—वैताढ्य गिरि ती नारि ल्यावो। तब शुक तिहा गया। दस नारी सेती कहे ॥१२९॥

शुक वाक्य

चलहु बुलावे मदन पिउ अब मत लावो वार।
तहा बैठे है सबके, मातपिता परिवार ॥१३०॥

दस नारी गई सब परिवारि एकठा मिल्या। विरह वियोग टल्या। मदनराज पाया। पुरव पुन्य उदय आया[1] ॥१३१॥

कर्त्ता वाक्य

आस फरी सब मदन की, पुरव पुन्य पसाई।
दाम कहे जन सबन सु, पुन्य करहु मन लाई ॥१३२॥

इति श्री मदन शतक प्रबन्ध समाप्त ॥ शुभ भवतु, कल्याण मस्तु, रस्तु, सवत् १७५६ वर्षे आसाढ मासे कृष्णपक्ष १० नाम तिथौ ॥ पत्र ८ ॥

चत्र ८, (बलदेव से रविशकर देराश्री का गुटका न० ४० अ)

---

१ आनद हुआ, बडो राजा हुवो, रति सुन्दर रै कुंवर प्यार हुआ। १ मनसुख, २ तनसुख, ३ लहरसुख, ४ दिलाखुशहाल, विजा १६ कुंवर हुआ।

डा० रमानाथ सहाय

द्विभाषी-कोषों की समस्याएँ

§१. द्विभाषी (Bilingual) कोषों का प्रायः सभी भाषाओं में सर्वाधिक प्रचलन है। अधुनातम यातायात और संवादवहन के साधनों के द्वारा विश्व का क्षेत्र अब उत्तरोत्तर छोटा होता जा रहा है और एक देश के वासियों को दूसरे देशों के वासियों से अपने से पूर्वकाल की तुलना में अधिक और अधिकतर सम्पर्क में आना पड़ रहा है। और इस सम्पर्क के लिए—मौखिक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संवाद में तथा परोक्ष पत्रबद्ध लेखन में—उभय-सम्बोध्य भाषा का माध्यम आवश्यक हो गया है। फलस्वरूप लोगों को दूसरों की भाषाएँ सीखनी पड़ रही हैं और इस सीखने में द्विभाषी कोष—विशेपतः जेबी (छोटे आकार के) कोष—बहुत प्रचलित हुए हैं।

प्रारंभिक समस्याएँ

§२.० कोषकला की दृष्टि से द्विभाषी कोषों की समस्याएँ एकभाषी (समभाषिक—monolingual) कोष की समस्याओं से पर्याप्त भिन्न हैं। एकभाषी कोष में शब्दों के अर्थ उसी भाषा में दिए जाते हैं और यह पूर्व धारणा बनी होती है कि कोष के प्रयोक्ता का उस भाषा से पर्याप्त मात्रा में परिचय है। वह उस भाषा को जानता है, केवल अनेक ऐसे शब्द हैं जिनके अर्थ, प्रयोग, व्युत्पत्ति, उच्चारण, वर्तनी आदि के लिए उसे कोष देखने की आवश्यकता पड़ती है। जन सामान्य के स्थान पर अधिक पढ़े-लिखों को ऐसे कोष की अधिक आवश्यकता पड़ती है। द्विभाषी कोष जनसामान्य के काम के हैं। उनमें एक भाषा के शब्दों (स्रोत-भाषा के शब्दों) के अर्थ दूसरी भाषा (लक्ष्य-भाषा) में दिये जाते हैं—ये अर्थ एक प्रकार से उस शब्द के अनुवाद हैं। द्विभाषी-कोष इस प्रकार से एक अनुवाद-पुस्तक है। उदाहरण के लिए अँग्रेजी हिन्दी कोष को ले लें—इसमें अँग्रेजी स्रोत-भापा (source language) है और हिन्दी लक्ष्य-भाषा (target language) है; शब्द मुख्य प्रविष्टियों के रूप में अँग्रेजी के दिये हुए हैं और उनके आगे हिन्दी अनुवाद-सम (अर्थगत-तादात्म्य वाले) शब्द हैं।

§२ १ द्विभाषी-कोष की रचना मे सब से पहले यह निश्चित करना चाहिए कि कोष किस भाषा के (स्रोत-भाषा के या लक्ष्य-भाषा के) ज्ञाताओ के लिए रचा जा रहा है। जैसे मान लें कि अँग्रेजी-हिन्दी कोष बनाना है। इस कोष के प्रयोक्ता दो प्रकार के हो सकते हैं—अँग्रेजी-भाषी या हिन्दी-भाषी। अँग्रेजी-भाषी इस कोष का प्रयोग तब करेगा जब उसे हिन्दी मे कोई वक्तव्य प्रकट करना है। उसके मस्तिष्क मे अँग्रेजी शब्द तो है, किन्तु तदनुरूप हिन्दी-प्रयोग उसे ज्ञात नही है, अथवा कुछ भ्रान्ति है। हिन्दी-भाषी उस कोष का प्रयोग तब करेगा जब उसे अँग्रेजी का कोई वक्तव्य समझना है। उसे अँग्रेजी शब्द का अर्थ नही आता है या अर्थ मे कुछ भ्रान्ति (दुविधा) है। वह कोष देखकर सही हिन्दी पर्याय मालूम कर लेता है। इस प्रकार अँग्रेजी-हिन्दी कोष को अँग्रेजी प्रयोक्ता अभिव्यक्ति करते समय और हिन्दी-भाषी प्रयोक्ता सम्बोधि के समय प्रयोग मे लाता है। दोनो के प्रयोजन भिन्न हैं, और दोनो के प्रयोजन एक ही कोष से हल हो जाएँ—ऐसा कठिन है, यद्यपि अभी तक प्राय ऐसा ही होता आया है।

दोनो के प्रयोजन एक ही कोष से इस कारण सिद्ध नही हो पाते हैं कि भाषा एक समाजनिष्ठ वस्तु है। सामाजिक विभिन्नता एव सास्कृतिक विभिन्नता के कारण स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा की शब्दावली, अर्थशक्ति, रचना-प्रणाली आदि मे परस्पर विभिन्नता अवश्य रहेगी। जितनी ही अधिक साम्कृतिक विभिन्नता होगी, उतनी ही अधिक शब्दार्थ सम्बन्धी विभिन्नता होगी। अतएव द्विभाषी-कोष की दोनो भाषाएँ जितनी अधिक विभिन्न सस्कृतियो की होगी, उतनी ही अधिक मात्रा मे एक अकेला कोष दोनो भाषाओ के वक्ताओं के लिए समानरूपेण उपयुक्त न हो सकेगा। उदाहरण के लिए अँग्रेजी-हिन्दी कोष ले लें। अँग्रेजी और हिन्दुस्तानियो की सस्कृति मे पर्याप्त भिन्नता हैं, अतएव अनेक ऐसी धारणाएँ या वस्तुएँ या भावनाएँ हैं जो एक में तो हैं किन्तु दूसरे में नही। मान लीजिए, अँग्रेजो की कोई ऐसी धारणा है जो भारतीयो में प्रचलित नही है। अँग्रेज प्रयोक्ता को उस शब्द समझने मे कोई कठिनाई नही है, कठिनाई केवल हिन्दी पर्याय की है, केवल वही उसे कोष में प्रविष्टि के आगे देखना है। किन्तु, भारतीय प्रयोक्ता को अँग्रेजी शब्द से निर्दिष्ट धारणा भी समझनी है, अतएव, उसके लिए उपयुक्त कोष में हिन्दी का पर्याय-मात्र (जो प्राय उस अँग्रेजी धारणा के लिए गढा गया है) पर्याप्त नही है, कुछ व्याख्या भी वांछित है। अँग्रेजी का golf ले लें। अँग्रेजी प्रयोक्ता के लिए 'गोल्फ' यही पर्याप्त है, हिन्दी प्रयोक्ता के लिए 'गोल्फ—एक खेल विशेष' आवश्यक है। इसी प्रकार भारतीय धारणाओ के लिए विशेष ध्यान देना पडता है। उदाहरणार्थ—uncle शब्द ले लें। हिन्दी प्रयोक्ता के लिए बने कोष में प्रविष्ट के आगे 'चाचा, मामा' लिख देना पर्याप्त है, किन्तु, अँग्रेज प्रयोक्ता के लिए बने कोष में प्रविष्टि के आगे 'चाचा (पिता का भाई), मामा (माता का भाई)' देना आवश्यक है। अर्थों के विवेचन के साथ-साथ अन्य सूचनाओ में भी ऐसा ही भेद मिलता है (देखिए आगे §४)। विवेचन एव प्रस्तुतीकरण की इन विभिन्नताओ के कारण यह पूर्व-निश्चय अवश्य कर लेना चाहिए कि प्रयोक्ता मुख्यतया कौन है और कोष का पूरा नाम इस प्रकार होना चाहिए "English Hindi Dictionary for English Speakers" "English-Hindi Dictionary for Hindi Speakers"।

§२.२ द्विभाषी कोष किन भाषा-भाषियों के लिए बनाना है, यह निश्चय करने के बाद यह निश्चय करना पड़ता है कि किस प्रकार के प्रयोक्ताओं के लिए कोष बनाना है। शब्दावली के अत्यधिक विस्तृत होने के कारण कोई भी कोष **संपूर्ण** शब्दावली को नहीं दे सकता है। आकार की सीमाओं के कारण शब्दावली के कुछ अंश को लेना पड़ता है, और कुछ को छोड़ना पड़ता है। इस प्रकार, शब्दावली-चयन का आधार प्रयोक्ताओं की आवश्यकता होता है। जैसे, प्रयोक्ता यदि टूरिस्ट (सैलानी) है, तो कोष की सहायता उन्हें दैनंदिन व्यवहार के प्रयोगों के लिए होगी। उनके लिए द्विभाषी-कोष में यात्रा के संबंध में प्रयुक्त सभी संभव अभिव्यक्तियों में आगत शब्दों का होना आवश्यक है। फिर ये शब्द और शब्द-संहितियाँ मुख्यतया वार्तालाप-परक होंगी। अतएव ऐसे कोषों मे उच्चारण देना अनिवार्य है। अभिव्यक्ति प्रधान इस कोष मे मुख्य शब्द को केन्द्र मानकर पूरे-पूरे वाक्य भी दे देने चाहिए। ऐसा होता कम है, किन्तु रूसी-हिन्दी कोष* मे ऐसा हुआ है। जैसे, 'होटल कहाँ है ?' (होटल gostintsa† की प्रविष्टि मे); 'माफ कीजिए' (क्षमा proshchat' की प्रविष्टि मे); 'मुझे आपसे मिलने की आशा न थी' (प्रतीक्षा ozhidanie की प्रविष्टि में); 'मै आपसे सहमत नहीं हूँ। असहमत हूँ' (सहमत nesoglasnyi की प्रविष्टि मे); 'आपको बधाई देता हूँ' (बधाई pozdravyat' की प्रविष्टि में); 'आपका परिचय पाकर मुझे बड़ी खुशी हुई' (परिचय poznakomit'sya की प्रविष्टि में)—ऐसे पूरे-पूरे वाक्य सम्बद्ध रूसी शब्द-प्रविष्टियों के आगे दिए गए है।

§२.३ इसी प्रकार प्रयोक्ता यदि साहित्यिक कृतियों को एवं परिनिष्ठित भाषा की साहित्यपरक सामान्य कृतियों के अनुवाद करने में कोष की सहायता चाहता है, तो कोष में स्रोतभाषा की साहित्यिक शब्द-संहितियों को लक्ष्यभाषा की तद्भावदर्शी साहित्यिक शब्द-संहितियों द्वारा प्रकट किया जाएगा। इस उद्देश्य से चुना हुआ सम्पूर्ण शब्दावली का अंश पूरा-पूरा वह नहीं होगा जो पिछले अनुच्छेद मे निर्दिष्ट वार्तालापीय कोष के लिए चुनने पर मिलता। इसी प्रकार, वैज्ञानिक, तकनीकी और व्यावसायिक कृतियों के अनुवाद के लिए सम्पूर्ण शब्दावली का कुछ और ही अंश लेना होता है। सम्पूर्ण-शब्दावली में से कौन-सा अंश स्वीकार किया जाय और कौन-सा अस्वीकार—यह प्रयोक्ताओं के वर्गों पर निर्भर है।

§२.४ सम्पूर्ण शब्दावली का कौन-सा अंश लिया जाए, इसी का निश्चय रचना के लिए पर्याप्त नही है। इस अंश में से कितनी गहराई तक लिया जाए, इसका भी पूर्ण निश्चय करना पड़ेगा। गहराई कोष के आकार पर निर्भर होतीं है। यदि कोष का आकार बड़ा है अर्थात् कुल शब्द संख्या बड़ी है, तो अधिक गहराई तक शब्द लिये जाएँगे। यदि कोष का आकार छोटा है अर्थात् कुल शब्द संख्या कम है तो कुछ कम गहराई तक शब्द लिये

---

* संक्षिप्त-रूसी शब्दकोष : दीम्शीत्स और चेलीशेव; राजकीय प्रकाशनगृह, मास्को (१९५८)।

† रूसी मुद्रणाक्षरों के अभाव में रोमनाक्षरों का प्रयोग किया गया है।

जाएँ। अब लक्ष्यभाषा की ध्वनियो का सहसम्बन्ध स्रोतभाषा की इन शब्दो मे आई ध्वनियो मे स्थापित किया जाए अर्थात् लक्ष्य-भाषा की ध्वनियो के लिए सकेत दिए जाएँ और आगे बताया जाए कि इनका उच्चारण स्रोतभाषा के अमुक शब्द की अमुक ध्वनि जैसा है (प्राय यही विधि अधिकाश कोषो मे अपनायी गई है)। तीसरी विधि यह है कि दूसरी विधि के समान उच्चारण को सकेतो में न देकर पूरा-पूरा उच्चारण स्रोतभाषा की लिपि मे ऐसा दिया जाए कि वक्ता उसका स्रोतभाषा का शब्द समझ कर उच्चारण करे तो लक्ष्यभाषा के शब्द का उच्चारण हो जाए। यह लिप्यन्तरण जैसी विधि पूर्वोल्लिखित रूसी-हिन्दी कोष मे अपनायी गई है। उच्चारण मे बलाघात तथा सुर का सकेत भी दे दिया जाता है।

(३) **व्याकरणिक कोटि सबधी सूचना**—लक्ष्यभाषा के शब्दो के आगे कोटि-निर्देशन आवश्यक है। किन कोटियो का निर्देश करना है, किन का नही—यह भाषा विशेष की सघटना पर निर्भर है। हिन्दी मे लिंग एक महत्वपूर्ण कोटि है, इसके अनुसार विशेषण और क्रिया के रूप चलते है, और लिंग-निर्णय रूढ़ि पर आधृत है। अतएव इस का सकेत कोष म अवश्य होना चाहिए। इसी प्रकार क्रिया सकर्मक है अथवा अकर्मक, यह भेद भी हिन्दी वाक्य रचना मे महत्वपूर्ण है क्योकि कर्तृवाच्य मे 'ने' परसर्ग का प्रयोग इसी पर निर्भर है।

(४) **पद-रचना सबधी सूचना**—लक्ष्यभाषा के उन शब्दो के आगे पद-रचना सबधी सूचना भी देनी चाहिए जिनकी पद-रचना मे विशिष्टता है, अर्थात् जो पद सामान्य नियमो से नही बने है। हिन्दीभाषियों के लिए बने हिन्दी-अग्रेजी कोष मे अग्रेजी के अनियमित सज्ञा बहुवचनो men, sheep, children आदि का उल्लेख होना चाहिए। इसी प्रकार अग्रेजी क्रियाओ के सम्मुख उनके भूतकाल और भूतकृदन्त के रूपो का उल्लेख होना चाहिए।

(५) **वाक्य-रचना सबधी सूचना**—आवश्यक वाक्य-रचना सबधी सूचनाएँ भी देनी चाहिए। जैसे अग्रेजो के लिए बने अग्रेजी-हिन्दी कोष मे ask के आगे '√पूछना' देने के अतिरिक्त यह भी सकेत देना चाहिए कि √पूछना के साथ जिस व्यक्ति से पूछा जाता है उसके बाद 'को' न लग कर परसग 'से' लगता है उदाहरणाथ, 'राम ने मोहन से पूछा'।

(६) **प्रयोग-सबधी सूचना**—ऐसे तो द्विभाषी कोष मे शिष्ट-सम्मत प्रयोग ही देने चाहिए, फिर भी यदि इतर प्रयोग देने पड़ें तो यह सकेत अवश्य देना चाहिए कि प्रयोग बोलीगत, केवल मजाक का, अश्लील अथवा अशोभनीय आदि है। ऐसे सकेतो से विदेशी प्रयोक्ता अनुचित प्रयोग न करेगा।

(७) **अर्थसबधी सूचना**—द्विभाषी कोषों मे लक्ष्यभाषा के अर्थ के सबध मे नही के बराबर सूचना होती है क्यो कि उनका मुख्य कार्य स्रोतभाषा के शब्द को लक्ष्यभाषा के अर्थगत तादात्म्य वाले शब्दो अथवा शब्द-सहितियो द्वारा देना है। लक्ष्यभाषा के शब्द का उल्लेख मात्र यह सूचित करता है कि स्रोतभाषा के शब्द और लक्ष्यभाषा के शब्द,

दोनों का एक ही अर्थ है। किन्तु, जैसा कि पहले कह आए हैं, संस्कृतिमूलक भेदों के कारण दो विभिन्न भाषाओं में अर्थगत-कोटियों का एक-सा विभाजन और वितरण नही होता है। अतएव, एक बाह्य-जगत् के वस्तु-क्षेत्र के लिए कभी स्रोतभाषा में एक अर्थगत-कोटि है; किन्तु, लक्ष्यभाषा मे अनेक अर्थगत-कोटियाँ हैं। और कभी इसका विपरीत होता है। इस कारण, कभी स्रोतभाषा के शब्दों की अर्थगतकोटि स्पष्ट कर लक्ष्यभापा का शब्द दिया जाता है और कभी स्रोतभाषा के संमुख लक्ष्यभाषा के शब्दों का अर्थगत-कोटियों से स्पष्ट किया जाता है। ऐसे अवसरों पर द्विभाषी कोषों में अर्थगत-विशेषताओं के उल्लेख होंगे। उदाहरणार्थः अंग्रेजी वालों के लिए बने अंग्रेजी-हिन्दी कोष में uncle के सम्मुख 'चाचा (father's brother), मामा (mother's brother)', ऐसा अर्थ देना होगा। इसी प्रकार स्रोतभाषा के बहु-अर्थी (polysemic) तया समरूपी (homonymic) शब्दों के आगे अर्थगत विशेषताओं का सकेत करते हुए भिन्न-भिन्न अर्थभेद के सम्मुख लक्ष्यभाषा के शब्द देने चाहिएं।

द्विभाषी कोषो में प्राय: स्रोतभाषा के सम्मुख लक्ष्यभाषा के शब्द और कभी-कभी शब्द-संहिति देने का प्रचलन है। कुछ सम्पादक अभिव्यक्ति को सशक्त करने के लिए लक्ष्यभाषा के मुहावरों और लोकोक्तियों को भी देते हैं। केवल एकाध कोष स्रोतभापा के पूरे वाक्यों को, विशेषतः आम बोल-चाल में आने वाले वाक्यो को, लक्ष्यभाषा के वाक्यों से प्रकट करते हैं (जैसे, रूसी-हिन्दी कोप, देखिए पहले § २·२)।

(८) **अन्य सूचनाएँ**—समभाषिक कोषों मे दी जाने वाली अनेक सूचनाएँ* द्विभाषी कोषों में नही दी जाती हैं। शब्द की व्युत्पत्ति, ऐतिहासिक विकास, सजातीय शब्दों से तुलना, शब्दार्थ का ऐतिहासिक विकास आदि का द्विभाषी कोषों में कोई स्थान नही है। व्यक्ति-संबंधी, ग्रन्थ-संबंधी, अन्तर्कथा संबंधी सूचनाओं का भी कोई स्थान नहीं है। सैलानियों के लिए बने कोषों में स्थान-संबंधी और मानक-संबंधी सूचनाओं को अन्त में परिशिष्ट रूप से दे देना समुचित रहता है।

§ ४.११ इस प्रकार बने कोष के मुख्य भाग में दी प्रविष्टियों का स्वरूप यों होगा—(१) मुख्य प्रविष्टि—स्रोतभाषा की मान्य लिपि में स्रोत-भाषा का शब्द मोटे टाईप में दिया जाता है। (२) लक्ष्यभाषा मे अर्थगततादात्म्य वाला शब्द वर्णविभाजन का संकेत देता हुआ। (३) इस लक्ष्यभाषा के शब्द का उच्चारण कोष्ठक मे। (४) इस लक्ष्यभाषा के शब्द के सम्बन्ध में व्याकरणिक-कोटि, पद-रचना विषयक विशेषता, वाक्य-रचना विषयक विशेषता और अर्थगत विशेषता का उल्लेख, (यदि आवश्यक हो तो)।

स्रोत-भाषा के बहु-अर्थी एवं समरूपी शब्दों की पृथक्-पृथक् मुख्य प्रविष्टियाँ होंगी।

---

* देखिए, लेखक का लेख 'समभाषिक-शब्दकोष में देय आवश्यक सूचनाएँ' **भारतीय साहित्य; वर्ष ६ अंक १, (१९६१): पृष्ठ ४३-५०।**

§ ५ इस प्रकार द्विभाषी शब्दकोषो को अब भाषावैज्ञानिक-विश्लेषणो की सहायता से नानाविषयक सूचनाएँ देकर अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाया जा रहा है। हिन्दी का अब ससार की भाषाओं में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और विदेशो में, विशेषत अमरीका, रूस, मिश्र आदि में हिन्दी जानने की बडी रुचि है। फलस्वरूप ऐसे द्विभाषी-कोषो की रचना अत्यन्त आवश्यक है जिन में हिन्दी लक्ष्यभाषा अथवा स्रोतभाषा के रूप में हो। भारतीय हिन्दीतर भाषाओ से सम्बद्ध हिन्दी-द्विभाषी कोषो की रचना होनी चाहिए। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि भारत-सरकार स्वय अथवा विश्वविद्यालय जैसी शैक्षणिक सस्थाओ को अनुदान देकर द्विभाषी-कोषो को सम्पादित कराए।

डा० वागीशदत्त पाण्डेय

संहिता ग्रन्थों में आख्यानों का रूप

आख्यान मानव की सहज कुतूहल-प्रवृत्ति की पूर्ति का एक प्रमुख साधन माना जाता है। मनुष्य जिस प्राकृतिक वातावरण के बीच रहता है, उसका व्यक्त या अव्यक्त रूप में मानव-मन पर सदैव प्रभाव पड़ता रहता है। प्राकृतिक पदार्थ इस प्रकार मनुष्य में अतुल कल्पनाओं की उत्पत्ति की प्रेरणा देकर उसके अनुभवों को पुष्ट करते हैं। प्रकृति अनेक रहस्यों का भण्डार है। प्राक्-ऐतिहासिक काल के सरल-हृदय मानव ने इसी कारण प्रकृति में दैवी शक्ति का समाहार कर उसमें अनेक अमानवीय-तत्वों की कल्पना की है। उस समय के प्राकृतिक तत्वों के वर्णन में भारतीय मनीषा ने इसीलिए सर्वत्र कुतूहल पूर्ण वातावरण की सृष्टि की है। प्रकृति के अतिरिक्त देवों और ऋषियों के साहस पूर्ण कार्यों ने भी मानव-मन को प्रभावित किया है। प्राक्-ऐतिहासिक काल के आख्यानों को इसीलिए हम चरित-सम्बन्धी तथा प्रकृति-सम्बन्धी आख्यानों के रूप में पाते हैं। चरित-सम्बन्धी आख्यानों में हमें व्यक्ति के साहस, ओज और पुरुषार्थ के साथ तात्कालिक समाज के सांस्कृतिक-जीवन की झाँकी देखने को मिलती है।

साहित्य की कोई भी विधा क्यों न हो, लोक-मानस उसे निश्चित रूप में प्रेरणा देता है। कथा-साहित्य के विकास मे तो यह बात और भी अधिक चरितार्थ होती है। प्राय: साहित्य के दो रूप हैं—लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य। लोक-साहित्य जन परम्पराओं और अन्धविश्वासों पर अधिक आधारित होता है, जबकि शिष्ट-साहित्य मे लोक के सांस्कृतिक विचारों और सभ्यता पूर्ण-जीवन का चित्रण रहता है। वैसे शिष्ट साहित्य की प्रेरक शक्तियों मे लोक-साहित्य का भी काफी महत्व है। लेखक हो या कवि, बहुत कुछ अंशों मे लोक से वस्तु ग्रहण कर उसे लोक जीवन के अनुरूप संवेद्य बनाने का प्रयास करता है। शिष्ट साहित्य में भी इसीलिए हमें अधिकांशत: लोक-तत्वों के दर्शन मिल जाते है। कुतूहल पूर्ण वातावरण असंभावित घटनाये और आश्चर्य पूर्ण चरित्र विकास सभी कुछ लोक-तत्वों के अंतर्गत है। शिष्ट-साहित्य मे प्राप्त होने वाले प्राचीन आख्यानों मे हमे ये सभी बाते देखने को मिलती है। इस प्रकार जन परंपरा, लोक-साहित्य तथा शिष्ट साहित्य, इस माध्यम से व्यक्ति के विकास के साथ-साथ आख्यानों की परम्परा भी विकसित होती रही है। हो सकता है, शिष्ट साहित्य मे जो कथा सूत्र बाद में संगृहीत

किए गये हों, उनका मूल रूप मौखिक रूप में जन-परंपरा में पहले से ही प्रचलित हो। अत हम कह सकते हैं कि शिष्ट साहित्य के जन्म से बहुत पूर्व ही लोक-जीवन में इस प्रकार के आख्यानों का श्रीगणेश हो गया होगा।

शिष्ट-साहित्य की परम्परा हमें वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों, सूत्रग्रन्थों, रामायण तथा महाभारत जैसे विशालकाय चरितकाव्यों तथा पुराणादि में देखने को मिलती है। सहस्राब्दियों के विकसित इस विशाल वाङ्मय में आख्यानों का जन्म और विकास हुआ है। इनमें से बहुत से आख्यान तो ऋग्वेद् काल से लेकर समय की बदलती हुई मान्यताओं के नवीन अंशों से जुड़कर पौराणिक युग तक जन-मानस में अविच्छिन्न रूप से विकसित होते रहे हैं तथा कुछ आख्यान समय-समय पर युग का प्रतिनिधित्व करते हुए जन्म लेते रहे हैं। डाउसन के अनुसार रामायण तथा महाभारत कालीन आख्यानों की अपेक्षा ऋग्वेद् के आख्यान अधिक प्राकृतिक तथा सरल हैं। ऋग्वेद् के आख्यानों में यदि प्रकृति तत्व तथा प्राकृतिक शक्ति (एलीमेन्टस एण्ड पावर आफ नेचर) का निरूपण है तो रामायण तथा महाभारत कालीन आख्यानों में व्यक्तियों के साहस-पूर्ण कर्तव्यों का वर्णन है।[1] यह सब लोक-मानस के विकसित बौद्धिक-स्तर का परिणाम है।

ऋग्वेद् हमारा प्राचीनतम ग्रन्थ है। प्राक्तन भारतीय समाज एवं संस्कृति के स्वरूप का परिचय देने में ऋग्वेद् का महत्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद् को हमारे यहाँ ज्ञान-कोष का आदि स्रोत माना गया है। मनु ने तो इसके विषय में यहाँ तक लिख दिया है—कि विश्व के सभी प्राणियों के नाम, कर्म और उनकी संस्थायें वैदिक शब्दों से ही पृथक् पृथक् रूप में निर्मित हुई हैं।[2] मनु के इस कथन से हम इतना सत्यांश तो ग्रहण कर ही सकते हैं कि ऋग्वेद् से ज्ञान की विभिन्न धारायें निसृत होकर समय के साथ आगे पुष्पित और पल्लवित होती रही हैं। सचमुच साहित्य की विभिन्न धाराओं का मूल रूप हमें इस अद्वितीय ग्रन्थ में देखने को मिल जाता है। सायण के अनुसार मनुष्य को जो वस्तु प्रत्यक्ष और अनुमान से भी बोधगम्य न हो, उसका ज्ञान वह वेद के माध्यम से कर सकता है।[3] वेद इस प्रकार मनुष्य की ऐहिक और आमुष्मिक ज्ञान-पिपासा की शान्ति के लिए परमोपयोगी ग्रन्थ हैं।

ऋग्वेद् मुख्यत आख्यानों का ग्रन्थ नहीं है; फिर भी बहुत से आख्यान जिनका विकास ऋग्वेदेतर संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों और पुराणादि में हुआ, उनके बीज यहाँ उपलब्ध हो जाते हैं। ऋग्वेद् में आख्यानों का केवल सूत्र रूप में ही निर्देश किया गया है, लेकिन आगे चलकर इनका स्पष्टीकरण शौनक के बृहद्देवता में, कात्यायन की

---

१ दे० भूमिका भाग—डाउसन 'ए क्लासिकल डिक्शनरी आफ हिन्दू माइथॉलॉजी एण्ड रिलीजन०"।

२ "सर्वेषां स तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निममे। मनुस्मृति १.१।

३ "प्रत्यक्षेणानुमित्या वा वस्तूपायो न बुध्यते। एनं विदन्ति वेदेन तस्मात् वेदस्य वेदता"।
'सायण'

सर्वानुक्रमणी में, सद्गुरु शिष्य के सर्वानुक्रमणी पर लिखे हुए वेदार्थ दीपिका भाष्य में, सायण की ऋग्वेद् पर दी हुई वेदार्थ प्रकाश टीका में तथा द्याद्विवेद की नीति मंजरी में विस्तार से किया गया है। ये सभी ऋग्वेद् के भाष्य हैं। संकेत रूप में दी हुई ऋग्वेद् की कुछ कथायें ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में भी विकसित देखी गई हैं।

ऋग्वेद् में किसी आख्यान को वर्णनात्मक ढंग से नही रखा गया है, वहाँ तो केवल ऋषियों तथा देवताओं की स्तुति के रूप में तथा दानदाता राजाओं की प्रशसा के रूप में उदाहरणतया कुछ आख्यानों का संकेत मिल जाता है। डाउसन के अनुसार आर्यों के देवता प्रारम्भ में प्राकृतिक पदार्थो (नेचर एलीमेन्ट्स) के रूप मे थे, जिनमें वाद को उन्होंने दैवी रूप का समाहार कर उनका स्तुति गान किया। इन प्राकृतिक पदार्थो ने सरल हृदय आर्यो को अपनी शक्ति से चमत्कृत किया, अत: वर्षा, सूर्य, अग्नि आदि पदार्थो में, जिन्होंने उनके जीवन को प्रभावित किया, उन्होंने दैवी रूप से उन्हे देखा[1]। इस प्रकार इसी देवत्व की भावना में देव चरितों को अद्वितीय वनाने के लिए ऋपियों ने जिस वाणी का विधान किया वही आख्यानों का जन्म हुआ। मेकडॉनल ने ऋग्वेदीय देवताओं को तीन भागों में विभाजित किया है—द्यु-स्थानीय, अन्तरिक्ष-स्थानीय तथा पृथ्वी-स्थानीय[2]। इनमें द्यु-स्थानीय देवताओ मे मित्र, वरुण, सविता, पूषान तथा उपा आदि; अंतरिक्ष-स्थानीय देवताओं में इन्द्र, अपाम्, वायु, पर्जन्य, रुद्र तथा मरुत् आदि तथा पृथ्वी-स्थानीय देवताओं मे पृथ्वी, अग्नि तथा सोम आदि प्रमुख देवता हैं। ऋग्वेद् में इनसे संबन्धित अनेक आख्यान मिलते हैं। इनके अतिरिक्त ऋग्वेद् मे कुछ ऐसे भी देवता है, जिन्हें किसी एक वर्ग मे नहीं रखा जा सकता। ऐसे देवताओं में धातृ, विधातृ, प्रजापति तथा त्वष्टा आदि का नाम लिया जा सकता है। अप्सराओं में उर्वशी के आख्यान भी ऋग्वेद् में बहुत प्रसिद्ध हैं।

देवताओं के अतिरिक्त ऋग्वेद् मे राजा, ऋषि, पुरोहित तथा असुरों के आख्यान भी देखने को मिलते हैं। इनमे राजाओं में सुदास, दिवोदास तथा नहुष के आख्यान; ऋषियों और पुरोहितों मे विश्वामित्र, वसिष्ठ, गौतम तथा अगस्त्य आदि के आख्यान तथा असुरों मे वृत्र, पणि, बल तथा शम्वर आदि के आख्यान अति प्रसिद्ध हैं। डा० एच० एल० हरिअप्पा ने अपने शोध-प्रबन्ध "ऋग्वेदिक लीजेन्ड्स थ्रू दि एजेज" में इन्द्रादि प्रमुख देवताओं के व्यक्तिगत प्रसिद्ध पचासों आख्यानों को छोड़कर ऋग्वेद मे पाये जाने वाले प्रमुख २९ आख्यानों को गिनाया है, जिनमे सरमा, शुन: शेफ, अगस्त्य तथा लोपामुद्रा गृत्समद, वसिष्ठ और विश्वामित्र, सोम, वामदेव, त्र्यरुण, सप्तवध्रि, विष्णु (वामन), सुदास, नहुष, वृषाकपि, पुरुरवा और उर्वशी, तथा नचिकेता आदि के आख्यान अति प्रसिद्ध हैं[3]।

१. दे० डाउसन: भूमिका भाग: "ए क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू माइथॉलॉजी एण्ड रिलीजन०"।
२. दे० मेकडानल: "वैदिक माइथॉलॉजी"।
३. दे० डा० एच० एल० हरिअप्पा: ऋग्वेदिक लीजेन्ड्स थ्रू दि एजेज भूमिका भाग के अन्तर्गत "ऋग्वेदिक लीजेन्ड्स"।

हरिअप्पा जी ने इस सूची में ऋग्वेद के आठवें मण्डल की दानस्तुति के अंतर्गत आने वाले बहुत से राजाओं के आख्यानों को नहीं गिनाया है।

जैसा हम लिख चुके हैं कि वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक तत्वों में अपार शक्ति का आभास कर उनमें जैसे ही देवत्व की कल्पना की, वैसे ही उन्होंने उनकी अपार शक्तियों का वर्णन कर उनका स्तुति गान किया। इस स्तुति गान के प्रसङ्ग में ही ऋग्वेद में इन आख्यानों का जन्म दिखाई देता है। लेकिन ये आख्यान सदैव एक रूप में ही नहीं रहे, क्योंकि ऋग्वेद के इन आख्यानों की परम्परा शताब्दियों और सहस्राब्दियों तक वर्ण परंपरा से जन साधारण में प्रचलित होती रही। इस प्रकार समय-समय पर आख्यानों के वर्ण्य विषय को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखा जाता रहा। भिन्न दृष्टि के कारण ही वैदिक पात्रों को यदि कहीं आधि-दैविक अर्थ में लिया गया है, तो कहीं उन्हें आधि-भौतिक अर्थ में भी गृहीत किया गया है। कहीं-कहीं उन्हें आध्यात्मिक रूप में भी देखा जाता रहा है। यास्क ने इसीलिए अपने से पूर्व वेदार्थ बताने वाले कई वर्गों की ओर संकेत किया है। इन वर्गों में नैरुक्त (एटीमोलोजिस्ट्स), याज्ञिक (रिचूअलिस्ट्स), वैयाकरण (ग्रामेरियन्स), ज्योतिष्क (एस्ट्रोनोमस), भाषाविद (लिंग्विस्ट्स), सम्प्रदायविद् (ट्रेडीशनलिस्ट्स) अध्यात्मविद (फिलोसफर्स) तथा ऐतिहासिक (लीजेन्डरियन्स) प्रसिद्ध हैं[१]। ये सभी अपनी-अपनी दृष्टि से वैदिक ऋचाओं की व्याख्या प्रस्तुत करते थे। इनमें से पूर्व के सात वर्ग विद्वानों के लिए उपयुक्त थे, जब कि ऐतिहासिक सामान्य वर्ग को सामग्री प्रस्तुत करते थे। वेद को अपौरुषेय और नित्य मानने के कारण ही स्वामी दयानंद सरस्वती ने वैदिक पात्रों का ऐतिहासिक और भौगोलिक महत्व स्वीकार न कर उन्हें यौगिक अर्थ में ही गृहीत किया है। इस अर्थ में ग्रहण करने के कारण ही वसिष्ठ का अर्थ प्राण, भरद्वाज का अर्थ मन तथा विश्वामित्र का अर्थ कण यह प्रचलित हुआ। ये अर्थ तैत्तिरीय संहिता तथा शतपथ ब्राह्मण आदि में भी इसी रूप में देखने को मिलते हैं।[२] अंग्रेजी विद्वान् ब्लूमफील्ड तथा डाउसन आदि ने इसीलिए इन आख्यानों पर प्रकाश डालते हुए स्थल-स्थल पर उनके यौगिक अर्थों की ओर भी संकेत किया है।[३] वैदिक आख्यानों के महत्व ज्ञान के लिए ये ग्रंथ परम उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

ऋग्वेदेतर संहिता ग्रन्थों में आख्यानों का स्वरूप

यजुर्वेद संहिता—यह संहिता ग्रंथ मुख्यत यज्ञानुष्ठानों की उपयोगिता को ध्यान में रखकर लिखा गया है। इसके दो भाग हैं—कृष्ण यजुर्वेद तथा शुक्ल यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद में केवल यज्ञ सम्बन्धी मन्त्र ही संगृहीत हैं, जब कि कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों तथा विनियोग दोनों का सम्मिश्रण है। इस विभाजन के पीछे भी परम्परा से एक आख्यान प्रसिद्ध

---

१ दे० हरिअप्पा वही भूमिका भाग, ५वाँ परिच्छेद।

२ तैत्ति० सं० ५ २ १० ५-६ तथा शत० ब्रा० ८ १ १ ६ तथा ८ १ २ ६।

३ ब्लूम फील्ड 'वैदिक माइथॉलॉजी" तथा डाउसन "ए क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिंदू माइथॉलॉजी०।"

है[1]। शुक्ल यजुर्वेद की पन्द्रह शाखायें तथा कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखाये इस समय प्रचलित है। शुक्ल यजुर्वेद की ये समस्त पन्द्रह शाखाये मिलकर वाजसनेयि संहिता तथा कृष्ण यजुर्वेद की चारों शाखाये—काठक, कठ, कपिष्ठल, मैत्रायणी तथा तैत्तिरीय मिलकर तैत्तिरीय संहिता कहलाती हैं। शाखाओं का यह विस्तार संभवतः यज्ञानुष्ठानों के समय विभिन्न वर्गो में विषय सम्बन्धी मतभेद होने के कारण दिखाई देता है।

यजुर्वेद् की ऋचाओं पर ऋग्वेद् का काफी प्रभाव है, लेकिन ऋग्वेद् का पूरा-पूरा मंत्र शायद ही कहीं यजुर्वेद् में उपलब्ध हो। अधिकांश मे उन मंत्रों के चरण मात्र ही मिलते हैं, जिन्हे यज्ञानुकूल बनाने के लिए उनमे कुछ परिवर्तन कर लिया गया है। यजुर्वेद् का प्रमुख विषय यज्ञ है तथा यज्ञ की विविध विधियों और उनके तत्वों का विवेचन करना ही यजुर्वेद् का उद्देश्य है। इसके साथ ऋग्वेद की भाँति यजुर्वेद मे देवता विषयक लम्बी-लम्बी स्तुतियाँ भी मिलती हैं। उदाहरण स्वरूप वाजसनेयि संहिता के सोलहवें अध्याय मे आदि से अंत तक शतरुद्रीय स्तुतियाँ ही हैं। अध्याय तेतीस-चौतीस में भी इसी प्रकार इन्द्र, अग्नि, सूर्य, भग तथा पूषण आदि का स्तुति गान किया गया है। इन स्तुति प्रसङ्गों मे ही स्थल-स्थल पर देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उन्हें अनेक नामों से अभिहित किया गया है। इन्हीं नाम प्रसङ्गों में विविध आख्यानों की उपलब्धि है। ऋग्वेद की भाँति इस वेद मे भी आख्यानों का विस्तार से वर्णन न होकर केवल संकेत मात्र ही है।

शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि संहिता के विविध स्तुति प्रसङ्गों मे शतरुद्र, मरुत् अदिति, मित्रावरुण, इन्द्र, अग्नि, सूर्य आदि की जीवन घटनाओं का कुछ संकेत मिल जाता है।[2] इसके साथ वसिष्ठ विश्वामित्र द्वेष की कथा का संकेत भी इस संहिता ग्रन्थ मे उपलब्ध हो जाता है[3]। वाजसनेयि संहिता की अपेक्षा कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, काठक तथा मैत्रायणी संहिताओं मे कथाओं का अति विस्तार है। इनमे भी आख्यानों की दृष्टि से तैत्तिरीय संहिता का अधिक महत्व है। प्रो० विजयचंद्र गौड़ ने अकेले तैत्ति-

---

१. "कहा जाता है कि वेद व्यास से वैशम्पायन मुनि ने इस वेद की शिक्षा ग्रहण की और वैशम्पायन से याज्ञवल्क्य ने इस वेद का ज्ञान प्राप्त किया, परन्तु किसी कारण वैशम्पायन याज्ञवल्क्य से रुष्ट हो गये, अतः उन्होंने याज्ञवल्क्य से इस पठित विद्या को वापिस माँगा। गुरु की आज्ञा पर याज्ञवल्क्य ने पठित यजुषों का वमन कर दिया, जिन्हें वैशम्पायन के अन्य शिष्यों ने तीतर बनकर चुग लिया। तित्तिर (तीतर) के कारण इसका नाम तैत्तिरीय संहिता प्रसिद्ध हुआ। यही कृष्ण यजुर्वेद कहलाया। अनन्तर याज्ञवल्क्य ने सूर्य की आराधना कर पुनः नवीन यजुषों को पाया। यही शुक्ल यजुर्वेद था। सूर्य ने मुनि को इसका ज्ञान बाजी (घोड़े) का रूप धारण कर दिया, इसी से यह शुक्ल यजुर्वेद या वाजसनेयि संहिता कहलाया"।

(दे० हिन्दी विश्वकोश भाग २२, पृष्ठ १३२)

२. दे० वाजस० सं० अ० १६ (शतरुद्र); अ० १७ तथा ३९ (सप्त मरुत्); अ० २१ (मित्रावरुण, अदिति तथा इन्द्र); अध्याय ३३ (अग्नि, इन्द्र, सूर्यादि)।

३. दे० वही १३.५४.५७ आदि।

महत्व है। वर्ण्य विषय की कुछ भिन्नता के कारण इस वेद में अन्य वेदो की अपेक्षा आख्यानो का अधिक प्रयोग तो नही किया गया, फिर भी आख्यानो से यह ग्रन्थ सर्वथा शून्य हो ऐसी बात नही। मुख्यत वसिष्ठ-अगस्त्य की उत्पत्ति, वसिष्ठ विश्वामित्र द्वेष, दधीचि नहुष, त्रिशकु, पृथु, वामन, भृगु आदि के चरित्र, परशुराम-कार्त्तवीर्य आदि की शत्रुता, राहु द्वारा चन्द्र ग्रहण तथा वराह, नारद मरुतो की उत्पत्ति आदि की कथायें यहाँ उपलब्ध हो जाती हैं।[२] अन्य वेदो की भाँति अथर्ववेद में भी आख्यान केवल सकेत मात्र में ही मिलते हैं।

२ दे० मेकडानल तथा कीथ कृत 'वैदिक' इडेक्स आफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स।

स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र-संग्रह

[वर्ष ७ अंक २ पृष्ठ १६२ से आगे]

३/४२/१८७

दौलतपुर, भोजपुर, रायबरेली
१३–३–०५

प्रियवर,

एक पत्र परसों आपको भेज चुके हैं। ज्वालापुर आप पहुँचे या नहीं ?

गौरीदत्त को १५ एप्रिल के पहले छुट्टी नही मिलेगी। यदि आप हमारे रहने का प्रबन्ध कर सकें तो एप्रिल के आ······पुर ही आज······रह······आने पर—अल ······जायँगे। यदि हम अकेले आवैंगे तो कहीं भी रह सकैंगे।······आये तो एक छोटा सा मकान अलग दरकार······आपको देंगे। आपको यदि कष्ट न हो······का प्रबन्ध कर सकें तो कृपा कर······अभी यहाँ हम एक हफ्ता रहेंगे।

······कर साथ लेते आवें या वहाँ मिल जा······रही क्या वहा क्या हाल है। जाड़े का सामान क्या साथ लाना होगा।

भवदीय
महावीर प्रसाद द्विवेदी।

३/१८/१८८

कानपुर
११–७–५

प्रिय पंडित जी,

कृपा पत्र आया—तरुणोपदेश में बहुत सी बातें है। वह अनेक डाक्टरी और वैद्यक की किताबों का सारांश है। उसे हमने एक मित्र के लड़कों के लिए लिखा था उससे उनको पूरा फायदा पहुँचा उनका दुराचरण जाता रहा। हमारा काम हो गया अब वह चाहै छपै चाहै न छपै।

हाली की कवितायें मिली-थैंक्स हमको भय है कि हिन्दी वाले इन कविताओं की योग्यता को न समझ सकैंगे। पर हम नौकरों वाली को तो जरूर ही छापैंगे।

आपको इच्छा विक्रमाक चरित देखने की थी उसे हम भेजते हैं आप उसे देखकर रजिस्ट्री करके लौटा दीजिएगा—यदि आपके प्रेस मे दफ्तरी हो तो इस पर एक मोटा ब्रोन पेपर या मलाट लगाकर वापस कीजिएगा—जिल्द टूट गई है कलेवर जीर्ण हो रहा है ।

ला० बदरीदास का पत्र आया है उसे हम भेजते हैं—पढकर लौटाइएगा हम जानते है कि इसमे कुछ फायदा नही पर जिसकी हमने तारीफ की जिसके कार्यकर्त्ताओ से हमने सद्भावगर्भित पत्र-व्यवहार किया उन पर सहसा कुठाराघात हम कैसे करें । यदि हमारे पत्र का कुछ भी फल न हुआ तो हम एक छोटी सी आलोचना सरस्वती मे छापेंगे—एक पृष्ठ मे अधिक न लिखेंगे । यदि ला० मुशीराम पुस्तकाकार समालोचना छापना चाहें तो वे अपने नाम से छपावें—लिख हम देंगे । पर उनको हमारे समय और परिश्रम की कीमत देनी होगी ।

हमारी इस स्पष्ट वक्तता को क्षमा कीजिए—कारण यह है आज मे डेढ़ वर्ष पहिले हमारी मासिक प्राप्ति डेढ दो सौ रुपए थी । पर सेवावृत्ति पर हमको घृणा हो गई इससे हमने उसे लत्ता प्रहार कर दिया । अब हमारे आय का एक मात्र द्वार हमारी लँगडी लेखनी है । सरस्वती से जो कुछ समय मिलता है उससे हम ऐसी चीजें लिखते हैं जिनमे हमारा खर्च चला जाय । इसी कारण से समालोचना इत्यादि लिखकर अपना समय हम नही खो सकते—जब हमने ये समालोचनायें लिखी तब जमाना ही दूसरा था । इस प्रजल्पना और प्रगल्भता के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं ।

आपके मित्र पण्डित जी ने हमारी जो तारीफ की उसका हम क्या उत्तर दें ।

ना हस्नुत्यो गुणैर्हीनो धनैर्हीनो जनैस्तथा । तथापि उन्होने जो पिछले श्लोक में आशीर्वचन दिया वह हम शिरसा गृहण करते हैं ।

श्रीमदीय
महावीर

३/१४/१८६

दौलतपुर, डाकघर भोजपुर, रायबरेली
२४–७–५

प्रिय पण्डित जी,

आजकल हम देहात की हवा खाने अपने जन्मग्राम आये हैं ७ अगस्त तक कानपुर वापस जायेंगे—यहीं आपका पत्र मिला, आपके पत्रगत् सुभाषितो और प्रशसापूर्ण वाक्यो ने तो हमे आपादमस्तक आप्लावित कर दिया है ।

हम उर्दू बहुत कम पढते हैं, पढ भी बहुत कम सकते हैं । यदि बहुत लम्बी न हो तो कृपा करके सरस्वती के लिए भेजिए । उर्दू यदि क्लिष्ट हो तो उसका अनुवाद

हिन्दी गद्य में कर दीजिएगा। हाली की दो चार अच्छी-अच्छी पर सरल कवितायें हम सरस्वती में छापना चाहते हैं। क्या कृपा करके आप इसमें हमारी मदद करेंगे ?

आपकी कथाये हमने पढ़ी हैं, एक याद भी है उसमें किसी राजा या राजपुरुष ने बड़े ही कौशल से उचित न्याय किया है--कथाये हरिद्वार से निकलने वाले एक नये अखबार में छपी थीं उनको बहुत लोगों ने पढ़ा होगा इसलिए अब आप उन्हें सरस्वती में न छापिए। आप हमारे लिए जरा भी श्रम उठाने की कृपा नहीं करना चाहते, यह क्यों ? कोई नई कथा भेजिए। सीधे सादे शब्दों मे, उर्दू शब्द आ जाँय तो हानि नहीं। या काव्यमाला में निकलने वाले किसी छोटे से नाटक या प्रहसन को कथा की रीति पर लिख भेजिए। अवकाश न रहने की दलील ठीक नही। अवकाश आलसी आदमियों ही को रहा करता है। कामकाजी आदमी को अवकाश कहाँ ? पर काम भी वही करते हैं।

लाहौर से 'तालीम' आगई किताब अच्छी है। उसके साथ आए हुए सूची-पत्र पत्र देखकर शवाबेलखनऊ मँगाना पड़ा। कलकत्ते से मेघदूत नही आया शायद पता ठीक नहीं लिखा गया।

हिन्दी शिक्षावली·········दो वर्ष से गवर्नमेण्ट उसे निकालने की फिराक में है दो तीन हजार रुपए वह इनाम में दे भी चुकी तीन चार किताबें नई मंजूर हो चुकी हैं एक बाकी है।

भवदीय
महावीर

३/२५/१९९

उन्नाव
१२-११-०५

प्रणाम,

बहुत अलकाब आदाब लिखने में व्यर्थ जगह और समय न खो कर हम अब सिर्फ प्रणाम ही लिखते हैं। हम अपने मित्रों को यही लिखते हैं।

दो तीन दिन से तबीयत अच्छी न थी इसलिए हम यहाँ आ गये हैं। रविवार तक कानपुर वापस जाने का इरादा है।

रावलपिंडी से पट्टी मँगाने की कोई जरूरत नही--वहीं जालन्धर या अमृतसर में जो मिले भेज दीजिए। जालन्धर के लाला लाजपतिराय बहुत दिनों तक हमारे पास झाँसी में नौकर थे--वे जालन्धर ही से पट्टी मँगा दिया करते थे।

विल्हण ने कालिदास का तो अनेक जगह पर अनुकरण किया है पर वाण का अनुकरण हमको नहीं खटका। वि० दे० चर्चा छपैंगी तो हम वाण की पुस्तकें देखकर आपकी सूचना के अनुसार जरूर विल्हण की [illegible]ेंगे।

तरुणोपदेश देखने मे हानि क्या ? कुछ भी नहीं—अब की दफा जब कभी कोई पुस्तक आपको भेजेंगे उसे भी भेजगे। पर उसे देखकर आपको आनन्द न होगा—कोई १५ वर्ष हुए वह लिखी गई थी—तब हमको और भी कम तजरुबा लिखने पढने का था—अनेक त्रुटियाँ आपका मिलेंगी। भाषा भी अच्छी न लगेगी। मगर आप देखना चाहते हैं तो खुशी से देखिए।

यदि आप उसे शृङ्गार विषयक पुस्तक समझ कर देखना चाहते हैं तो साफ-साफ कह दीजिए हम आपको एक वैसी ही कविता भेज दें। वह शृङ्गार का नवनीत समझना चाहिए ? कुछ समय हुआ दो एक कालेज के अपने अत्यन्त प्रेमी युवकों के कहने मे हमने उसे लिखा था—पर डर है कि कहीं उसे देखते ही आप हमसे विरक्त न हो जायें।

शिक्षा सरोज और हमारे रीडर्स गवर्नमेण्ट को सिर्फ दिखलाने के लिए छापे गये थे—बेचने के लिए नही, आप कृपा करके इण्डियन प्रेस से पूछ देखिए शिक्षा सरोज के कुछ भाग, शायद सब, हमारे पास और भी हैं वे हम आपको भेज देंगे। रीडर्स के लिए हम जब प्रयाग जायेंगे तब खुद माँगकर हम भेजेंगे सिफारिश करते जरा अच्छा नही लगता जिस चीज को हमने बेच दिया—उसे किसी को देने के लिए सिफारिश कैसी ? अगर १००-५० कापियाँ उनकी लें तो वे लोग अवश्य उन्हें छापेंगे।

ठाकुर शिवरत्नसिंह के नमस्ते के उत्तर मे हमारा शुभाशीर्वाद आप उनसे कहिए। उनकी कृपा के लिए अनेक धन्यवाद। यदि हमारा मँगाया हुआ शिक्षणमीमासा न आया और हमने शिक्षा का अनुवाद आरभ किया तो हम उनकी किताब कृतज्ञतापूर्वक रख लेंगे अन्यथा लौटा देंगे और जरूरत पडने पर फिर मँगा लेंगे। जिन किताबों का अनुवाद ठाकुर साहब कराना चाहते हैं उन्हें देखने के लिए भेजिए। साल मे एक आध अनुवाद हमें करना ही है। इस दफा ठाकुर साहब के लिए सही० ठा० साहब का कुछ और भी हाल लिखिए—ऐसे उदार, सज्जन और विद्याव्यसनी पुरुष के विषय मे हम कुछ अधिक जानना चाहते हैं। ठाकुर साहब का मराठी जानना आश्चर्य की बात है।

भवदीय
महावीर।

३/३३/१६१

कानपुर
ता० ८-१२-०५

प्रणाम,

४ ता० का कृपापत्र कल शाम को मिला।

ठाकुर शिवरत्नसिंह जी की उदारता के हम परम कृतज्ञ हैं। आप हमारी तरफ से उन्हें आन्तरिक धन्यवाद दीजिए। पहले हम स्पेन्सर की "शिक्षा" का अनुवाद करने का इरादा रखते हैं। उसके बाद ठाकुर साहब की आज्ञा के पालन करने का यत्न हम

करेंगे। ठाकुर साहब के जामाता का नाम और पता लिखिए। यदि वे कोई उपयोगी लेख भेजेंगे तो हम उसे सहर्ष प्रकाशित करेंगे। इस कृपा के लिए भी ठाकुर साहब से हमारी कृतज्ञता प्रकट कीजिएगा। हम भी बनारस जाने की इच्छा रखते हैं। यदि कोई विघ्न दरपेश न हुआ तो २० या २१ दिसम्बर को जायंगे—यदि ठाकुर साहब इसके बाद कानपुर पहुँचेंगे तो हमसे भेंट न होगी—पर हम बनारस में उनसे मिलने की कोशिश करेंगे।

हमारे साथ हमारा आधा अंग भी बनारस जाना चाहता है। यदि न गया तो हम इलाहाबाद उतरेंगे और अगर एक सेट भी रीडर्स का मिल सकेगा तो हम आपको जरूर भेजवावेंगे।

टोपी के लिए धन्यवाद—बहुत अच्छा—टोपी और पट्टी दोनों को हम आपका प्रेमोपहार ही समझेंगे।

२ ता० (दिसम्बर) के भारत मित्र में आत्माराम की आड़ में सम्पादक ने "भाषा और व्याकरण" पर जल्पना बहुल और कटूक्तिपूर्ण आक्रमण किया है उस पर क्या हम पर आक्रमण है लेख मसखरेपन से भरा हुआ है। अभी शायद और एक आध आक्रमण हों, व्याकरणच्युत वाक्यों के उदाहरणों मे भारत मित्र के भी दो एक वाक्य थे—इससे और अन्य कारणों से भी यह हमला हुआ है। यह अखबार हमेशा से हमारे खिलाफ लिखता आया है। पहले हमको देवता समझता था। अब कारण विशेष से दैत्याधम। बदले की कापी के सिवा एक दूसरी कापी उसने अपने हाथ से पता लिख कर हमें भेजी है। उसके उत्तर में हमने "चिरञ्जीवी भूयाः" लिखकर एक कार्ड भेज दिया है।

पाञ्चाल देश का हमने कभी विचार नही किया आपका कहना ठीक होगा-मराठी में जो प्राचीन भूगोल निकला है उसमें पाञ्चाल देश की सीमायें जरूर दी होंगी।

महाराज छत्तरपुर अंगरेजी के अच्छे विद्वान हैं। उन के ख़यालात खूब परिमार्जित है, उनसे मिलकर प्रसन्न हुए। अपने एक मित्र के बहुत कहने पर हम वहाँ गये थे। महाराज बहुत दिन से हमसे मिलना चाहते थे। हमें रियासतों से सम्पर्क ···पसन्द······ कई जगह से आमंत्रण आये पर हम एक जगह को छोड़कर कहीं नही गये—नौकरी के लिए भी निमंत्रण आये थे—आप हम पर इतना स्नेह रखते है इस लिए हमने यह सब लिख दिया।

हमारी तबीयत साफ नही जान पड़ती है हमें अर्श हो जायगा दर्द रहता है—शौच साफ नही होता—क्या किया जाय—भवतु—उपचार कर रहे है।

क्या आप वनारस न जाइएगा ? मालूम नही यह पत्र आपको कब मिलै—आप ६ ता० के बाद घर जाने वाले हैं।

"पाञ्चालपण्डिता" की एक कापी आई है उससे मालूम हुआ आपके यहाँ से ही सद्धर्म्म प्रचारक नाम का पत्र निकलता है। आप ही शायद उसे लिखते हैं।

हस्तलिखित पोथियो की आपने बेहद तारीफ की—स्नेहपात्रो की कुवृत्ति भी अच्छी लगती है "सुधा" की नकल रख ली या नही—कभी कभी विश्वसनीय आदमियो को उसे देना पड़ता है। पर डर लगा रहता है कि खो न जाय—आपके पास कापी रहने मे यह डर जाता रहैगा।

भवदीय
म० प्र०

३/२३/१६२

२०-१०-६

प्रणाम्

कृपा कार्ड मिला आपकी बीमारी और तीमारदारी का हाल सुनकर दु ख हुआ। आशा है अब सब प्रकार कुशल होगा—हम भी ८ रोज बुखार मे मुब्तिला रहे, अब अच्छे हैं। सैयद साहब दमोह जिले के रहने वाले हैं, हिन्दी कविता से शौक है, आप शायद तिजारत करते हैं। उस 'नोट' के लिए लेखक महाशय ने शिकायत की है, एतदर्थ एक और नोट देना पड़ा वह अक्टोबर में निकलेगा। सचमुच महाराजा साहब का कोई दोष नही। अगस्त की ग्रथमाला निकले एक महीना हुआ। आप दूसरी कापी मगाइए, पहली शायद खोगई।

भावदीय
महावीर

३/७४/१६३

जुही, कानपुर
१-१२-१७

प्रणाम,

हरद्वार से भेजा हुआ आपका कृपापत्र मिला। हाथ ने आपको बहुत तग किया। आपको बहुत दुख मिला। हमें अपने क्लेश से क्लेशित समझिए। आशा है अब आपको बहुत कुछ आराम होगा।

हमारी तबीयत पहले से कुछ अच्छी है। पर बिलकुल अच्छी नही। कोई लेख आलोचना आदि इस समय मे आप भेजते तो बडी मदद मिलती।

हमने अभी सम्पतिशास्त्र को खतम नही कर पाया। यदि शरीर अच्छा रहा तो महीने दो महीने मे खतम हो जायगा। मिल, मार्शल, वाकर, फासेट आदि अगरेजी के

सम्पति शास्त्रवेत्ताओं की कुछ पुस्तकों के सिवा, मराठी, उर्दू, बंगला, गुजराती आदि की भी कितनी ही पुस्तकों का मन्थन कर के हम इसे लिख रहे हैं। फासेट—की किताब से बड़ी होगी। रायल अठपेजी के कोई ३०० पृष्ट होंगे। इस किताब को हमने इंडियन प्रेस को देने का वचन दे दिया। इससे गुरुकुल को नही दे सकते। पहले से मालूम होता तो गुरुकुल ही से बातचीत करते खैर फिर देखा जायगा। जीते रहे और कुछ लिखा तो गुरुकुल से ज़रूर पूछ लेंगे।

हरिश्चन्द्र जी से कहिए वैसी कोई एक किताब नहीं। संस्कृत कवियों पर निबन्ध भिन्न-भिन्न भाषाओं में बिखरे पड़े हैं। संस्कृत कवि पञ्चक पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री से और संस्कृत कवियों का चरित खड्गविलास प्रेस से मंगाले जो अब तक न देखा हो तो—

भवदीय—
म० प्र०

३/११३/१९४

भोजपुर रायबरेली
९—३—०९

प्रियवर,

२८ फरवरी का पत्र और १ मार्च का कार्ड दोनों यथा समय मिले। हो·········
·········हम कर आये है। ८-१० दिन में कानपुर जाने का विचार है।

आज्ञानुसार सम्पतिशात्र की एक कापी मिस्टर गौरी शङ्कर को भेज दी है। शिक्षा अभी छपी नही। स्वाधीनता की कोई कापी हमारे पास खाली नही।

वी० एन० जी का पत्र कई······में निकल गया। आप······चुके होंगे। आर्य्य ······उसे लेखों के बीच में डाल कर बिना हेडिंग दिए छापा है जिसमें लोगों की नज़र उस पर न पड़े। ये लोग अब तक अपनी चालाकी से बाज नही आते। क्षमा कीजिए। इन अन्य आदमियो की गन्दी कार्रवाई से आर्य्य समाज से घृणा होती जाती है।

शंकर जी का चित्र कविता कलाप में शीघ्र ही······गा। सरस्वती में भी देसीं समय······उनकी तक कविता एप्रिल की सर० में छपेगा। दूसरी······छप सकेगी। लाचारी है। उसमें उन्होने एकदम बिजन बोल दिया है।

उस प्राचीन लिपि का फोटो अभी तक आपने नही लौटाया।

ज्वालापुर पहुँचकर वहाँ का हाल लिखिए। आप वहाँ क्या काम करैंगे।

हमारे साथ पं० गौरीदत्त भी जाने कहते हैं·········सिर्फ हमारी रक्षा के लिए। वे उस तरफ रह भी चुके हैं। उन्होंने अलमोड़ा जाना ठीक किया। यदि वहाँ जाने और ठहरने का अच्छा प्रवंध न हो सका। तो ज्वालापुर ही चले आवगे। आपका सरटीफिकट काफी है। आपके समागम से ही हमारा रोग······हो सकता है।

विनीत
म० प्र० द्वि०

३/११८/१६५

जुही, कानपुर
१५–५–०६

प्रणाम,

कृपा काड मिला । १३ ता० की शाम को यहाँ आये । स्वास्थ्य वैसा ही है । कल से जलचिकित्सा शुरू की है । मन्ना मज़े मे है ।

यदि आपका कुछ काम निकले तो विद्यालय देखने आदि का हाल अपने पत्र मे दे सकते हैं, श्लोक भी आप दे सकते हैं, कोई बात बढा कर न लिखी जाय ।

पहले ही पहल दो अङ्क एक साथ निकालना अच्छा नही लगता । प्रबन्ध की त्रुटियाँ जाहिर करता है । वैशाख से न सही जेठ से सही, कौन बडा अन्तर है । यू आपकी इच्छा ।

पूने वालो का पत्र ढूढेंगे । मिलने पर लिखेंगे । उस श्लोक मे और भी कई पाठान्तर हो सकते हैं—

यथा —

१ निशभ्यता लेख ललाम मालिका
सञ्चय

२ प्रकाशते यस्य विशेष निश्चय
ये न कृतोति निश्चय
ये न कृतो विनिश्चय

यदि दूसरी लाइन से विशेष शब्द निकाल डाला जाय तो तीसरी लाइन इस तरह हो सकती है ।

३ गृहीत सदधर्म विशेष सञ्चय
समूह
विचार

४ चकास्ति सोऽय भूवि भारतोदय
स शोभते ऽसौ
विभाति सोऽय

इनमे से जो पाठ आपको अच्छा लगे रख लीजिए ।

भवदीय
महावीर प्रसाद द्विवेदी

३/६३/१९६

जूही, कानपुर,
१५–१०–०९

प्रणाम,

१२ का कृपा पत्र मिला। पं० रामचन्द्र जी को हमारी तरफ़ से लेखों के लिए धन्यवाद दीजिए।

बी० एन० की हिस्ट्री आने पर भेजिएगा। कुछ हाल आगरे से हमें मालूम भी हो गया है। आपने परोपकारी में जो हमारा नाम दे दिया कि हमसे भी बी० एन० के के कुछ शब्दों का अर्थ न लगा इससे ही वे अधिक क्रुद्ध हो गए जान पड़ते हैं। बी० एन० की मनमथ शब्दवाली बात हमारे चरित्र पर धब्बा लगाने वाली है, इसी से कुछ करना होगा। आपको हमने लिखा ही था। अभी आप किसी से कहिएगा नहीं हमने बी० एन०, एडिटर आर्यमित्र, कपूरचन्द और······राम सब को वकील के मारफत नोटिश दी है। क्षमा माँगने को और २०००) मानहानि पूरक देने को लिखा है। अन्यथा फौजदारी में मुकद्दमा चलाने की सूचना दी है। बी० एन० की माफी आ भी गई, बड़ी ही गिड़गिड़ाहट से मांगा है। और लोगों ने अभी तक जवाब नहीं दिया। हमारा पक्का इरादा इन पर मुकद्दमा चलाने का है। ये लोग बड़े ही उद्दंड हो गये हैं।

अपील की कटिंग मिली। दो चार रोज बाद लौटावेंगे। ८ आक्टोबर के आर्यमित्र में तो और कुछ नही लिखा गया ? जो जो कागज़ात हमने पहले पत्र में मांगे है भेजिए। आर्यमित्र में जो कुछ हमारे विषय में छपे भेजते जाइए।

शाहपुरावालों के आह्वान का कारण या परिणाम जानना चाहते हैं ? परोपकारी का अध्यक्ष कौन है ?

चित्त हमारा शान्त ही है। बी० एन० के किये वह क्षुब्ध नहीं होगा। हां बीमारी से हम अलबत्ते तंग हैं। पं० रामदयालु जी को ख़मीरागाजबां भेजने के लिए लिखा है। भिजवा दीजिए।

सर० के विषय में आपके वाक्य बड़े ही उत्साह वर्धक हैं। धन्यवाद।

गोपीचन्द का ही·········लिखते हैं। शंकर जी को कृपा करके भेज दीजिए।

भवदीय
म० प्र०

३/१६५/१६७

जुही, कानपुर
८-१०-११

प्रणाम,

प्रचारक जो न लिखें सो थोडा। महेशचरणसिंह मेरे पास ही बैठे थे। मैंने यह कहा कि मुझे ससार के बडे-बडे वक्ताओं से ईर्ष्या हुई है। मैं चाहता था कि मिश्रजी के गुणगान करने के लिए कुछ देर के लिए मैं डेमास्थनीज, बर्क, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी या मालवीय जी हो जाता। पर मेरा ऐसा भाग्य कहाँ। वह तो तवे की तरह तप रहा है। कविता के लिए जो कुछ कहा वह ठीक हो सकता है।

सत्यदेव जी यहा भी दर्दनाक बातें कहते थे। मुंह से क्षमा मागते थे। तीन दिन तो नहीं डेढ दिन अवश्य रहे थे। पहले दिन डटकर खाया था दूसरे दिन क्षमा प्रार्थना लिखने मे मशगूल रहने के कारण आधे पेट दोपहर को। अनेक बार क्षमा प्रार्थना लिखी। अनेक बार फाडी। प्रयाग मे भी यही नाटक करते रहे। उन्हें व्याकुल देख प्रेस के स्वामी ने उन से कह दिया कि आपके लगाये इलजामो का उत्तर सरस्वती मे न छापा जायगा। तब आप खुशी के मारे नाचने लगे। वादा किया कि अब मैं क्षमा प्रार्थना अभ्युदय में जरूर छपवाऊगा और उन लोगो की सब खबर लूंगा। पर अन्त को कुछ न किया। तब आजिज आकर हम लोगो ने आक्टोबर की सर० मे वह नोट प्रकाशित किया। ऐसा अव्यवस्थितचित्त मनुष्य मैंने दूसरा आजतक नही देखा। मेरा पहला नोट मेरी समझ के अनुसार अक्षरश सत्य था। अगर वे अपने लिखे को वापस लेते थे तो क्यो न वापस लिया। किसने उनका हाथ पकडा था। कई आदमियों के सामने क्षमा प्रार्थना लिख लिख कर फाडी और अन्त मे दो एक कलहप्रिय नौउम्र लडको के कहने से उसे प्रकाशित करने से इनकार ही कर दिया। जाने दीजिए। इनका जिक्र छोडिए।

पूर्णसिंह जी के लेख शुक्लजी ने नही दिए। क्या करू। लाचारी है। वे उनको लिखें तो शायद ढूढने का कष्ट उठावें।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी।

३/२०८/१६८

दौलतपुर, डाकखाना-भोजपुर रायबरेली
२७-८-१३

प्रणाम,

पोस्ट कार्ड मिला। इस कृपा, उदारता और स्नेह के लिए मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। मेरी तन्दुरुस्ती ऐसी नही कि मैं बाहर जा सकूँ। बाहर जाने से और भी नीद नही

आती। निश्चिन्तता और विश्राम इन्हीं दो बातों से मुझे कुछ आराम मिलता है। पर ये दोनों ही मेरे भाग्य में नहीं।

बाणभट्ट विषयक पुस्तक यहाँ मेरे पास नहीं। उसका नाम आदि याद नहीं रहा।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी।

३/२०९/१९९

जुही, कानपुर
२२–१०–१३

प्रणाम,

कृपा पत्र मिला।

मानवसन्ततिशास्त्र कोई अवलोकनीय पुस्तक नहीं। "बाणभट्ट" का पताः—
पाण्डुरङ्ग गोविन्द शास्त्री पारखी, शनिवार पेठ, पूना।

आपका लेख खूब रहा।

मगधे मुन्शी महत्वमाप्नोतु। बड़ी मजे की रचना है। विशेष कर के म गधे। कभी-कभी कुशल समाचार भेज दिया कीजिए।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी।

३/२०/१०

जुही, कानपुर
३०–११–१३

प्रणाम,

कृपा पत्र मिला। कटिंग भी पहुँचे। धन्यवाद। आर्य्य समाज को लड़ने झगड़ने और मुकद्दमेबाजी का रोग सा है। इसका रंज है।

ईश्वर करेगा तो प्रताप जल्द तरक्की करेगा। उसके एडिटर पहले मेरे ही पास थ। मुझे छोड़ कर अभ्युदय में गये थे।

दोऊ जाइ जोहारा बारी । चंद्रकला चकचौंधि निहारी ।
तीसर और कौन संग अहो । केहि की वारि कहा धौं रही ।
देखि रूप उपजा हिए आवै आप सनेह ।
जो रचना दामिन दिखे वारे मीन सनेह ।।१०६
गै समीप जब मालिनि मैया । चंद्रकला की लेन बलैया ।
चंद्रकला उठि बिहँसी धाई । बहुत दिनन पर आएउ बाई ।
पूछेसि खेम कुसल घर केरा । माता कित कीनां तुम फेरा ।
मालिनि कहा सुनौ मम प्यारी । मोहनी ते तुम सुनेउ दुलारी ।
भा अदेस देखन का धाएउ । तुमरे रोग की औषद लाएउ ।
देखि सकौं नहिं तुम्हहिं मलीना । दुख तुम्हार आपन दुख चीन्हा ।
चंद्रकला मनमा मुसकानी । मालिनि बचन कहा का जानी ।
कहा मात फिरि कही उघारी । कौन बिथा तुम सुनेउ हमारी ।
तब मालिनि मुसुकाय कै दुहराया एह बात ।
जेहि के कारन तुम दुखी तेहि लै आएउ साथ ।।११०
भेंटौ मिलौ कहउ जो बीती । आपन आपन बिथा पुनीती ।
तब चंद्रावलि चीन्हेउ स्यामा । आए किशन राधिका धामा ।
नारि भेख लखि नारि लजानी । रूप बिमल सोभा की खानी ।
उठी धाइ चरनन ते लागी । बोली बचन प्रेम रस पागी ।
आउ प्रान ताहि कंठ लगाऊ । सुघर सरूप की मैं बलि जाऊ ।
जो तुम होतेउ नारि करारी । तीनि लोक जाते बलिहारी ।
होइ कै पुरुख हमैं बौराएउ । प्रीति रोग दै लाज नसाएउ ।
बनिकै नारि हियाँ का आएउ । धन्नि भाग जो दरस देखाएउ ।
घूघट खोलो लाडलो चितवो हमरी ओर ।
मुख देखरौनी मैं करौं प्रान निछावरि तोर ।।१११
केहिको नारि रही केहि ठाऊँ । मोहि बताओ आपन नाऊँ ।
कौन पुरुष अस करम नवीना । जेहि की हो तुम वारि नगीना ।
लवा घूघट चुप्पे पाँउ । एहि घूघट की बलि बलि जाँउ ।
घूघट भीतर कपट कटारी । खूब बनेउ तुम भोली वारी ।
सुनिकै बचन मोहनी हसी । आज बिचारी आइ कै फसी ।
धरो धाय अब जान न पावै । फिरि कस जाइ जो आप से आवै ।
प्रेमा कहा जान नहिं आएउ । जहाँ कित जब लाज गँवाएउ ।
निकसि जाइ घर से जब नारी । कित पावै फिरि घर पैठारी ।
आयौं घर से मैं निकसि अपने जिउ पर खेलि ।
बिना संग लीन्हें तुम्हहि केहि बिधि जाउ अकेलि ।।११२
तीनि नारि एक पुरुष सयाना । कोउ नहीं तहँ दूसर आना ।
पुरुषौ नारि भेख धरि आवा । चेरि कोउ पहिचानि न पावा ।

चलें तहां वतियाँ मन भाई । अपनी अपनी कहें बुझाई ।
मालिन दोऊ कीन एक खोरा । प्रेमा चंद्र लीन गहि कोरा ।
चंद्र बाँह प्रेमा गर डारे । बैठे दोउ बिरह के मारे ।
ढुरें आँस मुख बचन न आवै । बिरह बिथा कछु कहन न पावै ।
घरी एक बीते एहि हाला । प्रेमा बचन चँद्र सों चाला ।
कहौ प्रान कोइ जतन बिचारी । जस निबहै यह बैरिन यारी ।

नैन सिरोही मारि कै हरि लीन्हों मन चैन ।
तुम बिन जीवन है कठिन सोच यही दिन रैन ।।११३

आगे का तुमरे मन माँहीं । प्रीति अंदेस जियब हम नाहीं ।
तेहिसे ज्ञान बिचारौ कोई । जेहि बिधि जगत हंसाव न होइ ।
ताहेन तुमरे कारन प्यारे । एक दिन जैहै प्रान हमारे ।
अब नहिं जाइ बिरह दुख सहा । सहा जहाँ लौ धीरज रहा ।
बोली तब चंद्राबलि बारी । का पूछउ तुम जुगुति हमारी ।
मति हीनी सब नारि कहावै । हम का तुम्हे उपाइ बतावै ।
बुद्धि ग्यान हरि लीन्ह पिरीता । तुमहीं चेतौ कोइ सुभीता ।
जस तुम कहौ नैन सिर धरौं । जतन बिचारि कहौ मैं करौं ।

चंद्रकला की बात सुनि प्रेमा भएउ अनंद ।
मनमा बाढ़ा प्रेम अति छूटि गएउ भ्रम फंद ।।११४

कहा प्रान मैं जतन बतावौं । करौ वहै जो तुम्हहिं सिखावौं ।
हम तुम तजै मात पित देसू । चलै अंत धरि जोगी भेसू ।
जहँ बैरी सब जिउ के ग्रासा । तहां नहीं जीवन की आसा ।
जिन जिन प्रेम डगर पग दीन्हा । तिनका सब बैरी कै चीन्हा ।
बैरी मात पिता परिवारा । बैरी बंधु भाइ घरबारा ।
बैरी नगर देस के लोगू । बैरी राह बार संजोगू ।
बैरी मीत होंइ एहि बाटा । डगर कंकरी फोर ललाटा ।
बैरी रूख झांपहि जो देहीं । धूप देखाइ छांह हरि लेही ।

जिन पग दीन्हा प्रेम मग तिनका को सुख दीन ।
छोटि बड़े बैरी भए सुख संपति हरि लीन ।।११५

मांखी प्रेम सहत सों कीन्हा । सहत छीनि तिनका दुखदीन्हा ।
माछर प्रेम जो जल संग जोरा । जल ते काढ़ि कीन्ह एक ओरा ।
साउज कीन घास संग प्रीती । जानत सब जो उन पर बीती ।
वान चलाइ तिन्हहि सब मारै । चरै न देइ अलान हँकारै ।
फिरि याकूब जो यूसुफ चाहा । भा बिरोग तनमन सब दाहा ।
भे बैरी सब उनके भाई । कूप डारि तेहि दीन चोराई ।
चंद्र कहा प्रेमा सों प्यारे । मोहि सुनावहु नीकि कथा रे ।
कौन रहे याकूब सयाने । जो यूसुफ पर भए दिवाने ।

कह प्रेमा सुन लाडली धरो करेजे हाथ ।
हिय फाटै सुन एहि कथा मोसे कही न जात ।।११६

कनम्रां नगर शाम के देसू । तहाँ बसैं याकूब नरेसू ।
थे पैगवर रब के प्यारे । अति दयाल करतार दुलारे ।
सुख आनद दीन्ह सब भाती । करैं याद रब की दिनराती ।
भजन करैं रब का मन लाई । एक छिन बिना भजन नहिं जाई ।
बारह पूत दीन्ह तेहिं दाता । एक ते एक रूप बल राता ।
यूसुफ हते छोट सब माँही । सुघर ताहि सम दूसर नाहीं ।
केहि विधि बरनौं ताहि निकाई । थोरी बात कहौं समझाई ।
रचेउ रूप जग जुगति विधाता । अश कीन दस तेहि कर दाता ।

यूसुफ पावा अश नौ एक अश ससार ।
होवहि सूघर जैस यह मनमा लेउ बिचार ।।११७

पिता ताहि गुन रूप लोभाई । करैं प्यार सबते अधिकाई ।
एक छिन करैं न नैनन ओटा । ओट भए हिय लागै चोटा ।
दूसर भाइ जरैं लखि प्रीती । चरचैं पिता पेरि अनरीती ।
मनमँह अगिनि डाह की जागी । राखै कपट प्रेम मग त्यागी ।
सोवत एक निसि यूसुफ जागा । पितु सन कहन बचन अस लागा ।
सुनौ पिता म देखेहु आजू । बैठेउ पाट भएउ जगराजू ।
ग्यारह नखत चद औ सूरा । कीन्ह डडवत मोहि भरपूरा ।
सुनि क पिता कहा भय खाई । जिनि यह वचन कहेउ कहु जाई ।

भाई बैरी है सकल राखैं मनमँह खोट ।
जो सुनि पावैं एह वचन करैं दाँउ धरि चोट ।।११८

मुखते बात निकसि जग छाई । कस तेहिका कोऊ लौटाई ।
भाई सुनि यूसुफ का सपना । पिता मात उर जाना अपना ।
मनमह रखन खोट वह लागे । आपन बैर जनावा आगे ।
बीते कछुक दिवस एहि रीता । बिसरि गएउ एह वचन पुनीता ।
एक दिन सब आए पितु पासा । माथ नवाय कीन्ह अरदासा ।
सुनौ पिता हम करैं बखाना । बन सोभा बैकुठ समाना ।
फूले भाति भाति तह रूखा । बिसरि जात तेहि देखत भूखा ।
अमरित फल ल उनई साखा । पछी पढैं अनेगन भाखा ।

यूसुफ प्यारे को करो आज हमारे सग ।
लै देखरावैं ताहि चलि फल फूलन के रग ।।११६

कह याकूब सुनो सब प्यारे । यूसुफ रहे जो पास हमारे ।
तेहिके दरस नैन बिच जोती । जोति गए मोती भे पोती ।
जीवन नहि वोहि एक छिन त्यागे । जीवन है ओहिके लग लागे ।
पठवौं कस तेहिका तुम सगा । दीपक बिन कस जियै पतगा ।

बन मा बिविधि भांति जिउ रहै । भालू बाघ भेड़िया अहै ।
लै सब लै मानुख धरिखाहीं । आवत सोच यहै मन मांहीं ।
यूसुफ है अबहीं निजु बारा । कस नैनन ते करौं निरारा ।
भाइन्ह कहा पिता सुनु बाता । हम बैरी नहिं तेहि कर आता ।
हम सब जोधा है बली एक ते एक सेवाय ।
जो कुंदिस्टि ताकै कोऊ छारहिं देइ मिलाय ।।१२०
भेड़हा बाघ सियार की नाँई । जानत है हम ताहि गोसाँई ।
नित बन मा हम पसू चरावैं । जीउ जंतु कर भय नहिं खावैं ।
यूसुफ है हम सब का प्यारा । जिउ बहलावन हेत बिचारा ।
पठवौ छाड़ि सोच औ संका । संग जियत को मारै हंसा ।
ताही छिन यूसुफ तन हेरा । बेटा जान चहत मन तेरा ।
कह यूसुफ सुनु पिता हमारे । है सब बंधु प्रान ते प्यारे ।
हम हुँवई देखन का जइहौं । भाइन्ह संगै पसू चरइहौं ।
जो होई बिधना लिखि राखा । होई वहै अमिट कोउ भाखा ।
दीन्ह रजायस तब पिता सौंपा बाँह थमाय ।
भाइन्ह संगै वह चला मनमह अति हरखाय ।।१२१
कह याकूब चलत एह बाता । बहुरि देखावै तोंहि बिधाता ।
फिरि भाइन सों कहेउ बुझाई । यूसुफ बिकल होन नहिं पाई ।
भूख लगे तेहि भोजन दीन्हेउ । सब प्रकार सेवा तुम कीन्हेउ ।
कठिन घाम ते दीन्हेउ छाया । अति कोमल है याकी काया ।
दिवस घुमाय सांझिलै आएउ । लौटत बेलँभ नेक ना लाएउ ।
भाइन्ह बचन पिता कहँ दीन्हां । फिरि यूसुफ को आगे कीन्हां ।
जब लो सनमुख रहा दुलारा । पिता नैन देखत नहिं टारा ।
कोउ धाइलै कोंछ उठावै । कोऊ लै कांधे बइठावै ।
डार तोरि कै बिरिछकी करै कोऊ लै छांह ।
कोऊ धायकै प्यार से पकरै तेहिकी बांह ।।१२२
नेकन ओट भएउ जब बारा । तब एक धाय तमाचा मारा ।
दीन्ह ढकेलि बार गहि ऐंचा । होइ कठोर अपने दिसि खैंचा ।
कोउ मारै कोउ त्रास देखावै । देइ ढकेलि चहूंदिस जावै ।
कोउ कहै यहि डारौ मारी । एहि के जिये हमै दुख भारी ।
यूसुफ रोइ रोइ गोहरावै । कोउ पापी का दया न आवै ।
बोलै बचन गरू बिख घोरे । हम सब चेरे है का तोरे ।
का सपना देखे कह आजू । झूठ कहत आई ना लाजू ।
कहिकै झूठ पिता बउरावा । पिता तोहै बहु सीस चढ़ावा ।
चाँद सुरुज ग्यारह नखत कहां गए सब आज ।
झूंठ कहत ऐ बावरे तोंहि न लागी लाज ।।१२३

चोला रोइ देह तेहि भोजा । मन कठोर ना तनिक पसीजा ।
यूसुफ कहा कौन अपराधू । तू मारेउ मोहि लेइकै ब्याधू ।
मिलि सब कीन्ह मता एहिठाँई । डारौ यहि चलि कूप माँहीं ।
पकरि घसीटि खैंचि घरि आगे । तेहि का कूपहि डारन लागे ।
रसरी बाँधि गरे लटकावा । आधी दूरि ते काटि गिरावा ।
गिरा कूप याकूब दुलारा । रब के हुकुम सास नहि मारा ।
गहिरा कूप महा अँधियारा । यूसुफ पहुँचि कीन्ह उजियारा ।
जल सूखा जिउ जतु बिलाने । अपनी अपनी ओर लुकाने ।
अग्या भै जिबरील का पहुचे तहा तुरत ।
बीचहि माँ तेहि थाम्हिकै बैठावा एकत ॥१२४

कूप माँझ जब यूसुफ आए । सब सुख जन्नत का तहँ पाए ।
कह जिबरील कहा रब तोरा । आपन मन कीजो नहि थोरा ।
देहौं राज करौं सुलताना । जगत होइ बहु आदर माना ।
जिन भाइन्ह तोहि कूप ढकेला । सेवा करै होइ सब चेला ।
कह यूसुफ जो वह करतारा । तेहिका का मोहि सोच बिचारा ।
मै बदा वोह मालिक दाना । जौन करै वह वहै सोहाना ।
मै सब भाँति नवांउ सीसा । मै सेवक वह ठाकुर ईसा ।
सुनि एतना जिबरील सिधारे । यूसुफ रहे कूप मा न्यारे ।
कूप डारिकै भाइ सब आय भए एक ठौर ।
काटि छेरि ताही रकत चोला लीन्हो बोर ॥१२५

तेहि कर माँसु भूजि कै खावा । भएउ साझ तब भएउ चलावा ।
रोवै कपट बनाइ रोवाई । पहुँचे घर सब करत दोहाई ।
डगरै माँ याकूब भेंटाने । रोवत देखि बहुत सकुचाने ।
दिल धड़का लूटी मन आसा । यूसुफ मिलन से होइ निरासा ।
पूछा कुसल कहो मम प्यारा । काहे न तुम सग लौटि सिधारा ।
कहा पिता कछु कहा न जाई । यूसुफ लीन्ह भेंडिया खाई ।
हम सब बढिगे दूरिन लागे । तेहि बैठाइ कै बिस्तर आगे ।
तेहि छन एक भेडिया आवा । मुख मा दाबि ताहि लै धावा ।
केतनौ पीछा कीन हम मिला न तेहि कर भेहु ।
रकत भीज चोला मिला सो हम लाए लेहु ॥१२६

सुनि एतना याकूब डफारा । मुरछा खाइ गिरा दुख मारा ।
कहा प्रान तुम कहा हेराने । पिता बिरध कैंह काह भुलाने ।
हा यूसुफ हा प्रान अधारू । तुम बिन जियब हमें भा भारू ।
तजिकै हमें गएउ केहि ओरा । कैसे जियइ पिता अब तोरा ।
कह एतना मुरछा फिर आई । पिता के सग रोवैं सब भाई ।
मन मा कहैं भएउ अपराधू । पिता बधु मारा होइ ब्याधू ।

फिरि जब चेत घरी मां आवा । चोला लै तेहि नैन लगावा ।
तेहिं मां बास रक्त की आई । भा अचरज पूंछा निरथाई ।
लौटि जाउ तुम्ह बन बिखे लावउ तेहि का घेरि ।
पूछँउ मै वह दुष्ट ते कस कीन्हेसि अंधेर ।।१२७
गे सब भाइ लौटि बन मांहा । मिल एक बिरध भेड़िया तांहा ।
ताहि बांधि सब घर लै आये । आवा तहां सीस निहुराये ।
कर याकूब नबी कर तारा । भएउ भेड़िया बोलन हारा ।
पूंछा नबी कि कह हत्यारे । तोंहि मम यूसुफ काहेक मारे ।
कहा नबी सुनउ मन लाई । शाम के देस बसै मोर भाई ।
मैं हौं मिस्र देस का बासी । भेंटन ताहि जात बिसवासी ।
तेहि छिन धरा बांधि इन मोही । कहूं सत्ति मैं सनमुख तोंहीं ।
है पापी ए पुत्र तुम्हारे । अति निरदई महा हत्यथारे ।
हम नहि मारा यूसुफै नाभा की न एह भेद ।
जान देहु हम का नबी करो न हम सों खेद ।।१२८
सुनि याकूब बहुत अकुलाने । यूसुफ सोगन भए दिवाने ।
तजा भेड़िया, गा निज राहाँ । अपने ठांउ पहुने बन माहां ।
निसुदिन हजरत करैं बिलापा । महा सोग तन मन बिच व्यापा ।
रोवत नैन भए दो झरना । रोय रोय रहिगा दुख भरना ।
बैठत उठत चलत वह रोवैं । रोय रोय आँसुन मुख धोवैं ।
नैन नीर भुंइ भई तराई । जामी घास ओद जब पाई ।
नैनन जोति गई भे सूरा । पुत्र सोग एह घाव न पूरा ।
खान पान औ नींद हेरानी । व्याकुल प्रान देह अकुलानी ।
जग मां जेतने सोग हैं पुत्र सोग सों नीच ।
पुत्र सोग जेहि के भयो मुख ते मांगै मीच ।।१२९
प्रमा कहा प्रीति जिन कीन्हा । बैरिन सुख छीना दुख दीन्हा ।
मात पिता सम कोउ नहि मीता । बैरी होंइ वोहू सुनि प्रीता ।
जीउ दुखी जो पावैं राजू । अरिन्ह राज आवा केहि काजू ।
जीउ सुखी जो मांगै भीखा । तीनो लोक सो अदवन पेखा ।
चंद्रकला कह प्रान पियारे । तुमही हौ धन धाम हमारे ।
राज पाट लै तुम पर वारौं । जहां चलौ तोंहि संग सिधारौं ।
लोक लाज तुम कारन त्यागौं । जेहि मग चलो वही मग लागौं ।
तुम्हरे दरस मिटै सब पीरा । तुम्ह पाए जिउ रहै सरीरा ।
प्यारे प्रेमा प्रानपति मै चेरी तुम्ह कंत ।
यूसुफ परे जो कूप मां फिरि कस बीती अंत ।।१३०
कह प्रेमा चंद्रावल प्यारी । यूसुफ परे कूप मंझधारी ।
तीनि दिवस बीते तेहि ठांऊं । आगे की अब कथा सुनाऊं ।

सिर पर मकुट महा रतनारा । गर विच तौंक फैल उजियारा ।
कानन डारि जडाऊ बाला । चद्रहि घेरि लीन जनु हाला ।
अँगुरिन माँ अलमास अँगूठी । जगत कीन जस आपन मूठी ।
सोने की छडी हाथ विच सोहे । पावन टूट देखि मन मोहे ।

तखत जराऊ जगमगा ऊचे ठाउ विछाय ।
यूसुफ साजि सवाँरि कै लै बैठावा आय ।।१३८

देखन हार खरे जहँ ताँहीं । मुरछा खाइ गिरे मुइ माँही ।
निरखि रूप यूसुफ सुधि भूली । नैनन मा सरसों जस फूली ।
ऐसी फैलि जोति परकासा । भे अचेत सिगरे चहुँपासा ।
केतने खरे रहे टकलाई । जस मूरति कोउ बोल बजाई ।
केतने निरखत भए देवाने । सुधि भूली गुन ज्ञान हेराने ।
केतने चरन छुवैं का धाए । एक एक पर टूटैं छाए ।
केतने दरस पाइ रब चीन्हा । जिन अस रूप यूसुफै दीन्हा ।
केतने चितवत रब बिसरावा । जाना रब अपनै बनि आवा ।

देखि कोलाहल तेहि समै मालिक कीन्ह पुकार ।
आजु बिकत एह दास है है कोइ खरचन हार ।।१३९

गुन याके नहिं जाइ बखाने । है सुघर जस सब जन जाने ।
पढा लिखा धरमीं बल बीरा । सीलवान ज्ञानी गुन धीरा ।
सुन सब मोल जगत उतराजे । गाठि ठटोल मनहि मन लाजे ।
काहुक गाठि साठि नहिं सारी । कहे बेसाहे भई लचारी ।
सिर निहुराइ ठगन अस ठाढे । काहु न दाम गाठि ते काढ़े ।
छूछी गाठि चहत रस चाखा । बिया रहीम बढ़ावत साखा ।
छूछी गाठि जात किन पूछी । चला रहीम गाठि लै छूछी ।
अमल रियाज गाठि नहि तोरे । काकर पाथर साथ बटोरे ।

साँई दरसन के समै देखै गाठि निहारि ।
छूछी गाठि रहीम की पत राखै करतार ।।१४०

कहा जुलेखा पति सों धावो । लेहु दास जिन मोलन पावो ।
अस ना मिलै रूप फिर हेरे । खोल भडार बेसालि सबेरे ।
पूछा मालिक से कहु मोला । तब बजार बचन अस बोला ।
तौलो यही बराबरि रूपा । मोहर देउ यहि के सम भूपा ।
तौलो लाल बराबरि याके । फिर मोती साचे धर लाके ।
तौलि कस्तुरी एहि सम दीजे । अगर कपूर बराबरि कीजे ।
सुना अजीज मोल मनमाना । कह मन्त्री से खोलु खजाना ।
जो जो कहा तौलि एहि दीजे । कछु बिलब ना यामैं कीजे ।

मत्री खोलि भडार तब तौलन बैठा मोल ।
एक पल्ले यूसुफ चढ़े दूसरे मा धर तोल ।।१४१

तौलत भयो खजाना खाली । यूसुफ पल्ला उठै न हाली ।
दै सब मोल बेसाहेउ दासा । पूरी भै मालिक की आसा ।
मालिक दरबि देखि ललचाना । यूसुफ रूप का मोल न जाना ।
दरबि पाइ वह जोति गवांवा । उघरे नैन तो भा पछितावा ।
कहा रूप जीवन की आसा । कहा दरबि जो होइ बिनासा ।
अब का लाभ होत पछिताए । हात जुआरी मूरि गवाँए ।
मंत्री आय कहा शह पांही । अब कछु रहा खजाना नाहीं ।
सुना अजीज सोच मन घेरा । आपै आइ खजाना हेरा ।

देखा खोलि भंडार तब आप आइ सुलतान ।
रती एक खांगा नहीं जस का तस बिलगान ॥१४२

भा अचरज मन मा अतिभारी । देखी गति करता की न्यारी ।
यूसुफ की महिमा तब जाना । मगन भएउ मनमाँ सुलताना ।
पूंछा यूसुफ से निरथाई । यहि का कारन कहौ बुझाई ।
कह यूसुफ करतार हमारा । है दयाल दाता बरियारा ।
पुरबत ना जो आज खजाना । होत हमार न इहँवा आना ।
देखतेउ नैन मोहि फिरि नांही । आजु लाज रखि लीन गोसाँई ।
आदर भाव कीन सुलताना । यूसुफ का घर भीतर आना ।
लाइ जुलेखा का सौंपावा । बहुत भांति एहिका समुझावा ।

दास न जानेउ बालकहिं है औतारिक रूप ।
धन्नि भागि एहि धाम कै जहँ असरूप अनूप ॥१४३

पाइ जुलेखा जिउ पर प्राना । जिउ समान यूसुफ का जाना ।
जिउ डारे नित जिउ मा राखै । दरस स्वाद नैनन से चाखै ।
नैन बिछावै वोहिकी राहां । राह निहारै यूसुफ जाँहा ।
यूसुफ चेत सभै बिसरावा । बिसरि गएउ सब अपन परावा ।
हाजिर रहै जौन मनभावै । यह नेरे वह दूरि परावै ।
नियरे भए होत का लाहा । जब लोयन भीतर नहिं चाहा ।
अपन परार से मन भा दूरी । जब से पायौ दरस मंजूरी ।
संगहि भोजन खान न पाए । बिन खाए कस भूख बुताए ।

भई जुलेखा मन दुखी करि यूसुफ की चाह ।
यूसुफ मन भावै नहीं एही कठिन औगाह ॥१४४

एक दिन संग यूसुफका लीन्हा । पूजा मंदिर गौन उन कीन्हा ।
जब यूसुफ मदिर मा आए । देखी मूरति परम सोहाए ।
आइ जुलेखा तेहि सिर नावा । करि मिनती अरदास सुनावा ।
कहा जुलेखा ठाकुर मोरे । आयौं बर मांगन घर तोरे ।
मन हींछा पूरौ मम आजू । हौं तुम मोर धनी महराजू ।
मूरति औंधि गिरी तेहि ठाँई । टूक टूक भै काँच की नाँई ।

अग अग टूटि भूमि छितराना । पुनि वह एहिका मरम न जाना ।
देखि जुलेखा मन घबरानी । भै केहि भाँति मूरती हानी ।
भा अचरज मन भीतर भौचकि रही डेराइ ।
पूछा यूसुफ से तबहिं कारन कहौ बुझाइ ।।१४५
काहे मूरति भई बिनासा । कौनि चूक एह भएउ तमासा ।
यूसुफ कहा मोर करतारा । एहि का तोरितार भइ डारा ।
है सांचा वह आदि गोसाई । दूसर कोउ वाके सम नाईं ।
एहि मूरति निज करहिं बनायो । कस तेहिका फिर सीस नवायो ।
है रब सबका सिरजन हारा । हमका तुमका वहै सवाँरा ।
वाकी सकति बरनि नहिं आवै । चह राखै चह छार मिलावै ।
कहा जुलेखा का रब तोरा । इहाँ बैठि देखत चहुँओरा ।
यूसुफ कहा कौन अस ठाऊ । जहाँ नहीं वोहि मालिक नाऊ ।
इहाँ उहाँ धरती सुरग जल थल नियरे दूरि ।
ठाँउ ठाँउ वह लेत है अस दाता भरपूर ।।१४६
कहा जुलेखा है रब ठीका । जिन सवाँर तुमका अस नीका ।
बिनै करौ अपने रब पासा । जो पुरवै मोरी मन आसा ।
एहि मूरति जस की तस होइ । गुपुत भेद एह जान न कोई ।
तब यूसुफ करतार मनावा । मूरति पहिल रूप फिर पावा ।
भई मगन मूरति लखि रानी । यसुफ से बोली अस बानी ।
मैं जानौं मो हेन तुम्ह चाहा । वा तेहिके मन तोरिउ चाहा ।
है रब का तू अधिक दुलारा । तोरा कहा मान करतारा ।
कह यूसुफ रब मोर निरारा । है दयाल पति राखनहारा ।
वोहि चाहे आदर मिलै चाहे करा लजान ।
जस अपजस वोहि हाथ है करन हार वोहि जान ।।१४७
जब यूसुफ रब नाउ बखाना । सुना जुलेखा मन हरखाना ।
कहा मोहु भजतेउ रब तोरा । जो न होत एक ठाकुर मोरा ।
एक मन मा कस आदर जागे । नहीं उचित डरिकै अनुरागे ।
सुनि यूसुफ मन मा मुसकाने । कोऊ बरजे फिरत भुलाने ।
तजि मंदिर आई निज धामा । यूसुफ केर टेर नित नामा ।
यूसुफ सुरति मुरति मन बसी । जस चकोर होइ चितवत ससी ।
सोवत जागत यूसुफ भाखै । यूसुफ का सनमुख नित राखै ।
बैठत उठत चलत वोहि टेरै । बार बार मुख यूसुफ हेरै ।
भई जुलेखा प्रेमबस यूसुफ रूप भुलान ।
नैन पूतरी होइ रहा तनमन वहै समान ।।१४८
भाँति भाति बस्तर पहिरावै । सोभा देखि नैन सुख पावै ।
नहि जानै यूसुफ एह घाता । मन सांचा अरु सोधी बाता ।

भई जुलेखा प्रीति देवानी । नेह रोग व्यापा अकुलानी ।
दिन दिन पीर होइ दौ लागीं । तन बिच प्रीति लगाई आगी ।
एक दिवस तेहिकी एक दाई । पूछेसि बिथा बहुत समझाई ।
केहि कारन तुम रहत मलीना । दाता सब प्रकार सुख दीना ।
भा अंदेस अब तू मन रोए । बेगि बताउ खांग का तोरे ।
कौन भोग तो मैं जात होरानी । देखि न जात तोर गरानी ।

कहा जुलेखा रोइ तब सुनु माता मोरि बात ।
यूसुफ मोरे मन बसा तेहिक सोच दिन रात ।।१४९

पास रहै पर पास न आवै । मन हरि लीन्ह मोहि तरसावै ।
चित चाहै वोहि कंठ लगावौं । चित चाहै वोहि सेज बसावौं ।
वोह सो मोरी ओर न ताके । मोहि निहार आगि जस झांकै ।
मैं लगिचांउ होत वह दूरी । मन अभिलाख होत नहिं पूरी ।
एहि कारन मैं दुखी रे माता । बेगि विचारु मिलन की घाता ।
सुन दाई हँसि कै अस बोली । तुम कन्या अबहीं हहु भोली ।
यह तो कठिन नहीं अस भारी । जेहि के सोच रहसि दुखियारी ।
मैं जानेउं कुछ बड़ा अंदेसा । उपजा मन तोंहि भयो कलेसा ।

एहि की सहज उपाय है तोंहि देउं बतलाय ।
यूसुफ आपै मोहबस तो मन का घर आय ।।१५०

मन मूरख एहि लाज देवानी । प्रीति डगर बिच लावत हानी ।
जहाँ लाज तहँ काज अधूरा । लाज गवांय राज होइ पूरा ।
घर मा छोट नरन की लाजा । कस सुधरै तब मन कर काजा ।
यूसुफ लाजवंत है बारा । प्रीति जगत मा पैग न मारा ।
तेहि से जुगुति एक है न्यारी । निहचै कारज होइ करारी ।
सीसमहल एक रचउ अलाना । चित्रकार सुन्दर मन माना ।
तहां बोलावउ ताहि अकेला । पाइ अकेल करौ तेहि मेला ।
जुगुति नीक वाके मन भाई । कहा नीक बतलाएउ माई ।

लै अग्या तब साहकी महल नींउ भरि दीन्ह ।
बना अजूबा वह मँदिर देखत मन बसि कीन्ह ।।१५१

कंचन इंट कपूरहिं गारा । सीस महल बहु साज सवाँरा ।
चार खंभ पर खड़ी हवेली । रतन जड़ित जगमग रचबेली ।
भीतर चालिस खंभ बनाए । एक एक अति सुधर सुहाए ।
मंदिर मांह चित्र बहु रचा । जेहिका निरखि काम तन संचा ।
जहँ देखो तहँ यूसुफ काढ़ा । लिए जुलेखा का सँग ठाढ़ा ।
कहूँ बनावा गरे लगाए । मुख चूमै अति प्रेम जनाएँ ।
कहूँ एक-संग सेज पर सोवै । कहुँ गहि हाथ खींचि कुच टोवै ।
एहि बिधि रच मंदिर कैलासा । सजा महल लखि होइ हुलासा ।

मंदिर साजि सँवारि कै बैठि जुलखा आइ ।
तब दाई से अस कहा यूसुफ लाउ बुलाइ ॥१५२

दाई सुनत बचन तहँ धाई । सीस महल यूसुफ का लाई ।
यूसुफ देखि महल रतनारा । कहा धरम राखै करतारा ।
एहि कर साज आज छल जागै । सजा अनूप देखि भल लागै ।
पहुँचा जाइ जुलेखा पासा । जहँ बैठो वह एहिकी आसा ।
किए सिंगार बनो जस बनी । निरखत मन मोहि लेइ मोहनी ।
कह यूसुफ का अग्या तोरी । केहि कारन तलबी भै मोरी ।
हौं सेवक जो काज बतावो । तेहिका करौं जौन फुरमावो ।
ठाढ़ा रहे सीस निहुराए । नैन द्रिस्टि अपने पग लाए ।

कहा जुलेखा मन हरन ऐसे बचन न बोल ।
आपन चेरी जानि मोहि बोल हिया अब खोल ॥१५३

मैं एह मंदिर रचेउ तोहि कारन । कह यूसुफ रब देइ हजारन ।
कहा जुलेखा यूसुफ प्यारे । तुमही मन मा बसे हमारे ।
कह यूसुफ मोरे मन दाता । वोहिका छुट कछु और न भाता ।
कहा जुलेखा तक मम ओरा । कह यूसुफ देखै रब मोरा ।
कहा आउ तोहि कठ लगाऊ । कह यूसुफ का नरक देखाऊ ।
कहा जुलेखा नैन तिहारे । लागत सुघर सोह रतनारे ।
केस तुम्हार नीक अति लागै । सुदर बदन काम लखि जागै ।
रूप तुम्हार निहारि भुलानी । तन मन की सुधि मोर हेरानी ।

प्यारे यूसुफ देखु अब जिन मोहीं तरसाउ ।
हौं कापत मैं तुम्ह बिना मैं का कठ लगाउ ॥१५४

कह यूसुफ मति तोर हेरानी । रूप हमार देख बेलैंभानी ।
एह काया माटी कर साँचा । याके सँग काहे मन राँचा ।
एक दिन एह माटी मिलि माटी । खइहैं एहि माटी का चाँटी ।
रूप अनूप छार मिलि जाई । फिरि कत रहिहै देह गोराई ।
केस नैन सरवन औ नासा । एक दिन सब कर होइ बिनासा ।
एक तो देखै रब सब काजू । फिरि अजीज सो आवत लाजू ।
जिन दै मोल बेसाह्यो मोहीं । कब है उचित छुवउ मैं तोहीं ।
जौन वस्तु मालिक कर होई । सेवक काज न लावै सोई ।

कह यूसुफ सब रीति नीति धरम समुझाइ ।
हली जुलेखा कामबस तासे काह बसाइ ॥१५५

कहै लागि सुनु यूसुफ प्यारे । अब जिन मोहि उपदेश सुनारे
जो तोहिका रब कर डर भारी । तेहिकी मैं एक जुगुति बिचारी ।
खोलि भडार दान पुनि कीजो । रब की राह दरबि बहु दीजो ।
दान पुन्नि ते पाप नसावै । रब राजी होइ दूख मिटावै ।

जो अजीज की आवत लाजा । बिख दै वाकी करौं इलाजा ।
अब तो कहा मानिले मोरा । चेरी जानि देखु मम ओरा ।
कह यूसुफ अस काज न होई । अवहट लै मंझधार डुबोई ।
रब नहि मांगत मोरा कोरा । कस मै सुनउँ बचन एह तोरा ।

एक तो जाना है हमै साहेब के दरबार ।
जो रब रूठै पाप ते कौन बचावन हार ॥१५६

भै निरास तब रोवन लागी । कहा कि मोसम कौन अभागी ।
तोहिं का खरचि दाम लै मोला । सब धन पल्ले धरि कै तोला ।
लै कै मोल तोहिं सुख दीन्हा । दास न जान प्रान अस चीन्हा ।
सदा रख्यों आदर से तोहीं । तोहिं हठ करत जरावत मोहीं ।
तनक न मानै मोर निहोरा । मोरेन लाग दोस का तोरा ।
अब मै करौं तोरई माना । राखौं चेरन चेर समाना ।
कह यूसुफ जिन बोल बड़ाई । बड़ा बोल नहिं तोहिं सोहाई ।
बड़ा बोल एक रब का सोहै । निरंकार जगदाता जो है ।

साहब जेहिका मान दे कौन करै अपमान ।
राखै सीस चढ़ाइ कै तेहिका सकल जहॉन ॥१५७

धनि करतार तोर गति न्यारी । जीव काम जिन पर अति भारी ।
कामै लै गुन ग्यान नसावै । कामै लै नर नरक बहावै ।
कामै हरै लाज औ सरमा । कामै करै अनेक अकरमा ।
कामहिं काम मनुज करवारे । कामहि ते देउता मन हारै ।
कामै करै तपस्या भंगा । काम ग्यान ते ठानत जंगा ।
बुद्धि हेराइ काम जब आवै । भागत डगर बुद्धि नहिं पावै ।
यूसुफ देखि नारि अनुरागा । सका न थामि काम तन जागा ।
मन पाथर जस लोन पसीजा । फूस जरे सो फूकन भीजा ।

चालिस पुरुखन के समे जगा ताहि तन काम ।
एक के कारन जग बेकल चालिस को किन थाम ॥१५८

काम बेस गुन ग्यान हेराना । छाड़े गुन मन अडर समाना ।
तेहि छिन रब पठवा जिबरेला । धरि याकूब रूप तेहि पेला ।
दांतन दाबि अँगुरिया बरजा । लखि यूसुफ का हिरदै लरजा ।
धोखा दीन नैन भरि कामा । काम ग्यान ते भा संगरामा ।
ग्यान कहै अस कल नहि कीजै । काम कहै जोबन रस लीजै ।
ग्यान कहै अधरम है भारी । काम कहै तोरी मति मारी ।
फिरि एह समै हाथ नहिं आवै । समै चूकि पाछे पछितावै ।
ग्यान कहै जइहो तुम धोई । धरम गवांइ सो भल नहिं होई ।

जीता अंत काम तब भई ग्यान की हार ।
तेहि छन परा बिजोग अस मा सहाय करतार ॥१५९

तहँ सुंदर मूरति एक धरी । दिस्टि जुलेखा कै वह परी ।
रही लजाइ ताहि मन काँपा । उठि कै पट मूरति पर झाँपा ।
यूसुफ पूछि भेद निरयाई । केहि कारन एहि मुरति छिपाई ।
कहा जुलेखा आवत लाजा । देखत हैं ठाकुर महराजा ।
तब मन यूसुफ भएउ अदेसा । मूरति देख पाउ उपदेसा ।
मूरति देखै चलै न डोलै । विना जीउ मुखते नहिं बोलै ।
तेहि की लाज करै एह नारी । मैं सो पुरुख मोहि धिरकारी ।
रब मोरा देखै सब काजा । हाजिर नाजिर को नहिं लाजा ।

धिक धिक मोरे जनम का का मैं करत अकाज ।
उघरे नैना ग्यान भा तहँवा से वह भाज ॥१६०

डेउढी सात नाघि वह आवा । पाछे नारि धाइ पछुवावा ।
सतयें पर दामन गहि ऐंचा । आतुर होइ अपने दिसि खेंचा ।
दामन फाट हाथ लग नारी । रही पछिताइ सोच ना भारी ।
द्वारे ठाढ अजीज निहारा । चातुर नारि गोहार पुकारा ।
धरो दास एह जान न पावै । कौन अकाज भाजि कस जावै ।
भौंचक होइ पूछा सुलताना । कौन अकाज कौन ऐहि आना ।
कहा जुलेखा अहै अभागा । मोहि कुदिस्टि ताकि एह भागा ।
सून मंदिर मोहि देखि उघारी । होइ अधरम कछु और विचारी ।

मन अजीज रिसियान अति तनमा लागी आग ।
पकरि मगावा यूसुफहि फिरि पूछन अस लाग ॥१६१

रहै कुदिस्टि कह सत्त उघारी । तुइ से चूक भई अब भारी ।
कहे यूसुफ जानै करतारा । हम नाहीं कछु काज बिगारा ।
कहा अजीज लाउ कोउ साखी । साखी सत्ति वचन जो भाखी ।
तहँ एक नारि खडी पट ओटा । बालक लिए गोद मा छोटा ।
कह यूसुफ वह बालक देखा । साखी देहै लेहु परेखा ।
कह अजीज बालक का बोली । कहत बचन की करत ठिठोली ।
यूसुफ कहा पूछि तुम देखौ । जो भा कहै सो मन मा लेखौ ।
तब पूछा कह बालक प्यारे । केहि की लाग तुइ आज निहारे ।

चालिस दिन का बालका बोला बडेन समान ।
कहु बचन समझाइ कै थोरेन मा लेउ जान ॥१६२

जो दामन आगे का फाटा । यूसुफ कीन्ह करारी घाटा ।
जो फाटा पाछे से होई । तो नारी कर औगुन सोई ।
देखा दामन पाछे फटा । तब तो अजीज लाज सों घटा ।
भा अचरज बालक जो बोला । दोख जुलेखा का उन तोला ।
करि मिनती यूसुफ सों कहा । परखा सजन तोर सत रहा ।
करो छिमा जिन मुख पर लावो । है अजाब जनि बात बढ़ाओ ।

तुम सब भाँति सराहन जोगू । जो कहिहौ तौ हँसिहैं लोगू ।
यूसुफ कहा छमैं करतारा । गुन औगुन जो देखन हारा ।
जग के देखि पाप एक कह रहीम दै हांक ।
साहब देखै दोख सब राखै परदा ढांक ॥१६३
फैली बात नगर मां छाई । तिरियन सब सुनि कीन हँसाई ।
कहै जुलेखा बड़ी देवानी । रीझि दास पर का गुन जानी ।
सोऊ जेहि की बात न पूछै । सो वह प्रीति जनावै छूंछै ।
सुना जुलेखा भै मन पीरा । जग हँसावं लै सोच घनेरा ।
मन मा कहा जतन अब कीजे । प्रीति क भाव सभन का दीजे ।
जानै सभै पीर जस होई । सब भुगुतै तब कहै न कोई ।
अस बिचारि ठानेउ एक काजू । परगट कीन होइ वह आजू ।
घर घर नेउता फेरि जनावा । सब तिरियन निज धाम बोलावा ।
आइ नगर की नारि सब तेहि घर कर उजियार ।
एक एक ते अपछरा कीन्हे बिबिध सिंगार ॥१६४
कोउ गोरी कोउ साँवर बारी । सुंदर बदन चंद्र उजियारी ।
कोउ रूप कोउ जोबन माती । कोउ लखि गहन मगन इतराती ।
कोउ म्रिगनैन बान हिय हूलै । कोउ के केस पांव लग झूलै ।
कोउ के दांत बीज अस चमकै । कोउ के गाल सोन अस दमकै ।
कोउ कि नासिक सुवै लजावै । तेहि बिच कील महा छबि छावै ।
कोउ भौंह कै साजि कमाना । तारे हिए करेजे बाना ।
कोउ कटि रहीं महासुकुमारी । कोउ प्रेमहि चित्र सवाँरी ।
कोउ जिउ छीनि लेइ मन बसिकै । कोउ मन मोहि लेइ हँसि हँसिकै ।
नया जुलेखा का मँदिर जस बसंत फुलवारि ।
भाँति भाँति रंग साजि कै जुरीं आनि कै नारि ॥१६५
पहिरे कोउ लाल तन सारी । कोउ चीर कुसुंभी फुलकारी ।
कोउ बसंती जोड़ा साजे । लखि सदबर्ग रंग अस लाजे ।
कोउ अमौवा सूहा धानी । कोउ ऊदा काही असमानी ।
कोउ मासी उन्नाबी कोऊ । प्याजी ज़रद गुलाबी कोऊ ।
कोउ बसंती बदामी लीला । कोउ सुरमई हरा चटकीला ।
कोउ करँजी बैंजनी काला । कोउ कुसुमी केसरिया आला ।
जेतने रंग जगत उपराहीं । सब झलकै उन तिरियन मांहीं ।
सोभा अकथ कथे नहिं आवै । देखा नैन जीभि कस गावै ।
देखि जुलेखा भीर अति करि आदर सनमान ।
लै बैठावा सभन का सुंदर सुभ अस्थान ॥१६६
यूसुफ का एकंत बोलायो । कहि अस बचन ताहि समझायो ।
आजु काज सँवरौ एक मोरा । मानौं अधिक निहोरा तोरा ।

कह यूसुफ हौं चेर तोहारा । सेवा करत लाउ नहिं बारा ।
कहा जुलेखा है एह काजू । म एक ठानेउ आजु समाजू ।
तिरिया नगर केरि हं आई । बैठीं महल बीच जहँ ताई ।
जब मं टेरि पुकारौं आएउ । आवत बेलंभ तनिक ना लाएउ ।
यूसुफ कहा करौं मं सोई । जेहिमा तोर रजाएस होई ।
सेवक भाति करौं सेवकाई । मानौं हुकुम तोर चितलाई ।

भई जुलेखा मन मगन सुनि यूसुफ की बात ।
दीन बिधाता आज मोहि दाव लीन कै घात ॥१६७

भा अनद मन सोग सब तजा । सहित प्रेम लै यूसुफ सजा ।
प्रथमं ऐंछि सवाँरे केसा । मोती बार बार परवेसा ।
दोऊ लट ते अति लटकावा । चित्त फास हित जाल बनावा ।
सिर पर मुकुट महारतनारा । चमकै लाल लगं जस तारा ।
नैन बाढ़ि सुरमा रचि दीन्हा । नैन कटाछ सिरोही कीन्हा ।
रतन जडित कगन कर सोहे । चमचमाए कचन मन मोहे ।
जगमग जरी रेशमी चोला । तन पहिराव बहुत अनमोला ।
काधे डारि दुसाला हरा । रूप अनूप कीन्ह अति खरा ।

यूसुफ साज सँवारि कै आयो तिरियन पास ।
जँह बैठीं सब अपसरा नया मदिर कैलास ॥१६८

अमित प्रकार भोजन सुख देवा । आनि धरा लै मिसिरी मेवा ।
बिबिध भाति लै धरी मिठाई । जो मन चहै तौन सो खाई ।
एक एक नींबू खटरस भरा । पैनि छुरी तिन्ह आगे धरा ।
फिरि सब ते बोली मिठबोली । पावो भोजन सभ हमजोली ।
चाखो भोग चहहु जो चाखा । राखहु आज मोर अभिलाखा ।
तिरियन कहा भोग जब खाहीं । यूसुफ जब सनमुख होइ आहीं ।
यूसुफ का अब बेगि बोलावो । कस है रूप हमहिं देखलाओ ।
जेहिकर रूप तोर मन छीना । हमहू लखहिं रूप परबीना ।

नैनन ललसा लागि है देखन यूसुफ रूप ।
जिन बौरावा तोहि सखीं कस है रूप अनूप ॥१६९

सुनि तिरियन कर छोह घनेरा । प्रेम सहित यूसुफ का टेरा ।
सुनि पुकार यूसुफ तहँ चला । भयो प्रकाश रूप निरमला ।
परगसा तहाँ चद्र जस आवा । मानो नखत टूटि भुइ छावा ।
रूप जोति नैनन मा छाई । लखि तिरियन सुधि बुधि बिसराई ।
काहुक ज्ञान रहा उर नाहीं । यूसुफ रूप बसा मन माहीं ।
होइ अचेत निज निज कर काटा । रकत भरा नीबू रस चाटा ।
निरे रकत की फूटी धारा । काम जोर नहिं रहा सँभारा ।
लखा रूप यूसुफ मनभाना । उपजा मोह प्रान अकुलाना ।

नारिन मिलि कै सभ कहा कस है जुलेखा भाग ।
जेहि के घर अस रतन है कस न होइ अनुराग ।।१७१
सब मिलि कहा जुलेखा पाँही । देखा सखी दोख तोर नाहीं ।
नहीं दास एह मानुख होई । एह तो अहै फिरिस्ता कोई ।
एहि कर रूप जगत से आला । देखा कौन आव नहिं ख्याला ।
जो अस है यह सूघर दासा । कस न होइ मन प्रेम प्रकासा ।
रूप आँच मन मोम कहावै । देखे आँच मोम गलि जावै ।
चुंबक रूप खींच मन लोहा । चुंबक लोह प्रकट मन मोहा ।
नहीं याहि कुछ दोख तिहारा । है असै एह सूघर प्यारा
सुघर रूप सब के मन भावै । महा मती मती डिगि जावै
सुघर रूप लखि जगत माँ सुर मुनि नर बाराँइ ।
रहै न अस्थिर देखि कै काम बिवस होइ जाँइ ।।१७२
कहा जुलेखा सुनो सहेली । मै एहि प्रेम जीउ पर खेली ।
सत्ति कहूँ मै चाहउं एहा । नहिं याके मन मोर सनेहा ।
मै एहि कारन भएउं देवानी । एहि सो मोर पीर नहिं जानी ।
मैं एहि कारन कीन्ह उपाई । एहि मोहि त्यागि कीन निठुराई ।
अब मोरे मन रही न धीरा । सहेउँ सकति भरि बिरह की पीरा ।
अब मैं यहै जुगुति मन ठाना । लै राखँउ याको बँदिखाना ।
तिरियन कहा जाइ समुझावै । हम सब घेरि डगर पर लावै ।
कहा जुलेखा कहो सुझाई । जो मानै तौ अहै भलाई ।
गई जुलेखा एक दिसि तिरियन यूसुफ घेर ।
छबि अपनी देखलाय के लगीं कहन एह टेर ।।१७३
बोली एक देख इत प्यारे । कस चाटक तुइँ हम पर डारे ।
दूसर कहा ताकु मम ओरा । मै बलि जाँउ देखि मुख तोरा ।
तीसर बोली गात उघारी । मम दिसि देखु जाँउ बलिहारी ।
चौथी तहँ नैन मटकावा । पँचई कुच उभारि देखरावा ।
छँठई कमर झुक दै बोली । संतई जाँघ तनिक अस खोली ।
अठई केस दीन्ह छिटकाई । नवँई हँसी दंत चमकाई ।
दसँई नाक पै धरा अँगुरिया । कह अठिलाय बचन जो तिरिया ।
हम सब देखि तुहै सुखपावा । तुँइ अस निठुर न बोल सुनावा ।
यहै गुनन एहि मान ते भएउ आन कै दास ।
दास न जानै भेद कघु लखै कपूर कपास ।।१७४
यूसुफ रहा नैन पग जोरे । लाग न काहु के सिखए भोरे ।
उतर न दीन मौन होइ रहा । सब की सुना न अपनी कहा
बहुत भाँति तिरियन फुसिलावा । वह सो दिस्टि अंत नहिं लावा ।
थकी चलाइ चला नहिं टोना । रहीं हिलाइ हिला नहि गोना ।

जाइ साह का भोग लवावैं । लागैं चील्ह गिद्ध बहु धावैं ।
श्रानि सो सीस मोर मडराने । लै लै रोटी भागि पराने ।
सपन लाभ समुझाइ कै हमसो कहो बिचारि ।
सुनि यूसुफ बोले वचन दिन बीते दुइ चारि ।।१८२

साकी फिरि साकी होइ जाई । बादशाह का मदिर पियाई ।
वहै काज सौंपै सुलताना । वहै होइ फिर श्रादर माना ।
नहीं कुसल भडारी केरी । फासी मिलै नगर दै फेरी
सपन लाभ सुनि सुनि सकुचाने । कहा झूठ तुइ लाभ बखाने ।
हम नाहीं सपना कोउ देखा । हम तो लीन्ह तुम्हार परेखा ।
यूसुफ कहा सत्ति ए होई । झूठ वचन जानै जिन कोई ।
दिन दस गए साह निरयावा । बदिखान ते दुहू बोलावा ।
साकी का निरदोख विचारा । वहै काज सौंपा दरबारा ।
पुनि भडारी के सिरे एह अपराध तुलान ।
साह के बैरी ते बचा विख मिलया पकवान ।।१८३

तेहि अपराध दीन्ह वोहि फासी । परगटा बचन सत्ति बिसवांसी ।
बीते बहुत दिवस एहि भांती । यूसुफ बदिखान दिन राती ।
निसि एक साह सपन एह देखा । कूप निपट जल सूखि विसेखा ।
तेहि मा सात गऊ भहरानी । सब मोटी ताजी मन मानी ।
सात गऊ निकसीं फिरि श्रौरा । दूबर पातर लहा सकोरा ।
इन सातो उन सातों खावा । तब हूँ पेट न कछु उचियावा ।
फिरि उन देख सात श्रन बाली । दांतन भरी हरी हरियाली ।
सात श्रौर देखा वोहि ठांई । सूखी श्रान कोउ मा नाहीं ।
एक ठाउ दोऊ हरी सूखी हरी मिलान ।
सूखी चाटा हरिन का छन मा श्रान मिलान ।।१८४

फिर देखा एक पुरुख नवीना । मम सग बैठ सिघासन लीना
महा सघर सुदर गुनवाला । जेहिकर रूप जगत उजियाला ।
मो से पूछि करै सब काजू । साजै पूछि सो सबही साजू ।
भा भिनसार जाग सुलताना । सपन सोच मन मा श्रकुलाना ।
कहा बोलाय पडितन श्रागे । पतरा काढ़ि बिचारन लागे ।
कीन्ह खोज कछु ग्यान न श्रावा । पडितन मिलि श्रस बचन सुनावा ।
एहि सपना नहिं साच गोसांई । पोथी मा निकसै कुछ नाहीं ।
सुनि रिसियान बहुत सुलताना । पडितन सपन लाभ नहि जाना ।
मूरख पडित है सभै सेंति तलब सब खाहि ।
सपन लाभ भाखें नहीं ताकि ताकि रहिं जाहि ।।१८५

हुकुम दीन्ह सब गए निकारे । कछुक श्रभागे गे तहँ मारे ।
साकी बिनै कीन्ह सह पासा । बदिखान बिच है एक दासा ।

कहै नीक सपना भल बाँची । जो जो कहा भयौ सब साँची ।
अग्या होइ तौ पूछौं जाई । होइ करारी जौन बताई ।
पठवा साह तुरत वह धावा । यूसुफ से सब मरम सुनावा ।
यूसुफ कहा सपन है साँचा । एह कर लाभ जथारथ बाँचा ।
सह से बिनै करौ फिरि जाई । सनमुख कहूँ जो मोहिं बुलाई ।
साकी लौटि साह पहि आवा । जस उन कहा तौन दुहरावा ।

लै अग्या साकी चला संग सहस असवार ।
हाथी घोड़े पालकी साजि कतार कतार ॥१८६

पहुँचा बंदिखान मंझियारा । यूसुफ का सब जाइ जोहारा ।
बोला चलौ साह बोलवावा । तुमहिं लेन एह साज पठावा ।
काटि हथकरी हाथन केरी । पाँयन दूरि कीन पर बेरी ।
लै नहवाइ बस्त्र पहिरावा । सजा ठाठ जस साह बनावा ।
झिलमिल जरी जराऊ चोला । सिर पर ताज धरा अनमोला ।
गरे हार कर कंगन सोहैं । चमकै जोति देखि मन मोहैं ।
एक तौ दीन्ह आप रव जोती । दूसर जोति चमक गज मोती ।
साज सवाँरि बिनै अस कीन्हा । चलौ बेगि सह अहै मलीना ।

तब यूसुफ बोले बचन बहुरि साह पँह जाउ ।
जब बंदी छुटैं सभै तबहीं होइ चलाउ ॥१८७

साकी बहुरि गयो सह पासा । कहा संदेस सहित अरदासा ।
सुनिकै हुकुम दीन्ह सुलताना । यूसुफ बचन मगन होइ माना ।
बँधुआ सब छूटे छिन मांही । सभै असीसैं यूसुफ काही ।
तजि बंदिखान चला दरबारा । बंदिखान होइ सून पुकारा ।
काहे जात आज मोहिं त्यागे । सोभा मोरि रहै तुम्ह लागे ।
यूसुफ कहा दैव ना लावै । बैरिउ तोर पास न पावै ।
बंदिखान दुख संकट धामा । नरक रोग काला घर नामा ।
तहाँ परै जिन कोउ अभागा । कहि अस बचन मारगहिं लागा ।

बड़ी धूम बहु ठाठ से यूसुफ कीन्ह पयान ।
पाय खबरि अगवान मां आप आइ सुलतान ॥१८८

आदर सहित भेंट बहुलावा । निरखि रूप गहि गीउं लगावा ।
लाइ सिंघासन आसन दीन्हा । रहा मोहि लखि रूप नबीना ।
फिर यूसुफ चालेउ अस बाता । फिरै जुगन जुग सह सिर छाता ।
प्रथमै मोर निआउ बिचारेउ । जौन देख बंदिखान हँकारेउ ।
सहित जुलेखा नाम की नारी । पूछौ बात बोलाइ करारी ।
तब मैं लाभ सपन कर भाखौं । खोलौं भेंद गुपुत नहिं राखौं ।
अग्या कीन साह सब आई । यूसुफ दरस आस सब धाई ।
पूंछा सह तिरिअन निरआयौ । सत्ति कहौ कस युसुफ पायौ ।

तिरियन मिलिकै सब कहा है यूसुफ निरदोस ।
लाज धरम या के हिए हिरदैं महा सतोख ।।१८६
हम सब कमा कसौटी एहा । पावा खरा खोट नहि जेहा ।
कहा जुलेखा है यह सब साचा । है अपराध मोर सत वाचा ।
मैं एहि रूप निहारि भुलानी । यह निरदोस वात नहि मानी ।
सुना साह दुविधा मन त्यागा । यूसुफ पाय सत्त अनुरागा ।
करि मिनती सुलतान लजाना । बिन अपराध दीन बंदिखाना ।
यूसुफ कहा दोस नहिं तोरा । भएउ वहै जो चह रब मोरा ।
वह चाहे डारै बंदिखाना । वह चाहे होइ आदर माना ।
वह चाहे दुख होइ अपारा । वह चाहे सुख मिल ससारा ।
वहै देत दुख सुख सबन वहै मान अपमान ।
वह दाता एक है धनी दुखिया सकल जहान ।।१६०
सपन लाभ अब कहौं विचारी । परि है कस्ट देस पर भारी ।
प्रथमैं सात गऊ जो देखा । वरप सात रह सुख कर रेखा ।
उपजै अन्न खेत मन माना । फरैं बाग फर फूल निदाना ।
बढ़ती होइ पसु, नर माही । दिन दिन लाभ होइ सब काहीं ।
फिर जो सात गऊ वेलगानी । सात वरस रह काल निसानी ।
बरखा बूँद न भुइ मा आवैं । फैलैं रोग जगत दुख पावै ।
सूखे खेत पात फुलवारी । महँगी परै होइ दुख भारी ।
नर नारी सकट वहु पावैं । जीउ जतु डर से अकुलावैं ।
फिर जो वेखा साह ने हरियर बाली सात ।
और सात पुनि तँह धरे सूखी हरियर सात ।।१६१
प्रथम सात हरियर सुखबासा । बरख सात जो प्रथम प्रकासा ।
सूखी सात वहै दिन काला । दुखी जगत होइ पाव कसाला ।
तेहिको करो उपाइ सवेरे । फिरि अस दिवस न मिलिहैं हेरे ।
सपन लाभ जो यूसुफ कहा । सुन कै सह भौचक होइ रहा ।
बोला एही सपन हम देखा । जेहि कर फल तुम कहा बिसेखा ।
मन पर आइ विपति परी मोरे । सौंपा राज पाट कर तोरे ।
बैठि सिंघासन करो उपाई । भएउ बिरध नहिं मोहि सोहाई ।
तुमही अहो जोग एहि काजा । करो बिचारि काल कर साजा ।
बैठ सिंगासन आज ते थामौं राज हमार ।
जस मन भावै तस करो आगे जतन विचार ।।१६२
कह यूसुफ सेवा चित लाऊ । तुम ठाकुर म दास कहाऊ ।
करौं काज सेवक को नाईं । राज पाट तोहि सोह गोसाँई ।
यूसुफ बचन आइ रस साना । बादसाह सुनिकै सुख माना ।
निजकर धरा ताज वोहि माथे । साही महल दीन्ह तेहि हाथे ।

दरब भंडार सौंपि ओहि दीन्हा । अपने तरे मंतरी कीन्हा ।
बैठ सिंघासन यूसुफ साथा । सब उमराव नवावैं माथा ।
बादसाह है नगर ढिंढोरा । कहा जनाइ सभन चहुँ ओरा ।
एहि कर हुकुम आज ते मानो । आपन बादसाह एहि जानो ।

यूसुफ बैठ सिंगासनैं धनि करता के काज ।
कबहूं लैं बंधुआ करैं कबहूं सौंपैं राज ॥१९३

जेहिमा राज जगत सुख पावा । न्याउ कीन्ह जस जग मां छावा ।
नित उठि दान पुन्नि बहु करै । जाँचक का मुख मोतिन्ह भरै ।
पाइ दरब धन साल दुसाला । धनी भए जग के कंगाला ।
दर दरबार नगर नर नारी । यूसुफ सभन मोहिनी डारी ।
बिन मोलन तेहि हाथ बिकाने । कोउ दान कोउ रूप लोभाने ।
सेवा करैं सभैं चित लाई । यूसुफ की जग फिरी दोहाई ।
भे अलोप बैरी तेहि केरे । दुस्टन चीन्ह मिला नहिं हेरे ।
ठग बटमार चोर रहे नांही । नितहीं सोन उछारत जांही ।

यूसुफ कीन्ह न्याउ अस रहा जगत सुख छाइ ।
बड़े बड़े सुलतान तेहि माथ नवावैं आइ ॥१९४

जस इहां जग जागा । फूला फला नगर जस बागा ।
बरखा मेह अन्न उपजावा । बाढ़ा धन नहिं धरत समावा ।
सुखी भए दुखिया जगमांहीं । काहु क बात सुनत कोउ नाहीं ।
लसकर बढ़ा तलब मनमानी । दीन बढ़ाइ हुकुम सुलतानी ।
देस देस भंडार बनावा । भूखेन अन्न खवाइ अधावा ।
नांगे पहिरि वस्त्र भए चगे । रहे न तँह कोउ भूखे नंगे ।
अधरम मिटा धरम जग छावा । सब का-उन इसलाम सिखावा ।
ठावन ठावन महल रचाए । बीच बीच बहु बाग लगाए ।

मिस्र देस उजियार भा जहँ यूसुफ अस राज ।
जोर जुलुम जग ते मिटा अदल नगाड़ा बाज ॥१९५

मिरतु काल सह का लगिचाना । तजा देह कर सुरग पयाना ।
तजि कै राज अजीज सिधारा । नांउ बखान रहा संसारा ।
यूसुफ खुलाखुली भा राजा । जग सुलतान महा महराजा ।
सिर का छत्र जुलेखा तजा । डंका चेरि नाउ का बजा ।
दासी कीन दैऊ सुलताना । जग सामी मिटि छार मिलाना ।
राज काज गा दास के हाथा । दुखी जुलेखा भई अनाथा ।
चिंता भई डरीं तब नारी । दीन्हेउं दुख यूसुफ का भारी ।
बंदिखान डारेउ बिन काजू । सो पुनि भयौ मिसर महराजू ।

जो चेतैं दिन पहिल के डार हमका मारि।
जाइ छिपौं कहु अत वह तजिकै महल अटारि ।।१९६

सात बरस सुख सहित बिताने । सस्ता समौ जात नहिं जाने ।
यूसुफ काल प्रबध अस कीन्हा । सकल कसास आवस दीन्हा ।
किषी काज तन मन दे करो । उपजै अन्न सो भीतर धरो ।
पचवा अस देउ सरकारा । बचे सिगोहि खाउ परवारा ।
भूसा घास पसू का जोरी । चर चारहु लग धरो बटोरी ।
परि है काल अन्त ना होई । भूख कलेस सहै सब कोई ।
का रहीम तुइ कीन्ह उपाई । आगे काल समौ जौ आई ।
सस्ते समौ अत नहिं साजा । महँगी समौ जो आवत काजा ।

जिन अन धरा बटोरि कै वै महँगी मा खांइ ।
जिनकी कोठिया छूछि रह कर मलि मलि पछितांइ ।।१९७

काल आगमन यूसुफ जाना । अन्न बेसाहा खोलि खजाना ।
ठावन ठाँउ अत लै धरा । गावन गाउ नाज ते भरा ।
लै गेंहूँ फिरि धरा बखारी । अरहर जौ मसूर अधिकारी ।
चना मोठ मोथी मसरगा । गोजई मूग मटर पचरगा ।
लीन केरावा कबुली दाना । लीन्ह बाजरा जोन्हरी धाना ।
जोन्हरी छोट लहडरा नावा । मडुवा काकुन कोदव सावा ।
चाउर लीन महीन औ मोटिया । उरद बेसाहि धरा लै कोठिया ।
तेलहन केर नाज अधिकाई । तिल सरसो अरसी औ राई ।

खरचि खजाना साहु का लीन्हो अन्न बटोर ।
दाना दाना रासि भा लसकर टट्टू जोर ।।१९८

प्रथमें बरस काल जो आवा । भूखै भूख सबै चिल्लाना ।
महगी का जग बाज नगाडा । नर नारिन सब साका छांडा ।
बरखा टारि गई दै बाला । झूरा परा जगत बेहाला ।
मिरगिसा तपा कठिन भा घामा । बोवा अन्न खेत नहिं जामा ।
गिरा न बूद बीत असलेखा । लोगन्ह आस पुनर्वसु देखा ।
बीता दुहू नखत कर झारा । मघा बूद ना भुइ मा डारा ।
उत्तर पुरवा हस्त बिताना । बरखा अत आइ लगि चाना ।
चीत सेवाती झूरा झूरी । उमड काल जग झूरा झूरी ।

बरखा सगरी बीति गै बूद गिरा नहिं भूमि ।
अन्न बिना सब एक भे जग के सुखिया सूम ।।१९९

सूख समुदर सागर नाला । सूखो नदी नार पौसाला ।
जल के कच्छ मच्छ अकुलाने । थल के जीउ घबराने ।
सूखे सूख फूल फल पाता । पख पखेरु खाँय का दाता ।

सूखी घास चरी औ चारा । पसु भूखन दुख मरे अपारा ।
बिना अन्न मानुख कुंभिलाने । अपन परार जात नहिं जाने ।
दया मया छाँड़ा सब कोई । कोउ काहू कर मीत न होई ।
माता पिता बंधु भे भारी । बंसै तजा बाप महतारी ।
भाइन छोंड़ि दीन भैवाधी । तीने मीत केर भए आधी ।

सुख के साथी जगत मा देखा सकल जहाँन ।
समय परे पर होत है मीत सत्रु पहिचान ॥२००

जब लौ अन्न रहा मिलि खावा । अन्न घटा तब भा अलगावा ।
धन्नि अन्न सिरजा करतारा । अन्नै केर जगत बेवहारा ।
अन्नै टन्न कहा सो साँचा । पावा सत्ति जहाँ लौ जाँचा ।
अन्नै रूप केर उजियारा । अन्नै जगत केर सिंगारा ।
अन्नै बल और अन्नै बूता । अन्न तेज परकास बहूता ।
अन्नै आस करै सब सेवा । अन्नै बल सब खेवत खेवा ।
अन्नै बूत करै सब काजा । जेहि लगि जगत प्रजा औ राजा ।
अन्नै थाँभि पिरथमी राखा । अन्न बड़ाई सब मिलि भाखा ।

मानुख कीड़ा अन्न का अन्न खाइ हरियाय ।
दुइ दिन बीते अन्न बिन सूखि तांति होइ जाइ ॥२०१

धरी धरोहर खाइ सेरानी । गड़ी गड़ाई तब बहिरानी ।
सोऊ चुकी दुखी संसारा । अन्न अन्न हा अन्न पुकारा ।
पेटै पेट बात जग छाई । औरन्हा बात पूछै कोउ भाई ।
जेहि देखौ सो भूख पुकारै । भूखा हरियर रूख निहारै ।
जेहिके घरे धरा कछु दाना । अकड़ि चलै जस सूद उताना ।
कूकुर बिलार कौर ना पावैं । कौआ कररि कररि रहि जावैं ।
बूढ़े भूख सोच निसि जागैं । बालक सोवत बासी मांगैं ।
छोटे घर कर कौन बखाना । बड़े घरन कर चूल्ह बुताना ।

नर नारी सब कुलमिले काल रहा जग छाइ ।
सोन बराबरि अन्न भा बाबा मोल बिकाइ ॥२०२

यूसुफ प्रजा सोगते सूखा । खाय न अघाइ रहै नित भूखा ।
सदा बरत बांटै निज हाथा । भूखन खबरि लेइ जग नाथा ।
होइ असवार नगर मंझावैं । दुखी सुखिन कर खोज लगावैं ।
दुखियन सीस करैं सुख छांहा । सुखियन कहै दुखिन गहो बांहा ।
जिन जिन कठिन काल दुख पावा । होइ सहाइ तिन सुख पहुँचावा ।
काल अगिनि छाई चहुँ देसा । अन्न बिना सब सहैं कलेसा ।
दूजे बरस काल जग छावा । मिस्र यग हाँ सदै सुनि पावा ।
अन्नहि खोज मिस्र सब छाए । धनी दरिद्र जहाँ जो आए ।

जग दुखिया सब काल ते अन्न बिना बेचैन।
जाहि भूख है दरस की वाहि सोच दिन रैन ॥२०३

केहिका भूख दरस की भारी। वहै जुलेखा प्रीति की मारी।
यूसुफ निरास महल तजि दीन्हा। बिरह रोग धन जोवन छीना।
बिरह रोग हर लीन्ह जवानी। बिरह रोग तन कीन्ह कमानी।
बिरह रोग ऊजर भे केसा। बिरह रोग मन व्याप अँदेसा।
बिरह रोग गै नैनन जोती। बिरह रोग नैना भे सोती।
बिरहा रोग सकल तन घाला। बिरह रोग भा हाल बेहाला।
बिरह रोग खोवा रसरगा। बिरह रोग जर जैस पतगा।
बिरह रोग तन सुधि बिसरावा। जीते मरै बिरह जो आवा।

बिरह रोग व्यापा हिए जोबन गई बहार।
खान पान सब छूटिगा छूटा बदन सिंगार ॥२०४

तन गहना सब धरा उतारी। बस्तर तजा सुरुख रग सारी।
तजा सीस ते अतर फुलेला। तजा गरे कर हार हमेला।
तजा माग ते मोतिन लडी। तजा बेंघुली हीरा जडी।
तजा नैन ते काजर कारा। तजा होठ ते पान अधारा।
तजा नाक ते कील सोहावन। तजा दांत सीपा मनभावन।
तज जोवन चोलिया फुलकारी। कटि ते धरा जँजीर उतारी।
तजा हाथ मेंहदी की लाली। तजा महावर पावन आली।
तजा सिंगार सोरहो बारी। बारह अभरन दीन्ह बिसारी।

मन प्यारा तेरे' नयन कत सोहै सिंगार।
बिरह अगिनि तनमा लगी बदन भयौ जरि छार ॥२०५

यूसुफ होइ निकसै असवारा। जैसे गगन चन्द्र ते तारा।
नौबत बाज बजे घन घोरा। चोब नगार परे अँधोरा।
सहस निसांन चलै तेहि आगे। उडै पताक अकासै लागे।
सहस संग असवार अगाडी। पाछे चलै जोरि दल भारी।
दहिने बाए सहसन चेरे। सघै चलै सवारी घेरे।
हाथी घोड अनेगन साथा। जस दूलह सग चलै बराता।
जगमग छत्र परे सिर भारी। कहै नकीब बढै असवारी।
दाता धनी सूर जग भाना। जुग जुग जियै मिसिर सुलताना।

निकसै नित असवार होइ जैस दुइज का चांद।
पूरनमासी चन्द्रमा रूप जोति ते मांद ॥२०६

सुनिकै धूम नगर नर नारी। धाइ चलीं देखन असवारी।
बालक जो ऊजहर घर केरे। टाटर दै बैठे मग घेरे।
आवत साह लुटावत सोना। लूट दुखी भूलि दुख रोना।
मँगता दुखिया भाँट भिखारी। दीन असीस खडी असवारी।

अब दुख सुनौ जुलेखा केरा । जेहिका प्रीति रोग लै घेरा ।
दीन्ह बिसारि राज रनवासा । बिसरी ना यूसुफ की आसा ।
दीन्ह बिसारि साज सिंगारा । चित्त रहा एक यूसुफ प्यारा ।
दीन्ह बिसारि अंग रंग सोभा । यूसुफ हिरन रहा मन लोभा ।

देखौ करतब प्रेम के गई जवानी खोय ।
केस पके जोबन ढले प्रीति न बूढ़ी होय ।।२०७

सूख रूख पात झरि पाखा । हरियर रही प्रेम की साखा ।
बुझिगै अगिन जोर तन जारी । सुलगत रही नेह चिनगारी ।
घटा न प्रेम घटा बलबूता । चाह वहै गा रूप अछूता ।
बूढ़ भई नैना दुइ थाके । गिरिगे दांत केस सिर पाके ।
झुकि गै कमर खाल तन झूली । यूसुफ प्रीति अजहुँ ना भूली ।
देवन पूजि कहै कर जोरी । पूरौ देव कामना मोरी ।
एक दासी नित नगर पठावै । यूसुफ निकसन सोध लगावै ।
जेहि दिन सुनै सवारी फेरा । भोरहिं उठि बैठै तेहि तीरा ।

जेहि मारग निकसै सदा यूसुफ होइ असवार ।
दरस लालसा आनि कै बैठै दुखिया नार ।।२०८

रही न जोति दरस कस पावै । होइ निरास यूसुफ गोहरावै ।
दै धक्का टारैं सब चेरे । जैहे कुचिलि अलग हटि रहुरे ।
तजै न बाट डांट सब सहै । पहुँचौं तीर यहै मन चहै ।
भीड़ हटाइ जाइ नहि सकै । सुनै न कोउ लाख वह बकै ।
सुनि रहीम करता जगनाथा । कारज समौ रचा एक साथा ।
जेहि कारज कर समौ न होई । कोटि उपाय न सुधरै सोई ।
समै पाय बिन सोच बिचारा । कारज सुफल करै करतारा ।
एहि बिधि नारि सहत दुख पीरा । छानेसि धूरि न पाएसि हीरा ।

बीते एहि बिधि बहुत दिन एक दिन भई निरास ।
देउतन आसा छोड़िकै अस कीन्हेसि अरदास ।।२०९

ऐ रब तोरि सरन मैं आई । ऐ रब तोरि मैं देत दोहाई ।
ऐ रब जिन यूसुफ का रचा । ऐ रब नाउं तोर है सचा ।
ऐ रब सिरजा तुइं संसारा । ऐ रब मोरी लागु गोहारा ।
ऐ रब रूप के साजन हारे । ऐ रब प्रेम के सांचन ढारे ।
ऐ रब जिन यूसुफै नेवाजा । करिकै दास कीन्ह जग राजा ।
ऐ रब जिन सिरजा सुघराई । जिन यूसुफ का दीन्ह बिकाई ।
जिन मोहिं दीन्ह प्रेम की पीरा । ऐ रब हिए न मन बिच धीरा ।
ऐ रब सुनु अरदास हमारी । मनसा फलै जाँउ बलिहारी ।

वैसे दाता दीन बद हर लें सकट मोर ।
आएउँ सब जग भरमि कै ताकि दुवारा तोर ॥२१७

फिरि जिवरील कहा समझाई । है रजाय रब की अस भाई ।
सुनु यूसुफ रब चाहत तोरा । बेगि नारि सग करु गठ जोरा ।
पाक सरह कै पढि दुइ बोला । बधा निकाह मगन भा चोला ।
पुनि जिबरील जो कीन पयाना । ब्याह क मरम जगत सव जाना ।
धन्य जुलेखा धन्य पिरीती । प्रीति की रीति लीन उन जीती ।
धन्य नारि जिन सत्त निबाहा । आइ के चाह आन न चाहा ।
एक कै चाह चाह चित्त होई । आन पुरुख भावै कत सोई ।
एक यूसुफ सग टेक लगावा । तजा न एक अत वोहि पावा ।

सत्त प्रेम उपजा हिए सत्ति लगावा टेक ।
सत्त निवाहा कछुक दिन दैउ कीन फिर एक ॥२१८

एक बिरहिन की पूजी आसा । एक बिरही बिरहा दुख ग्रासा ।
को बिरही याकूब बिरोगी । पुत्र के सोग भए अनभोगी ।
सुधि न मिली बीते बहुकाला । कठिन डाह भा हाल बेहाला ।
रोय रोय नैना बहे नीरा । जोति गई तन सोच घनेरा ।
ना काहू से मिलै न बोलै । खाँय न अन्न नैन नहि खोलै ।
काल कलेस अधिक दुख दीन्हा । भाइन बैठि मता अस कीन्हा ।
किनआ तजे मिस्र मग लागे । बिधि चाहै तहँवा दिन जागे ।
अस बिचारि आए पितु आगे । सीस नवाइ कहन अस लागे ।

पुत्रन दुखिया देखि कै पूछा पिता मयाइ ।
केहि कारन आयो सभै कहो अरथ समुझाइ ॥२१९

बोले पिता कहूँ का बाता । अन्न कलेस सहा नहि जाता ।
हम अस सुना मिस्र पति दानी । अन्नहि दान देत मन मानी ।
अग्या होइ तौ मिसर सिधारै । लावै अन्न जोखि दुख टारै ।
कह याकूब जौन मन भावै । करौ काज जेहिसे बनि आवै ।
दीन्ह रजाय सोख बहु दीन्हा । भाइन्ह गवन मिस्र का कीन्हा ।
पहुँचे मिस्र बखान उडाना । दान भवन पावा असथाना ।
दूतन जाइ खबरि पहुँचावा । सुनि यूसुफ सबका बोलवावा ।
देस की चाह हिए उलथानी । आदर सहित कीन मेहमानी ।

पहुँचे वार जो साह के जहँ यूसुफ कर पाट ।
जाइ जोहारा मिलि सभन भुइ लै लाइ ललाट ॥२२०

बिछुरे काल वहुत जो बीता । हिये चीन्ह नहि पायो मीता ।
दूजे भेख राज सिर छाता । यूसुफ का चीन्हित नहि भ्राता ।
जानै मिस्रपती सुलताना । महा साज देखत भौ माना ।

पाट तीर आवत हिय काँपै । पग धरत आवनै भुइ चापै ।
निकट बोलाइ साह निरथावा । को तुम साहु जनम कहाँ पावा ।
कौन देस ते मिस्र सिधाये । कारज कौन हियाँ जो आए ।
बोले साह जियै जग मांही । जगत सुखी है जेहि की छांही ।
है हम सब याकूब के बारे । जो रबके है नबी दुलारे ।

जनम भवा तिनके घरे किनआं देस हमार ।
काल अन्न का तहँ परा मिस्र कीन्ह पैसार ॥२२१

साह सुना प्रतीत नहि आवा । कहा कपट तुम भोखन आवा ।
तुम हौ छली दूत कहुं केरे । घूमौ भेद लेन चहुँ फेरे ।
लैकै भेद हियाँ ते चलिहौ । कारन कोउ देस पै लइहौ ।
जीवन चहौ कहौ सति बानी । कपट तुम्हार लीन हम जानी ।
बोले सत्ति बचन हम भाखा । या में भेद न कछु हम राखा ।
एक पिता के बारह जाए । तेहिमा दस एहि देस सिधाए ।
छोटा एक रहा पितु पासा । जियैं पिता तेहि दरस की आसा ।
कहा एक का कहाँ गवाँयो । तेहि कर भेद न कछु बतलायो ।

कहा सभन मिलि साह से रहा एक लघु भाइ ।
तेहिका बारी बैस मां लीन्ह भेड़िया खाइ ॥२२२

पूंछा साह कौन बिधि खावा । औ तुमते कछु बनि नहिं आवा ।
तुम हौ अैस बली बरिवंडा । करौ फारि तेहिका दुइ खंडा ।
कहा लिखा बिधि का सो बीता । होत नहीं कछु आपन चीता ।
बन मां गएउ सभन संग लागा । दाबि भैड़िया तेहि लै भागा ।
साह कहा हम एक न मानै । बचन तुम्हार कैस सति जानै ।
अन्न लेउ किनआं फिरि जाओ । लाओ भाइ जेहि छोट बताओ ।
सोई कहै अपने मुख हाला । कहै आनि सभ चाल कुचाला ।
दीन्ह लदाइ अन्न मन माना । भाइन्ह देस का कीन्ह पयाना ।

एहि बिधि आए लौटि सब कहा पिता सों हाल ।
बीता जौन बिदेस मां साह मिस्रकर चाल ॥२२३

लै भाई फिर हर से धाए । कुछ दिन रहे लौटि फिर आए ।
फिरि याकूब सग तिन गए । सिता पूत मिलि एक फिरि भए ।
यूसुफ कथा विदित जग मांहीं । तेहि से कीन्ह बिसतार न ताहीं ।
बात बढ़े हम हूं कछु भाखा । सत्त प्रेम तामे लै राखा ।
जहँ लगि कहूं तहां लगि दूरी । केहि बिधि कहै कथा कोउ पूरी ।
तेहिसे तजा लीन रब नाऊं । प्रेमा की फिरि कथा सुनाऊँ ।
यूसुफ कथा चन्द्र सुनि पागी । दोउ कर जोरि कहै अस लागी ।
प्राननाथ तुम सन मन लागा । तन बिसराम तुमहिं लग त्यागा ।

हा चेरी [illegible] प्रान ते जीवन मरन तो संग ।
लै प्रेमा जिउ अगिनिमा जरत न मोरउँ अंग ॥२२४

तुम्ह प्रीतम है कठिन कुठाऊँ । केहि विधि लागि सग तो घाऊँ ।
क्रोध पिता मातु रिसियानी । सग सखी सब चतुर सयानी ।
फिरैं दूत धौराहर घेरे । रखैं चौकसी साझ सबेरे ।
इहां पतग पख नहिं मारै । पुरुष बरन केहि विधि पग धारै ।
बारो घँस सोच मोहि आवै । निकसि गए कुल लाज नसावै ।
पुनि निकसत जानै जो कोई । जियब हमार तुम्हार न होई ।
पिता बाधि देह तो कंह सूरी । मोहि खवाइ देइ विख मूरी ।
तेहि से पेंग प्रीति मोरि नाही । तुमहि बिचार करो मन माहीं ।

लौटि जाउ घर आपने धीरज रहहु सँभार ।
जो विधि लिखा लिलाट में आप मिलावन हार ॥२२५

पिता तुम्हार राज कर खांभा । कहै विचार बचन मुख थंभा ।
चालै बात सगाई केरी । मानै पिता करै ना देरी ।
प्रेमा सुना उतर मन माना । चन्द्रकला की बुद्धि बखाना ।
तेहि छन चन्द्र की एक सहेली । आई तहाँ नाउ अलबेली ।
कहा चद्र सों बात सुझाई । मालिन बारि का रानि बोलाई ।
कांपि उठी सकुची मन बारी । केहि कारन टेरत महँतारी ।
अस न होय कछु भेद उघारै । पावै खोज बाट लै पारै ।
प्रेमा नैन मारि समझावा । आपु उठा चेरी सग धावा ।

मालिनि दोऊ लै चली जहँ रानी कर पाट ।
मांगि विदाई रानि ते लागी आपनि बाट ॥२२६

प्रेम उताइल चाल चलावा । रानि बारि का चीन्हि न पावा ।
कहा फेरि लै आयो छोरी । राखेउ चेत बात तुम मोरी ।
कह मालिनि नारायन हाथा । पुनि यह चरन धरब लै माथा ।
एतना कहि मदिर बहिरानी । चली धाइ निज घर पर आनी ।
कुसल खेमते घर लै आई । प्रेमा दिसि देखत मुसकाई ।
कहा तुम्हार पूर भा काजू । जनम हमार सुफल भा आजू ।
सेवक जियै जनम फल पावै । जब स्वामी कर काज बनावै ।
प्रेमा कहा बिदा नहिं पायों । एहि अँदेस लै कै घर आयो ।

मालिनि कहा जो विधि लिखा फिर होई अस भेंट ।
राखो आसा राम की जेहि कर चहा अमेट ॥२२७॥

धरा उतारि जनाना जोडा । मालिन का दीन्हेसि एक तोडा ।
आएउ वहै सोच लै धामा । मुख पर वहै चन्द्र कर नामा ।
माता धाइ गरे लपटानी । दुख की उही जिया मुरझानी ।